PGDGN - 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत एवं विदेश में गाँधीवादी शांति आंदोलन

PGDGN - 04

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

भारत एवं विदेश में गाँधीवादी शांति आंदोलन

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

संयोजक / सदस्य

संयोजक

डॉ. लीलाराम गुर्जर
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

- **प्रो. (डॉ.) एम. एल. शर्मा**
  आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र,
  पंजाब विश्वविद्यालय
  चंडीगढ़
- **प्रो. (डॉ.) हिमांशु बोराई**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय,
  श्रीनगर (गढ़वाल)
- **प्रो. (डॉ.) अनाम जैतली**
  आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
  कोटा
- **डॉ. बी. अरुण कुमार**
  सचिव, कुलोपति सचिवालय
  वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
  कोटा

पाठ लेखक	इकाई संख्या	पाठ लेखक	इकाई संख्या
डॉ. नरेश नाथ व्याख्याता, राजनीति विज्ञान विभाग राजकीय महाविद्यालय बीकानेर	1, 5, 6,	**डॉ. मनीष शर्मा** सहायक आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र, पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़	7, 9
प्रो. (डॉ.) एम. एल. शर्मा आचार्य, गाँधी अध्ययन केन्द्र, पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़	2	**प्रो. (डॉ.) राधाकृष्णन** भारतीय गाँधी परिषद, त्रिवेन्द्रम	8
प्रो.(डॉ.) पी. सी. माथुर सलाहकार, लोकप्रशासन वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा (राजस्थान)	3	**प्रो. (डॉ.) इयान हरीश** विश्वकोन्सिन विश्वविद्यालय, यू. एस. ए	10
प्रो. (डॉ.) ए.एस. चोसाल्कर अध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर (महाराष्ट्र)	4	**प्रो. (डॉ.) निधी शर्मा** व्याख्याता, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा	11

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा (राजस्थान)

प्रो. (डॉ.) अनाम जैतली
निदेशक
संकाय विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय
कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल
सहायक उत्पादन अधिकारी
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन अगस्त, 2009 ISBN No. 13/978-81-8496-109-6

इस सामाग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है ।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय , कोटा

विषय सूची

भारत एवं विदेश में गाँधीवादी शांति आंदोलन

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई -1	भारत में गांधीवादी शांति आन्दोलन	7–19
इकाई -2	भूदान - आन्दोलन	20–33
इकाई -3	ग्रामदान	34–45
इकाई -4	स्थिर विकास और पर्यायवरण	46–59
इकाई -5	चिपको आंदोलन	60–67
इकाई -6	नर्मदा बचाओ आन्दोलन	68–77
इकाई -7	अमेरिका में नागरिक आंदोलन	78–89
इकाई -8	किंग की अहिंसा	90–102
इकाई -9	ग्रीन पीस आन्दोलन	103–112
इकाई -10	शान्ति शिक्षा	113–132
इकाई -11	गाँधी एवं राजस्थान	133–154

इकाई-1

भारत में गांधीवादी शांति आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 व्यवहार में गाँधी
1.3 गांधीवादी शांति आंदोलन
1.3.1 चिपको आन्दोलन
1.3.1.1 ऐतिहासिक परिदृश्य
1.3.1.2 दार्शनिक आधारशिला
1.3.1.3 चिपको एवं सर्वोदय
1.3.2 सेवा ' आन्दोलन
1.3.2.1 दार्शनिक आधारशिला
1.3.2.2 लक्ष्य
1.3.2.3 उपलब्धियां
1.3.2.4 वैश्वीकरण की चुनौतियां
1.3.3 खादी आन्दोलन
1.3.3.1 पृष्ठभूमि
1.3.3.2 प्रोग्राम एवं उद्देश्य
1.3.3.3 उपलब्धियां एवं महत्व
1.3.4 भूदान-ग्रामदान आन्दोलन
1.3.4.1 दर्शन एवं लक्ष्य
1.3.4.2 उपलब्धियां एवं सीमाऐं
1.4 सारांश
1.5 अभ्यास प्रश्न
1.6 संदर्भ ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् भारत में संचालित किये जाने वाले विभिन्न गाँधीवादी शांति आन्दोलन के बारे में जान पायेंगे। इसमें :-

– आप चिपको आन्दोलन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, दार्शनिक आधार और कार्यो के बारे में जान पायेंगे।

– आप सेवा आन्दोलन के दार्शनिक आधार लक्ष्य, उपलब्धियां तथा चुनौतियों की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे ।
– आप खादी आन्दोलन की पृष्ठभूमि, उद्देश्य, कार्य. उपलब्धियां तथा महत्व की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।
– आप भूदान एवं ग्रामदान का अर्थ, लक्ष्य, उपलब्धियां, चुनौतियां एवं सीमाओं की जानकारी प्राप्त कर पायेंगे ।

1.1 प्रस्तावना

शान्ति आन्दोलन के बारें में बातचीत करने से पूर्व यह अपरिहार्य सा लगता है कि शान्ति की बात की जाए। शान्ति एक लचीला शब्द है। एक ऐसा शब्द है जिसका ओर छोर नहीं मालूम पड़ता। इसलिए इसके सही अर्थ को पता लगाना मुश्किल है। यह अलग अलग लोगों के लिए अलग अलग अर्थ रखता है तथा विभिन्न परिस्थितियों में इसके भिन्न-भिन्न अर्थ निकलते हैं। यह स्वास्थ्य की भांति है जिसको कि समग्रता मे समझ पाना निहायत ही मुश्किल कार्य है। तथापि इन सारी बातों को देखते हुए शान्ति की एक निश्चित परिभाषा न सिर्फ संभव नहीं बल्कि शायद आवश्यक भी नहीं है।

शान्ति के स्वरूप को सामान्य तौर पर समझने हेतु एवं शान्ति आन्दोलन को विशेष रूप से समझने के लिए यद्यपि इसे परिभाषित करना अपरिहार्य हो जाता है। आधुनिक समय में जोहान गाल्तुंग नामक वैज्ञानिक ने शान्ति पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। वह गाँधी से बुरी तरह प्रभावित रहा है। उसने शान्ति के दो आयामों की चर्चा की है।

एक, नकारात्मक शान्ति जिसका कि अर्थ है युद्ध एवं वास्तविक हिंसा की अनुपस्थिति एवं दूसरी, सकारात्मक शान्ति जिसका अर्थ है मानव समाज का एकीकरण। इस दूसरे आयाम को पुर्नपरिभाषित करते हुए उसने शान्ति को भौतिक एवं संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति एवं मानव समाज के एकीकरण के साथ-साथ मानव परिपूर्णता से जोड़ा। इस तरह से गाल्तुंग शान्ति को ऐसी स्थिति के समान मानता है जहां पर कि अस्तित्व की आवश्यकताएं (यथा सुरक्षा, स्वतंत्रता कल्याण एवं अस्मिता) पूर्ण हो सके। गाल्तुंग के अनुसार समाज में शान्ति को चार प्रकार के खतरे हैं यथा हिंसा, दमन, तंगहाली एवं अलगाव।

एक मत के अनुसार, सभी संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में तथा सभी काल में शान्ति के तीन विभिन्न अर्थों ने समानान्तर रूप से अपना महत्व दिखाया है। इन तीनों अर्थों को एक पिरामिड में व्यवस्थित किया जा सकता है। शान्ति की सबसे सामान्य स्थिति को पिरामिड की सबसे निचली पायदान पर रखा जा सकता है। यह शान्ति का सबसे संकीर्ण एवं नकारात्मक अर्थ है जिसके अनुसार शान्ति का अर्थ है परम्परागत या आण्विक, छोटे या बड़े युद्ध या इनकी सम्भावना की अनुपस्थिति। दूसरे स्तर पर, शान्ति पहली स्थिति से अधिक व्यापक एवं सकारात्मक है। जहां पर शान्ति का अर्थ प्रत्यक्ष हिंसा (तथा इनकी संभावना/आशंका) की अनुपस्थिति के साथ-साथ अप्रत्यक्ष एवं संरचनात्मक हिंसा की अनुपस्थिति है। यह मत न सिर्फ आण्विक युद्ध की आशंका के खतरों को रेखांकित करता है बल्कि यह धीमी गति के युद्ध, जो गरीबी, भुखमरी ओर शोषण के रूप में विश्व के विभिन्न हिस्सों में चल रहे हैं, उनकी ओर

इशारा करता है। शान्ति का तीसरा अर्थ है जो कि इस पिरामिड के शीर्ष पर है। यह सबसे अधिक व्यापक एवं महत्वाकांक्षी है। इसे गाँधी जैसे दार्शनिक एवं नानक, बुद्ध तथा महावीर जैसे पैगम्बरों से जोड़ा गया है। इसके अनुसार शान्ति मानवीय मन की आंतरिक स्थिति है, जो व्यक्ति एवं समूह के शान्तिपूर्वक एवं अहिंसक व्यवहार के बाहरी पहलू एवं अभिव्यक्ति से अभिन्न रूप से जुडा है। पूर्वात्य और पश्चिमी सभ्यताओं में, प्राग-औद्योगिक, औद्योगिक एवं उत्तर-औद्योगिक समाजों में इन तीनों ही छवियों ने समान रूप से अपना अस्तित्व बनाए रखा है और ये आज भी अलग अलग अंश में उपस्थित हैं। हां, ये जरूर है कि धनाढ्य देशों एवं समाजों में नकारात्मक शान्ति का आर्थिक महत्व दिखता है क्योंकि वहां व्यक्ति समाज की सामान्य, भौतिक आवश्यकताएं पूरी हो चुकी होती हैं जबकि सकारात्मक शान्ति, विकासशील एवं पिछड़े समाजों में, जहां बाहरी एवं भीतरी शोषण अधिक तीक्ष्ण है, में अधिक महत्व रखती है।

1.2 व्यवहार में गाँधी

गाँधी की बात की जाए तो हम यह पाते है कि गाँधी कोई आदर्शवादी विचारक नहीं थे। संसार के अनेकों दार्शनिकों के विपरीत, वे अपने प्रधान विचारों को व्यवहार में सफलता पूर्वक परिवर्तित कर लिया करते थे उनके लिए शब्दों एवं कर्म (कथनी व करनी) में कोई भी अंतर नहीं था। व्यवहार और आदर्श के मध्य उन्होंने अद्भुत सामंजस्य बिठाया जोकि उनके व्यापक विश्व दर्शन से उत्पन्न होता है। उनके विचारों से कई आंदोलन प्रस्फुटित हुए। उनके जीवित रहते हुए एवं उनके गुजरने के पश्चात भी नये आंदोलन अभियान एवं नागरिक समाज मंच, उदय होकर उनके विचारों एवं आदर्शों की प्रासंगिकता को पुनर्स्थापित करते हैं।

जैसा कि सर्वविदित है, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन महात्मा गांधी के नेतृत्व से अंतरंगता से प्रभावित था। इस आंदोलन ने न सिर्फ भारतवर्ष को राजनीतिक स्वतंत्रता दिलवाई बल्कि 36 करोड़ भारतवासियों का उस समय, एवं आज 1 अरब से ऊपर लोगों को शान्ति के वृहत अर्थ (जिसमें न्याय, समता एवं सर्वकल्याण हो) के आधार पर नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने अपना जीवन और कर्म पूर्णत: सत्य अंहिसा और नैतिक आदर्शों को समर्पित कर दिया था। उन्होंने सत्याग्रह नामक विशुद्ध नई तकनीक को प्रयोग में लिया जो हिंसा के तौर-तरीकों एवं प्रयोग से दूर, सत्य और अहिंसा की पद्धतियों पर आधारित है।

गाँधी के नेतृत्व की ये विशेषता थी कि वे किसी भी प्रतिरोध आंदोलन को न्याय एवं शान्ति के आंदोलन में परिवर्तित कर दिया करते थे, जिसमें विरोधियों एवं प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति संवदेना की उपस्थिति रहती। उनके अनुसार शान्ति अपने अर्थ में अनिवार्यत: सर्वोदय यानि 'सभी का भला' समेटती है। ये बेन्थम के 'सर्वोच्च संख्या के सर्वोच्च भले' से आगे की सोच थी।

गाँधीवादी सोच ने शासन, प्रशासन, विकेन्द्रीकरण नीति, राजनीति में नैतिकता, शिक्षा, ग्रामीण एवं राष्ट्रीय विकास, आत्मनिर्भरता. स्वेच्छावाद, जाति व अस्पृश्यता जैसे क्षेत्रों में अभूतपूर्व योगदान दिया है। समूहों व आन्दोलनों में इसकी लोकप्रियता का कारण भी इसका प्रकृति एवं मानवीय क्रिया कलापों के मध्य सामंजस्य बैठना रहा है। राजनीतिक शक्ति एवं

आर्थिक उत्पादन के विकेन्द्रीकरण को आधार बनाकर एक शान्तिपूर्ण समाज की स्थापना ही इसका मूल ध्येय भी है।

1.3 गाँधीवादी शान्ति आंदोलन

भारत में आज मुख्यतः दो प्रकार के शांन्ति आंदोलन सक्रिय हैं एक, वे स्वतंत्र, स्वायत्त आंदोलन जो प्रतिक्रियात्मक हैं और विकास के हमारे चुने हुए रास्ते के फलस्वरूप जो रूग्णता पैदा हुई है, उस कारण से सक्रिय हुए है जैसे- विद्यार्थी समूह, महिला संगठन, धार्मिक संस्थाऐं, पर्यावरण कार्यकर्ता, कलाकार, शिक्षाविद, नागरिक अधिकार कार्यकर्ता एवं पत्रकार इत्यादि और वे आन्दोलन जो अहिंसावादी है, गाँधीवादी है व शान्ति एवं विकास के वैकल्पिक रास्ते पर आधारित हैं। इन दोनों ही धाराओं में ये सोच समान गंभीरता से व्याप्त है कि भारतीय पश्चिमी देशों में शान्ति के खतरों के जो कारण हैं, वे भारतीय लोगों पर बराबरी से लागू नहीं होते। भारत में शांति का सार्थक अर्थ केवल युद्ध की अनुपस्थिति नहीं हो सकती। यहां दैनिक जीवन में शांति अपनी सार्थकता एवं परिपूर्णता से तभी स्थापित हो सकेगी, जब आम आदमी को रोजी-रोटी, शोषण, दमन एवं अत्याचार से मुक्ति, अस्तित्व के संसाधनों तक पहुंच, सांस्कृतिक स्वायत्ता, एवं राज्य व शक्तिशाली की हिंसा से राहत मिले। इस प्रकार भारत में शान्ति आन्दोलन के आधार एवं परिप्रेक्ष्य की दृष्टि से पश्चिम के शांति आन्दोलनों से सर्वथा भिन्न कहे जा सकते हैं। स्वतन्त्रता संघर्ष के दौरान व स्वतंत्रता पश्चात के कई आन्दोलनों पर गाँधीवादी प्रभाव देखने को मिलता है। निम्न आन्दोलनों के माध्यम से सत्याग्रह के गाँधीवादी दर्शन के तरीकों, लक्ष्यों, अनुरोधों, पहुँच और सफलता के विभिन्न पहलूओं का पता लगाया जा सकता है।

1.3.1 चिपको आन्दोलन

पूरे भारतवर्ष में ग्रामीण जनता के लिए वन एक महत्वपूर्ण संसाधन है। इससे खाना, ईंधन व चारा तो मिलता ही है इसके अलावा मिट्टी और पानी के संसाधनों को स्थिर करने में विशेषकर पहाड़ी, एवं पर्वतीय क्षेत्रों में ये महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। परन्तु वाणिज्य एवं उद्योग के निरन्तर फैलाव से वन सिकुड़ने लगे हैं। इससे सामान्य ग्रामीण जनजीवन बुरी तरह से प्रभावित होने लगा है। अपनी आजीविका की रक्षा हेतु भारतीय ग्रामीणों ने सत्याग्रह जैसे अहिंसक प्रतिरोध के गांधीवादी तरीको को अपनाया है।

1970 और 1980 के दशक में वनों के विनाश का ये प्रतिरोधी आन्दोलन व्यस्थित होकर पूरे देश में फैल गया। यह आन्दोलन 'चिपको' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये मूलतः एक पर्यावरण आन्दोलन था जो उत्तरांचल के सुदूर क्षेत्र से पनपा। वहां के लोगों ने 'विकास' के एजेन्टों द्वारा पर्यावरण को लीलने के षड्यंत्र को समझते हुए अनेक प्रकार के प्रतिरोधी तकनीकों को विकसित किया जिन्हें सामान्य तौर पर चिपको नाम से जाना जाता है। 'चिपको' का शाब्दिक अर्थ है सीने से लगाना। संक्षेप में, चिपको एक प्रकार का विद्रोह था, उन बाहरी एजेन्सियों के विरूद्ध जो प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पहाड़ों के पारिस्थितिकी सन्तुलन को बिगाड़ने पर आमादा थे। जब इनके पेड़ काटे जाने लगे, तो गढ़वाल के लोग विरोध में उठ

खड़े हुए इनके बचाव के लिए उन्होंने एक नायाब तरीका निकाला-काटे जाने वाले पेड़ से वे चिपक जाया करते। इस तरह से उन्होंने पेड़ों की जगह अपने को कटवा देने का साहस जुटाकर वनों की रक्षा की ठानी।

पहाड़ों में वन आजीविका के मुख्य स्त्रोत होते हैं क्योंकि वहाँ खेती दुश्कर होती है। इस आंदोलन में स्थानीय स्वयंसेवी संस्था - दशोली ग्राम स्वराज्य संघ तथा क्षेत्र की महिलाओं की सक्रिय भागीदारी रही। आंदोलन से जुड़े मुख्य व्यक्तित्व श्री चंडी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में वनों में प्रवेश कर पेड़ों को घेर लिया जाता है और कटने से बचाया जाता है। कर्मशील, अनपढ़ महिलाओं को जंगल एवं वृक्षों के कटने के नुकसान का भली भांति ज्ञान था, इसलिए उन्होंने आंदोलन को सक्रिय बनाने में भरपूर सहयोग दिया। इस प्रतिरोध आंदोलन ने देश के दूसरे भागों में अपने तरह के कई आंदोलनों को जन्म दिया। इस स्वत: प्रवर्तित प्रतिरोध ने, जिसने उतर प्रदेश के हिमालय में जन्म लिया, जल्दी ही आग की भांति उत्तर में हिमाचल, दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम में राजस्थान, पूर्व में बिहार एवं मध्य भारत में विन्ध्य में अपने पैर जमाने शुरू कर दिये। इस आंदोलन के फलस्वरूप पश्चिमी घाट और विन्ध्य में पेड़ों की कटाई जबरदस्त ढंग से रूक गई एवं इसने जनता की पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील प्राकृतिक संसाधन नीति के निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण दबाव बनाया।

1.3.1.1 ऐतिहासिक परिदृश्य

प्रकृति के निकट रहने वाले अधिकांश समुदाय इसकी रक्षा को कटिबद्ध रहते हैं। राजस्थान का विश्नोई सम्प्रदाय इन्हीं में से एक है कई वर्षो पूर्व राजस्थान के सुदूर पश्चिमी भाग में चिपको का असली रूप देखने को मिला था जब अमृता देवी नामक ग्रामीण विश्नोई महिला के नेतृत्व में 84 गांवों के कई लोगों ने पेड़ों की रक्षा हेतु अपने प्राणों की आहुति दे दी थी। जोधपुर के राजा को इसके कारण प्रदेश के संपूर्ण विश्नोई बाहुल्य गांवों में पेड़ों को नष्ट नहीं करने के कड़े निर्देश देने पड़े थे।

1.3.1.2 दार्शनिक आधारशिला

ऐतिहासिक दार्शनिक एवं सांगठनिक तौर पर चिपको आंदोलन, परम्परागत गांधीवादी सत्याग्रह का विस्तार है। इसका विशेष महत्व इस बात में है कि इस आंदोलन का जन्म स्वतंत्र भारत में हुआ। पारिस्थितिकीय स्थायित्व संतुलन एवं न्याय पर आधारित विकास के गाँधीवादी दर्शन से लैस इस आंदोलन ने सहज भाव से उतर प्रदेश के पर्वतीय इलाको में महिला शक्ति एवं पर्यावरण चेतना को महत्वपूर्ण ढंग से आगे बढ़ाया। गांधीजी की दो यूरोपीय शिष्याओं (मीराबेन एवं सरलाबेन) का भी इस संघर्ष की धरोहर पर गहरी छाप रही है। उन्होंने पहाड़ी में गांधीवादी कार्यकर्ताओं की एक नई पौध को जन्म दिया, जिन्होने चिपको आंदोलन की आधारशिला रखी।

चिपको आंदोलन एक प्रकार से क्षेत्र में की गई कई विकेंद्रित स्वायत्त स्थानीय पहल का नतीजा है। इसके नेता एवं कार्यकर्ता मुख्य तौर पर ग्रामीण महिला हैं जो अपने समुदाय एवं अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रही हैं, पुरूषों का भी इसमें महत्वपूर्ण सहयोग एवं सक्रिय

भागीदारी आवश्यक रूप से है ही। प्रमुख चिपको व्यक्तित्वों में गांधीवादी कार्यकर्ता एवं विचारक सुंदरलाल बहु गुणा है 1981 -1983 में 5000 कि.मी. लम्बी हिमालय पद-यात्रा ने चिपको के संदेश को प्रचारित-प्रसारित किया। बहु गुणा ने नारा दिया "पर्यावरण ही स्थायी अर्थव्यवस्था है।" इनके अलावा चक्की प्रसाद भट्ट आंदोलन के शुरुआती दौर के सक्रिय कार्यकर्ता रहे, जिन्होंने स्थानीय हित के लिए वन सम्पदा के संरक्षण एवं अविच्छिन्न प्रयोग की आवश्यकता पर बल देते हुए स्थानीय उद्योग एवं उद्यमों का बढ़ावा दिलवाने का प्रयास किया। धूमसिह नेगी ने बचनी देवी एवं वन्य महिलाओं के साथ मिलकर सर्वप्रथम पेड़ों से चिपक कर उनकी रक्षा की उन्होंने नारा भी दिया जिसका कि अर्थ था वनों से हमें मिट्टी, पानी और शुद्ध हवा मिलती है यानि हमें जीवन मिलता है।

1.3.1.3 चिपको एवं सर्वोदय

चिपको आंदोलन उत्तराखण्ड के लोगों की शांतिपूर्ण प्रतिरोध की अविरल परंपरा की ही समसामयिक अभिव्यक्ति है। उतर-स्वाधीनता काल में यहां के गाँधीवादी समर्थकों एवं कार्यकर्त्ताओं ने 1961 में उत्तराखण्ड सर्वोदय मंडल की स्थापना की। ये सर्वोदय आंदोलन चार मुख्य बिन्दुओं पर केन्द्रित रहा :

1. महिलाओं को संगठित करना
2. शराब खोरी के विरूद्ध संघर्ष
3. वन अधिकारों के लिए संघर्ष
4. स्थानीय, वन आधारित लघु उद्योगों की स्थापना

साठ एवं सत्तर के दशक में यह धारणा मजबूत होती जा रही थी कि वनों से लाभ उठाने की प्रवृत्ति एवं सोच की एक पारिस्थितिकीय सीमा होती है जिसका अनुमान अभी तक लगाया नहीं जा सका है। वनों के निरंतर कटाव से पर्यावरण पर खतरे बनने लगे जोकि महिलाओं के आम जीवन एवं स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने लगे। महिलाऐं ही मोटे तौर पर चारा इकट्ठा करना एवं पानी लाने का काम करती थी। इसी प्रकार अन्य समस्याऐं भी पैर पसारने लगी थीं। वनों के संकट से निजात दिलाने हेतु शासन व नौकरशाही कितनी भी सक्षमता व संवेदनशीलता से कार्य क्यों न कर ले, सभ्यता की सहज प्रतिक्रिया का विकल्प नहीं हो सकते। आन्दोलन से जुड़े गांधीवादी कार्यकर्ता अपने जमीनी कार्यो में दक्षता हासिल कर परिपक्व होने लगे थे। चिपकों की सफलता के अनेकों उदाहरण गढ़वाल के सामने हिमालय में आने लगे। अडवानी, अमरसर और बदियारगढ ऐसे ही कुछ नाम हैं। हालांकि वे यह भी महसूस करने लगे थे कि स्थानीय लघु उद्योगों के लिए वन उत्पाद की आपूर्ति का प्रश्न अब उतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया था। इसका स्थान, पानी एवं चारा की आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए वनों के संसाधन पर पारिस्थितिक नियंत्रण की नई मांग ने ले लिया था।

1990 के दशक में भारत में पर्यावरण चेतना नाटकीय ढंग से बढ़ी और इसके साथ ही साफ एवं स्वच्छ पर्यावरण की वकालत करने वाली व्यवस्थित लॉबीज की संख्या भी। परिणामस्वरूप, भारत सरकार ने प्रदूषण नियंत्रण के नए कानून भी बनाए यद्यपि इन्हें लागू करने के प्रभावी तरीके मोटे तौर पर अनुपस्थित ही रहे। 'चिपको ' के समर्थकों ने अगस्त 1994

में टिहरी के बांध के निर्माण का पुरजोर विरोध किया था। इसके निर्माण से पेड़ों के सामूहिक कटाव एवं बाढ़ की भयानक स्थिति उत्पन्न हो सकती है। आज राज्य के अनेकों विधायकों एवं दलों का सम्मान चिपकों कार्यकर्ताओं एवं आन्दोलन को प्राप्त है। आज भी 'पेड़ को हृदय से लगाने वाले ' सक्रिय हैं। अर्थव्यवस्था और पारिस्थितिकी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पर्यावरण और विकास में कोई अन्र्तविरोध नहीं है। वास्तव में, ये आन्दोलन इस बात में गहराई से विश्वास करता है कि पारिस्थितिकी रक्षण या पर्यावरण का बचाव विकास के रास्ते पर ही जाता है, भले ही आम धारणा इसके विपरीत हो। चिपको का ये दार्शनिक एवं अस्तित्व वादी पहलू गांधीवादी दर्शन से सार्थक रूप से प्रभावित है, और इसलिए 'व्यवहार में गाँधी ' का एक अद्भुत उदाहरण है।

1.3.2 'सेवा ' आन्दोलन

'सेवा ' यानि SEWA (Self-employed Women Association) जिसका अर्थ है स्वनियोजित महिला संघ। 'सेवा ' एक श्रमिक संघ है जो 1972 में पंजीकृत हुई। यह गुजरात की स्वनियोजित महिला मजदूरों का संगठन है। इसकी सदस्यता लगभग सात लाख से अधिक है। ये महिलाएं अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के ग्रामीण और शहरी कार्य क्षेत्रों से जुड़ी हुई है। ये महिलाएं अपनी आजीविका छोटे मोटे धंधे करके या मजदूरी करके प्राप्त करती है। उद्योग के संगठित क्षेत्र के श्रमिकों की भाँति इन्हें नियमित व वैतनिक रोजगार मुहैया नहीं होता।

'सेवा की स्थापना 1920 में अनुसुईया साराभाई नामक महिला द्वारा हुई। टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन (TLA) नाम भारत के सबसे पुराने एवं सबसे बड़े कपड़ा मजदूर संघ को इसका मूल संघ माना जाता है।

'सेवा ' एक ही समय में एक संगठन तथा एक आन्दोलन दोनों ही है। एक आन्दोलन के रूप में यह तीन विभिन्न आन्दोलनों का संगम है। श्रमिक आन्दोलन, सहकारी आन्दोलन और महिला आन्दोलन। पर इसके इसके साथ ही यह स्वनियोजित मजदूरों का भी आन्दोलन है। महिलाओं के आर्थिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण के आन्दोलन के रूप में यह एक अनूठी मिसाल है। अपने ही आन्दोलन के माध्यम से महिलाऐं सबल एवं दृष्टिगोचर होती है, एवं समाज को उनके आर्थिक एवं सामाजिक योगदान की पहचान बनती है।

1.3.2.1 दार्शनिक आधारशिला

सामाजिक परिवर्तन के लिए संगठित 'सेवा ' की गरीब, दुर्बल, स्वनियोजित महिलाओं का मार्गदर्शक एवं प्रेरणास्रोत गाँधीवादी दर्शन ही है। गांधी के सत्य, अहिंसा, सर्वधर्म और खादी के सिद्धान्तों का इसमें अनुकरण किया गया है। महात्मा गांधी ने 1917 में कपड़ा मजदूरों की एक हड़ताल को अहमदाबाद में सफल नेतृत्व प्रदान किया था। उनका मानना था कि मजदूरों में चेतना जागृत करने से सकारात्मक संगठित बल की रचनात्मक सर्जना सम्भव थी, एकता और व्यक्तित्व को विकसित करके नियोक्ता या राज्य की निरंकुशता से बचा जा सकता था। इस बल का विकास, श्रमिक के पारिवारिक व कार्यस्थल के सभी पहलुओं को समेटने वाले श्रमिक संघ/संगठन से संभव हो सकता था।

1.3.2.2 लक्ष्य

'सेवा ' के मुख्य उद्देश्य महिला मजदूरों को पूर्व रोजगार/व्यवसाय दिलाना है। पूर्ण रोजगार का अर्थ है। वह रोजगार जिससे मजदूरों को कार्य सुरक्षा, आय सुरक्षा, खाद्‌य सुरक्षा एवं सामाजिक सुरक्षा (स्वास्थ्य, बाल सुरक्षा, एवं आश्रय) मिले।

1.3.2.3 उपलब्धियां

1. जनचेतना व जागृति अभियान

ये अभियान न सिर्फ आवश्यक मुद्दों को विशिष्टता प्रदान करते हैं बल्कि 'सेवा ' आन्दोलन को भी बल देते हैं। महिलाऐं व स्थानीय अगुआ ऐसे मुद्दों की पहचान करते हैं जो बड़ी संख्या में मजदूरों और जनता को प्रभावित करते हैं, और इन मुद्दों को जनचेतना व जागृति अभियान के केन्द्र में रखा जाता है। इस अभियान के अन्तर्गत मोहल्ला या गांव के स्तर पर लगातार बैठकें रखी जाती हैं जिनमें जनता का अधिक से अधिक प्रतिनिधित्व रखा जाता है, जैसे कि ग्राम सभा, ये अभियान मुद्दों के अनुसार, सारे क्षेत्रों एवं धंधों/व्यवसायों को छूते हैं। पिछले वर्षो में कई अभियानों ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की जबकि कुछ को लम्बे संघर्ष करने पड़े। पर कुल मिला कर, इन अभियानों में बड़ी संख्या में श्रमिकों मजदूरों ने भाग लिया है, अपने सृजनात्मक सुझाव व विचार दिए हैं, तथा इन्हें मजबूती प्रदान की है। कई बड़े नेताओं का जन्म इन अभियानों के माध्यम से हुआ है कुछ मुख्य अभियान इस प्रकार से हैं :-

गृह आधारित श्रमिक अभियान, विक्रेता अभियान, वन श्रमिक अभियान, निर्माण श्रमिक अभियान, जल अभियान, खाद्‌य सुरक्षा अभियान, बाल सुरक्षा अधिकार अभियान, दाइयों को मान्यता देने हेतु अभियान, न्यूनतम मजदूरी अभियान.

2. 'सेवा ' आन्दोलन

राज्य, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहकारी संघ एवं अन्य संघ के माध्यम से ये संचालित हो रहे है।

सहकारी समूह- सामाजिक, बचत व ऋण समूह।

राज्य संघ

गुजरात राज्य महिला 'सेवा ' सहकारी संघ, बनासकान्था ड्वाक्रा महिला 'सेवा ' संस्था, कच्छ शिल्प संस्था, खेड़ा जिला महिला बचत व साख संस्था, अहमदाबाद जिला सब्जी उत्पादक व विक्रेता संस्था, सुखी महिला मंडल, सांबर कान्था, खेड़ा मण्डल, सुरेन्द्रनगर जिला महिला व बाल विकास मंडल, श्री महिला 'सेवा ' अनुसूया ट्रस्ट, गुजरात महिला गश्ह 'सेवा ' ट्रस्ट, 'सेवा ' ग्राम महिला हाट, गुजरात शिशु संघ, 'सेवा ' बीमा, इत्यादि।

राष्ट्रीय संघ

राष्ट्रीय श्रमिक केन्द्र, नेशनल एलायंस ऑफ स्ट्रीट वेन्डर्स ऑफ इण्डिया (NASVI), और

अन्तर्राष्ट्रीय संघ

होमनेट, स्ट्रीटनेट. दक्षिण अफ्रीका में 'सेवा ' आन्दोलन यमन में 'सेवा ' व तुर्की में ' सेवा '

1.3.2.4 वैश्वीकरण की चुनौतियां

भारतीय अर्थव्यवस्था एवं समाज पर भूमंडलीकरण का विशिष्ट प्रभाव विभिन्न तरीकों से देखने को मिल रहा है। 'सेवा ' एक तरह से भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था का ही एक लघु रूप है 'सेवा' के सदस्यों के जीवन में आते हुए बदलाव का अध्ययन करके राष्ट्रव्यापी स्तर पर नीति। निर्माण में महत्वपूर्ण संशोधन किए जा सकते है। 'सेवा' ने इस परिवर्तित समय में गाँधीवादी सिद्धान्तों को कहीं अधिक प्रासंगिक एवं प्रभावशाली पाया है। इस परीक्षा की घड़ी में गांधीदर्शन प्रेरणा के स्रोत के रूप में खरा उतर रहा है, जो गाँधीवादी सिद्धान्तों की प्रमाणिकता सिद्ध करते हैं।

इस तरह से 'सेवा' एक ऐसी संस्था का जीता-जागता उदाहरण है जो समानता, न्याय जैसे गांधीवादी मूल्यों को आगे बढ़ाते हुए शान्ति को उस के सकारात्मक स्वरूप में प्रसारित कर रहा है जो कि भारत जैसे विकास शील राष्ट्र के लिए अति आवश्यक भी है। इसमें कोई दो राय नहीं कि 'सेवा' को भारत में गांधीवादी शांति आंदोलन के एक प्रभावशाली स्तम्म के रूप में देखा जाना चाहिए ।

1.3.3 खादी आन्दोलन

खादी, जिसे खद्दर के नाम से सामान्यत: जाना जाता है, आज की पीढी के लिए सम्भवत: बीते दिनों का एक पुराना वस्त्र है। उनकी कल्पना शक्ति को यह उतना नहीं छूता जितना उन पीढ़ियों को जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से स्वतंत्रता संग्राम के दौरान लोहा लिया। भारतीय स्वतन्त्रता से पूर्व यह आर्थिक स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता व भारतीय एकता का प्रतीक था। खादी आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अभिन्न व महत्वपूर्ण अंग था। गाँधी जी के हाथों में यह एक सशक्त शस्त्र के रूप में सिद्ध हुआ, जिसने भारतीय भूमि से औपनिवेशक ताकतों को बाहर खदेड़ा। गांधीवादी चिंतन से प्रभावित महत्वपूर्ण शांन्ति आंदोलनों में खादी आंदोलन उन शुरुआती आंदोलनों में से है जिन्हें गाँधी ने खुद सींचा।

1.3.3.1 पृष्ठभूमि

औद्योगिक क्रांति ने कपड़ा मिलों में बिजली करघा पैदा कर दिया था और बिजली करघों ने भारतीय वस्त्र मिलों को सुखा के रख दिया। कानून द्वारा पारित ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति ने भारत में उत्पादित सूत का इंग्लैण्ड को सस्ती दरों पर निर्यात एवं ब्रिटिश मिलों के कपडों का भारतीय बाजार में प्रवेश तथा स्थानीय लोगों द्वारा खरीदा जाना, आवश्यक बना दिया। लाखों की संख्या में भारतीय बुनकर तथा जुलाहे अपना काम खो बैठे। हाथ से बना एवं बुना हुआ कपड़ा जो भारत की शान था, मृतप्राय: हो गया और इसके साथ ही भारतीय वस्त्र से जुड़े बहुमूल्य परम्परागत ज्ञान के भंडार का भी अंत होने लगा।

1.3.3.2 आन्दोलन के कार्यक्रम एवं उद्देश्य

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गाँधीजी ने खादी को एक नये ब्राण्ड, नये दर्शन और नये कार्यक्रम के साथ पुनआविष्कार किया।

भारतीय खादी का सामान्य अर्थ है हाथ से बुना हुआ सूती कपड़ा। वैसे खादी का कच्चा माल सूती, रेशमी या ऊनी हो सकता है जिसे चरखे पर कातकर बुना जाता है। अपने देश के लाखों नागरिकों को विदेशी सामान के बहिष्कार, स्वदेशी खादी कपड़े के उपयोग एवं चरखा कातने की प्रेरणा देकर वे न सिर्फ भारतीय विरासत एवं हस्तकला में खोऐ हुए गर्व को पुर्नस्थापित कर रहे थे बल्कि औपनिवेषिक शोषण के खिलाफ वातावरण तैयार कर रहे थे। खादी एक सामाजिक आर्थिक वक्तव्य भी था। लाखों ग्रामीण दस्तकार, कारीगरों एवं शिल्पकारों को रोजगार देने के साथ-साथ उनका यह कार्यक्रम संपत्ति के समान वितरण, विकेन्द्रीकरण एवं शोषण को हटाने की तरफ लक्षित था। गाँधी जी के इस आह्‌वान से असंख्य भारतीय, जिसमें बुद्धिजीवी वर्ग, मध्यम वर्ग, सामान्य व्यक्ति, गरीबी रेखा से नीचे ग्रामीण जनता शामिल हैं प्रभावित हुए और चरखा चलाने को प्रेरित हुए। खादी की लहर समूचे देश में दौड़ गई। 1921 में प्रथम खादी निर्माण केन्द्र का उद्‌घाटन हुआ और लाखों चरखों के चलने के साथ भारतीय खादी का पुनर्जन्म हुआ।

1.3.3.3 उपलब्धियां एवं महत्व

खादी आंदोलन ने न सिर्फ स्वदेशी एजेंडे को आगे बढ़ाया बल्कि रोजगार भी पैदा किए। गाँधी जी जनता द्‌वारा उत्पादन चाहते थे न कि जनता के लिये उत्पादन (फैक्टरियों द्‌वारा)। वे लोगों में स्वयं की उत्पादन की संभावना के प्रति जागृति पैदा करना चाहते थे जो आर्थिक संरचना पर नियंत्रण करने में सहायक हो सकता था। उनका मानना था कि स्वदेशी के बिना स्वराज खोखला था। अगर स्वदेशी स्वराज की जान था तो खादी स्वदेशी की जान! खादी हाथ से बने कपड़े से कहीं अधिक था। ये स्वराज तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का सूचक था।

खादी आंदोलन अपने दृष्टिकोण में विशिष्ट रूप से अहिंसा पर आधारित था। लेखक गोल्डस्टन के अनुसार इस आंदोलन से किसी भी कानून का प्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन नहीं हो रहा था, पर ब्रिटिश राज अपनी ताकत शनै: शनै: खोता जा रहा था।

आज खादी वैश्वीकरण के दौर में तथा नव उपनिवेशवाद की मार के आगे फिर से अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। खादी भावुकता के आधार पर जीवित नहीं रह सकेगा। आज के युग में इसे जीवित रहने के लिए प्रतिस्पर्धी बनना होगा। फैशन डिजायनर की पसन्द बनने के पश्चात् ही इसकी भारतीयता इसकी विशिष्टता बन पायेगा।

खादी आंदोलन को नयी पीढ़ियों को खादी के सही अर्थो से अवगत कराना आवश्यक है। सरकार द्‌वारा खादी एवं ग्रामोद्‌योग आयोग की स्थापना एवं उसका व्यवस्थित संचालन इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हो रहा है। इ.एफ. शुमां के 'छोटा सुन्दर है' की तर्ज पर खादी गाँधी के सपनों के भारत की धुरी बन चुका है व पुन: उस स्थिति में आने में सक्षम है। आज की पीढ़ियों के समक्ष उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमंडलीकरण (L.P.G) की चुनौतियों से

लड़ने का भी यह एक सशक्त माध्यम है। इस लड़ाई के माध्यम से वे गांधी की धरोहर को एक सच्ची श्रद्धांजलि भी दे सकेंगे।

1.3.4 भूदान और ग्रामदान आन्दोलन

आजादी मिलने के बाद भारतीय नेताओं ने गाँधी के सिद्धान्तों को परित्याग करने में अधिक समय नहीं लिया अहिंसा का स्थान भारत की सशस्त्र सेनाओं ने ले लिया भारी एवं बड़े उद्योगों को 'आधुनिक भारत के मन्दिर ' की संज्ञा दी गई। स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने गाँधी के सपनों का भारत था जो स्वायत्त, आत्मनिर्भर गांवों के विकेन्द्रित समाज का भारत था, का पूर्ण तिरस्कार कर दिया। पश्चिम के अंधानुकरण के फलस्वरूप भारतीय नेतृत्व एक शक्तिशाली, केन्द्रीय शासन एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था की पुरजोर वकालत में लग गया।

परन्तु भारत में सभी की सोच ऐसी हो ये नहीं था, सभी ने गांधी को नहीं भुला दिया। गांधी के "रचनात्मक कार्यकर्ता", विकास विशेषज्ञ और समुदाय आयोजकों ने विभिन्न माध्यमों से जो गांधी के स्वयं द्वारा स्थापित हुए थे, उनके दर्शन के भारत को साकार करने का बीड़ा उठाया। गांधी की ही भांति उनके शिष्य विनोबा ये मानते थे कि भारत के समाज के पतन एवं इसके निष्क्रिय होने का मुख्य कारण इसके समाज के हिस्सों में गहरी असमानता है। विनोबा के अनुसार भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् जब स्वराज का लक्ष्य प्राप्त हो चुका था, गांधीवादी शक्तियों का लक्ष्य अब ऐसा समाज होना चाहिए जो 'सर्वोदय ' को समर्पित हो। 'सर्वोदय ' का अर्थ है 'सभी का कल्याण ' ।

भूदान और ग्रामदान, वास्तव में सर्वोदय के दर्शन के ही व्यावहारिक प्रयोजन है। इन्हें संकलित रूप में 'व्यवहार में न्यासिता ' कहा जा सकता है। भूदान और ग्रामदान से ही जुड़े कई अन्य कार्यक्रम भी थे जिनमें कुछ मुख्य इस प्रकार से हैं।

सम्पत्ति दान, श्रम दान, शान्ति सेना, सर्वोदय पात्र एवं जीवन दान।

1.3.4.1 दर्शन एवं लक्ष्य

विनोबा ने सर्वप्रथम, इस अभूतपूर्व एवं असाधारण आन्दोलन की शुरुआत की, जो भूदान आन्दोलन कहलाया। तत्पश्चात ग्रामदान आंदोलन का भी पटाक्षेप उन्हीं के हाथों हुआ। लगभग 20 वर्ष तक वे भारतवर्ष में भ्रमण करते रहे उनके प्रभाव से जमींदारों एवं भूस्वामियों ने गरीब व जरूरतमंदों में चालीस लाख एकड़ भूमि दान की। अप्रेल 18, 1951 को शुरू हुए आन्दोलन ने पूरे विश्व के मानचित्र पर भारत को केन्द्र में खड़ा कर दिया। प्रसिद्ध व ख्याति से दूर विनोबा ने न्यायप्रिय एवं समतामूलक समाज के निर्माण के लिए अपना अभियान जारी रखा। 1954 के पश्चात् विनोबा ने भूदान के स्थान पर ग्रामदान का अभियान तेज कर दिया। ये नई अवधारणा नहीं थी। अगर भूदान के माध्यम से जनता को अहिंसक क्रांति के लिए तैयार किया जा रहा था, तो विनोबा के लिए ग्राम दान ही अपने आप में क्रांति थी।

ग्रामदान भूदान से अधिक क्रांतिकारी प्रोग्राम था। एक ग्रामदानी गांव में सारी भूमि का सामूहिक प्रोग्राम था। एक ग्रामदानी गांव में सारी भूमि का सामूहिक स्वामित्व कानूनी तौर पर पूरे गांव का होता था, परन्तु वे आवश्यकतानुसार हर परिवार को आवंटित कर दी जाती। चूंकि

परिवार भूमि को स्वयं बेच नहीं सकते थे किराये पर नहीं दे सकते थे या गिरवी नहीं रख सकते थे इसलिये वे 'अपनी भूमि से कभी बेदखल' नहीं हो सकते थे - जैसा कि सामान्यत: भूमि सुधार कार्यक्रम के समय मिली भूमि गरीबों के संकट के समय बेचनी पड़ जाती थी।

गांव के मसलों के लिए गांव के वयस्क सदस्यों की एक ग्राम समिति बनाई जाती थी जो सर्वसम्मति से निर्णयों पर पहुंचती थी यानि हर व्यक्ति की सहमति से ही कोई निर्णय हो पाता था। ऐसा इसलिए किया गया ताकि सभी का सहयोग बना रहे एवं दूसरों की कीमत पर किसी व्यक्ति को लाभ की स्थिति न बने।

विनोबा का मानना था कि समान भू-स्वामित्व एवं सहकारी निर्णय-निर्माण से आवश्यक एकता को प्राप्त किया जा सकता था। एक बार ये प्राप्त हो जाने पर 'जनता की शक्ति' द्वारा समाज में वांछित परिवर्तन संभव हो सकते थे।

1.3.4.2 उपलब्दियां एवं सीमाऐं

सरकारी आकड़ों के अनुसार 1970 तक लगभग 1,60,000 गांव ग्रामदानी घोषित हो चुके थे। पर शीघ्र ही ये दिखने लगा था कि ग्रामदान (भूदान इसमें बाद में शामिल सा ही माना जा सकता है) को घोषणाऐ जितनी सहजता से होती थी, उन्हें व्यावहारिक तौर पर ग्रामदानी बनाना आसान नहीं था। 1970 की शुरुआत तक बहुत से गांवों का भू-स्वामित्व ग्राम समिति को नहीं सौंपा जा सका था। जल्द ही ग्रामदान एक आंदोलन के रूप में समाप्त सा हो गया।

फिर भी, ग्रामदान आंदोलन की उपलब्धियों को कम नहीं आका जा सकता। भूमि सुधार कानून से जो प्राप्त किया जा सका था उससे कहीं अधिक इस आंदोलन ने कर दिखाया था। इसकी विशेषता यह भी थी कि ये सारा अहिंसक एवं शांतिपूर्ण ढंग से संपादित हुआ था। इस आंदोलन ने बहुत सारे ऐसे ग्रामदानी केन्द्र बना दिये थे, जहां इसका प्रभाव लम्बे समय तक रहा था व जहां गाँधीवादी कार्यकर्ता लम्बे विकास के कार्यक्रमों को चलाने हेतु बस भी गये। ये केन्द्र आज भारतीय गाँधीवादी शांति आंदोलन के ऊर्जा-स्त्रोत है। यहां गाँधीवादी कार्यकर्ता सक्रिय ढंग से गाँधीवादी तरीकों से सामुदायिक कार्यक्रम चला रहे हैं व अन्याय के विरूद्ध अहिंसक अभियान छेड़े हुए हैं। विचारों के फैलाव के साथ-साथ वास्तविक परिवर्तन से लोगों के विचारों पर सकारात्मक प्रभाव भी पड़ता है।

भारत की मूल आर्थिक समस्याओं यथा भू-संग्रहण एवं उनका भूमिहीनों के मध्य समतापूर्ण वितरण गाँधीवादी विचारों से किया जा पाना इस आंदोलन द्वारा संभव हो सका। इस प्रकार गाँधी के विचारों को पुनर्जीवित करने में यह आंदोलन सफल रहा। इसने कई तरह से भारतीय एवं विदेशियों के मन में, गाँधी के विचारों व उनकी प्रासंगिकता के प्रति संवेदना जगाने का कार्य भी किया।

1.4 सारांश

इस प्रकार हमने यह देखा कि गाँधी दर्शन भारतीय जन जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त होते हुए कई प्रकार के शांति आन्दोलनों को जन्म देता है जिनका वर्णन उपर किया गया है, उनके अलावा कई अन्य प्रकार के शांति आन्दोलन यथा पंचायती राज आंदोलन, नशाबंदी

आन्दोलन, आदिवासी आन्दोलन भी उल्लेखनीय है जो भारत में उपस्थित रहे हैं. ये सभी अलग अलग एवं सामूहिक रूप से शांति की स्थिति पैदा करके उसे बनाते एवं पोषित करते हैं, और इसलिए शांति आंदोलन के नाम से जाने जाते हैं।

1.5 अभ्यास प्रश्न

1. गाँधीवादी शांति आंदोलन से आप क्या समझते है?
2. भारत के शांति आंदोलनों की चर्चा कीजिए ।
3. चिपको आन्दोलन व खादी आंदोलन की उपलब्धियों एवं सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
4. भूदान, ग्रामदान आंदोलन व 'सेवा' आंदोलन की प्रासंगिकता पर निबन्ध लिखिए।
5. शांति आन्दोलनों के ऐतिहासिक परिदृश्य को समझ सकेंगे।
6. गाँधीवादी शांति आन्दोलनों को समझ सकेंगे।
7. गाँधीवादी शांति आन्दोलनों की दार्शनिक आधारशिला की व्याख्या कर सकेंगे।
8. गाँधीवादी शांति आन्दोलनों की चुनौतियों, लक्ष्यों व उपलब्धियों को समझ सकेंगे।

1.8 संदर्भ ग्रंथ

1. मणिवन्नन, आर., "एन इंटरोडक्शन टू द पीस मूवमेंट्स इन इंडिया" गाँधी मार्ग गाँधी पीस फाउंडेशन, नई दिल्ली, अप्रेल जून 1986।
2. उम्मन, टी.के. प्रोटेस्ट एण्ड चेंज : स्टडीज इन सोशल मूवमेंट्स, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1990 ।
3. बरोज राबॅर्ट जे., द स्ट्रेटजी ऑफ नॉन वायलेन्ट डिफेन्स : अ गांधियन अप्रोच, स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ एन वाय प्रेस, अल्बानी, 1996 ।

अध्याय - 2

भूदान - आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भूदान : सर्वोदय का अनुप्रयोग एवं क्रियान्विति

2.3 भूदान का इतिहास

2.3.1 भूदान आन्दोलन की पृष्ठभूमि

2.3.2 तेलंगाना ने दिखाया यह रास्ता

2.3.3 भूदान आन्दोलन का जन्म

2.4 भूदान : उद्विकास एवं क्रियान्विति

2.5 भूमि का वितरण

2.6 अन्तर - राज्य तुलना

2.7 1967 की स्थिति

2.8 सारांश

2.9 अभ्यास प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

यह इकाई भूदान-आन्दोलन से सम्बन्धित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप-

- भूदान आन्दोलन के इतिहास को जान सकेंगे,
- भूदान आन्दोलन के अनुप्रयोग एवं क्रियान्विति को समझ पायेंगे,
- भूदान आन्दोलन के दौरान हुए भूमि वितरण को जान सकेंगे, तथा
- भूदान आन्दोलन के सम्बन्ध में विभिन्न राज्यों की स्थिति का तुलनात्मक ज्ञान होगा।

2.1 प्रस्तावना

यह सत्य है कि हमारे देश में मुख्य आर्थिक समस्याओं में से एक भूमि की समस्या है। व्यापक रूप से इस समस्या के दो पहलु थे - एक किसानों को कृषि आगमों (जैसे - सिंचाई सुविधाऐं, खाद्य, उन्नत बीजों, यांत्रिक उपकरण, पर्याप्त कृषि प्रबन्ध आदि) को, जो कि भूमि की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए आवश्यकता थे, उपलब्ध करवाने की समस्या थी। समस्या का दूसरा पहलु जमीन से जुड़े लोगों की विभिन्न श्रेणियों के बीच सम्बन्धों की बढ़ती समस्या के समाधान से सम्बन्धित थी। ये दोनों पहलु अन्तर्सम्बन्धित थे । उदाहरण के लिए - किरायेदारों का संरक्षण न केवल भूस्वामियों और किरायेदारों के बीच सम्बन्ध स्थिर बनाता है बल्कि जमीन

के प्रबन्ध की क्षमता भी बढ़ाता है। इसी प्रकार कृषि का यंत्रीकरण भी जमीन के आकार एवं स्वामित्व की समस्या के समाधानार्थ जरूरी माना गया है। यंत्रीकरण के लिए खेतों का पर्याप्त बड़ा आकार एक पूर्व मान्यता है और इस रूप में प्रश्न उठते हैं खेतों का मालिक कौन होना चाहिए? व्यक्ति, सहकारी संस्थाऐं या राज्य और उनमें से कौन सबसे पर्याप्त उत्पादन सुनिश्चित करायेगा?

हालांकि उत्पादन एवं जमीन सम्बन्ध की समस्या अन्तर्सम्बंधित है फिर भी आर्थिक विकास के कार्यक्रम में उसकी सापेक्ष महत्ता बहस का बड़ा विषय रहा है। सम्पूर्ण रूप में, वामपंथी राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों में स्वामित्व एवं जमीन के सम्बन्ध की समस्याओं को बड़ा महत्व दिया जाता है तो दूसरी ओर दक्षिणपंथी राजनीतिक दलों के कार्यक्रमों में उत्पादन की समस्या पर बड़ा जोर दिया जाता है। हालांकि भारत के योजना आयोग ने शुरू से ही नियोजन में इन दोनों प्रकार की समस्याओं पर जोर दिया है। जहाँ तक स्वामित्व एवं जमीन के सम्बन्ध की समस्याओं का सम्बन्ध है सरकार ने द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक मुख्य रूप से अपने को -

(क) स्वामित्व के अधिकारों की समाप्ति (जैसे - मालगुजारी, जमींदारी आदि), तथा

(ख) किरायेदारों को संरक्षण प्रदान करने, के साथ जोड़ लिया था।

भूमिहीन श्रमिकों की समस्या पर इस दौरान बहुत ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया। इस समस्या पर तब ध्यान दिया गया जब कुछ राज्यों में तृतीय पंचवर्षीय योजना के दौरान सिलिंग (हदबन्दी) कानून पारित किये गये थे। भूदान आन्दोलन एवं उत्पादन की समस्या के बीच बहुत अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भूदान का क्षेत्र भू-स्वामित्व की समस्या के समाधान के लिए मुख्यत: सीमित है। हालांकि हाल में घटित घटनाओं ने दिखा कि 1951 में इसकी उद्घोषणा से ही भूदान का विशेष जोर भू-स्वामित्व की समस्या पर पूर्णतया न्यायोचित है।

2.2 भूदान - सर्वोदय का अनुप्रयोग एवं क्रियान्विति

भूदान जमीन की समस्या के समाधान की ओर सर्वोदय विचारधारा का एक महत्वपूर्ण अनुप्रयोग है। ग्रामदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान सर्वोदय के अन्य अनुप्रयोग है। हालांकि उत्तरवर्ती देश के कई भागों में आरम्भिक चरण में है। केवल भूदान जो कि 18 वर्षों के लगभग का इतिहास रखता था इस अर्थ में महत्वपूर्ण हो सकता था कि उसके विविध प्रक्रियाऐं (दान, हस्तांतरण एवं वितरण) देश के कई भागों में पूरी हुई है। भूदान ने लोगों के बीच व्यापक पहचान बनायी, यह संभवत: न केवल देश में बल्कि दुनिया भर में, सामाजिक अभियंत्रण (Social Engineering) के क्षेत्र में अब तक उठाए गए महानतम स्वैच्छिक एवं गैर-सरकारी परीक्षण हैं।

वास्तव में सर्वोदय दर्शन तात्विक रूप से जीवन और कर्म के गाँधी दर्शन के आधारों पर टिका हुआ है। इस विचारधारा के मूल आधार पूर्णतया सरल है और जिन्हें इस रूप में भी रखा जा सकता है कि “ मनुष्य मूलत: अच्छा होता है। 'अच्छाई' या तो स्वाभाविक होती है या 'ईश्वर-प्रदत्त ’ होती है। सत्य, अहिंसा, मानवता, सहिष्णुता, धैर्य, साहस, त्याग आदि की तलाश को अच्छाई की मुख्य विशेषताओं के रूप में वर्णित किया जाता है। बेशक अच्छाई की प्रतिकूल

परिस्थितयों, जैसे - सामंतवाद या पूँजीवाद के तहत्, विकृत होने की संभावना होती है। हालांकि सर्वोदय के समर्थक विश्वास करते हैं कि यह संभव है एक व्यक्ति को उचित शिक्षा एवं जागरूकता के साधनों द्वारा उसको अच्छाई के प्रति सचेत बनाया जा सकता है। एक बार अच्छाई के प्रति सचेत होने के बाद वह आसानी से सर्वोदय समाज (एक समाज जो सभी प्रकार के शोषण एवं भेदभाव से मुक्त है और जिसमें सभी का कल्याण हो) की स्थापना के लिए जरूरी कार्यो को सम्पादित करता रहता है।

सर्वोदय दर्शन के तहत् सर्वोदय के अनुयायी एक समाज को 'चेतना की एकता' के रूप में देखता है और विभिन्न सामाजिक - आर्थिक संघर्षो का समाधान पारस्परिक सहयोग से करने की कोशिश करता है। हालांकि व्यावहारिक पर्यवेक्षक के रूप में वे सामंतवाद या पूँजीवाद के तहत् विभिन्न संघर्षो को देखते हैं। उनके अनुसार जो एक तत्व इन संघर्षो के लिए जिम्मेदार है और जिसके साथ हिंसा जुड़ी रहती है वह है - असमानता। इसके विविध रूपों में होता है। लेकिन उनको विश्वास नहीं है कि असमानता आरंभिक हिंसा पर निर्भर है जिसे प्रति-हिंसा द्वारा हटाया जा सकता है। उनको विश्वास है कि यह संभव है उचित शिक्षा के द्वारा लोगों आरम्भिक हिंसा को रोकने में तथा परिणामत: समाज में उत्पन्न असमानताओं को रोकने में सहायता हो सकती है। असमानताओं के विविध रूपों को कम करने की दृष्टि के साथ वे विविध प्रकार के उपहारों का आह्‌वान करते हैं।

इस संदर्भ में सर्वोदय के कार्यकर्त्ता महसूस करते हैं कि ग्रामीण भारत में विद्‌यमान असमान स्थिति विद्‌यमान शोषित के विरूद्ध शोषक द्वारा संभाव्य हिंसा है। हालांकि वे विश्वास नहीं करते हैं कि हिंसक साधनों द्वारा "शोषकों का स्वामित्वहरण या सम्पत्तिहरण ग्रामीण समाज के संघर्षों एवं तनावों का स्थायी समाधान प्रस्तुत करेगा वे शोषकों की सम्पत्तिहरण नहीं बल्कि उनका रूपांतरण चाहते थे।" गाँधीजी की इच्छा थी कि उद्‌योगपति ट्रस्टी के रूप में कार्य करें ताकि श्रमिकों और नियोजकों के बीच संघर्षो का समाधान हो सके। सर्वोदयी और भूदानी चाहते हैं कि जमीन मालिक उनकी जमीन का कुछ भाग भूदान करे ताकि भूमिहीनों को भी पुनर्वासित किया जा सके और स्वामियों और गैर-स्वामियों के बीच संघर्ष का समाधान हो सके।

यहाँ उल्लेख करना जरूरी है कि यह सोचना गलत होगा कि एक साधन के रूप में भूदान ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक संघर्षो की समस्या के समाधान में सर्वोदयी का स्वायत्त एवं शांत वार्ताओं के परिणाम के रूप में प्रयुक्त हुआ था। इसका उद्भव 1951 में भूतपूर्व हैदराबाद (अब आंध्र प्रदेश) राज्य के तेलंगाना क्षेत्र के कुछ जिलों की विशेष परिस्थितियों के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। दूसरी बात यह याद करनी है कि यह आन्दोलन एक व्यक्ति आचार्य विनोबा भावे के महान् व्यक्तित्व के साथ पूर्णरूप से जुड़ा हुआ रहा है। मूलत: अन्य सर्वोदयी नेताओं ने इसके उद्भव में योगदान किया लेकिन विनोबा के विभिन्न समयों पर लिए गए निर्णयों एवं उनकी पैदल यात्राओं में भारत में भूमि सुधार आन्दोलन के आकार एवं कार्य को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

2.3 भूदान का इतिहास

2.3.1 आन्दोलन की पृष्ठभूमि

गाँधीजी की मृत्यु के छः सप्ताह के भीतर ही मार्च 1948 में कई सारे रचनात्मक कार्यकर्ताओं, नेताओं एवं गाँधीजी के सहयोगियों ने स्वर्गीय डी. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में वर्धा में एक सम्मेलन आयोजित करने का निर्णय लिया। परिणामस्वरूप वहाँ गाँधी के सपनों के भारत के निर्माण पर चर्चा हेतु सभी सर्वोदयी कार्यकर्ता एकत्रित हुए। विनोबा ने इस सम्मेलन में सर्वोदय समाज के निर्माण का प्रस्ताव रखा। इस समाज के प्रस्ताव में गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम को गति प्रदान करना और ग्राम-गणराज्यों के आधारों पर नये भारत का निर्माण करना शामिल था। वास्तव में, यह प्रयास गाँधीवादी कार्यकर्ताओं को एकजुट करना था जो अब तक बिना साझा कार्यक्रम के अलग अलग कार्य कर रहे थे।

सेवाग्राम सम्मेलन के बाद विनोबा जी अपने भावी कार्यों को पूरा करने हेतु परमधाम आश्रम चले गये। वे एक स्पष्ट विचार रखते थे, स्व-शासन, प्रबुद्ध एवं शांतिप्रिय भारतीय किसानों की मूलभूत आवश्यकताओं के संदर्भ में, जो सम्पूर्ण देश में आर्थिक स्थिरता एवं आत्म-निर्भरता लाएगा।

विनोबाजी जानते थे कि भारत की अर्थव्यवस्था स्थिर थी और उसकी कृषि सम्बन्धी ढाँचा जीर्णशीर्ण हो चुका था। ज्यादातर लोग अस्वस्थकर दशाओं में तथा भयानक गरीबी में रहते थे। बहुसंख्यक किसान दोनों वक्त के भोजन की व्यवस्था हेतु पर्याप्त जमीन भी नहीं रखते थे। ग्रामीण अर्थव्यवस्था गतिहीनता के दलदल में फंसती चली जा रही थी और खेतीहर धीरे-धीरे भूमिहीन श्रमिकों की श्रेणी में रूपांतरित होते जा रहे थे।

हालांकि कई राज्यों ने जमींदारी उन्मूलन विधेयकों तथा भूमि वितरण कानूनों को पारित किया था लेकिन अर्थव्यवस्था की मध्ययुगीन विशेषता बड़ी सर्वोपरि थी और गन्दगी, गरीबी एवं अज्ञानता चारों ओर फैली हुई थी इसलिए कृषि संरचनाओं में बिना उग्र परिवर्तन के कुछ भी वास्तव में प्रेषित नहीं किया जा सकता था। इसी सम्बन्ध में केवल गाँधीवादी रचनात्मक कार्यक्रमों में ही एक आशा दिखाई देती है जो ग्रामीण संरचना प्रतिमान में बदलाव लाने में सहायता कर सकता था, समझा-बुझाकर एवं हृदय परिवर्तन करके उनका जो अत्याधिक मात्रा में जमीन तथा सम्पत्ति रखते है।

विनोबा जी ने सहकारी जीवन एवं भूमि वितरण के नये सूत्र विकास हेतु तीन वर्षों तक (1949-51) अभ्यास किया था। उनके लिए ये वर्ष बड़े चिन्तन और स्व-अनुशासन में रहे थे। विनोबा जी ने जमीन पर बहुत कठोर श्रम किया कंचन-मुक्ति के साथ उनके परिक्षणों के अवलोकन में तथा वास्तव में अपने आप को खेतीहर श्रमिक की स्थिति में ले आये।

2.8.2 तेलंगाना ने दिखाया यह रास्ता

इसी समय विनोबाजी को अप्रैल, 1951 में सर्वोदय समाज के तृतीय सम्मेलन में शामिल होने के लिए बुलाया गया था। वे इसमें शामिल होने के लिए बहुत ज्यादा उत्सुक नहीं

थे। लेकिन बाद में श्री शंकरराव देव के निवेदन के चलते वे सम्मेलन में जाने को सहमत हुए और **पवनारआश्रम** से शिवरामपल्ली (यह स्थान वर्धा से लगभग 30 मील की दूरी पर हैदराबाद के जिले में स्थित था) तक पैदल यात्रा करने का निर्णय लिया।

उन दिनों हैदराबाद का तैलंगाना प्रदेश (अब आंध्र प्रदेश) सम्पन्नता के बीच में गरीबी के रोग की पीड़ा झेल रहा था।

यदि देश का कोई ऐसा भाग होगा जिसके गाँव वालों की स्थिति तेलंगाना के जैसा बुरी स्थिति रही थी। वे बड़े भू-स्वामियों द्वारा शोषण के दमन की बहंगी में जुते हुए थे। अमीर और गरीब के विद्यमान खाई बड़ी चौड़ी थी कि हैदराबाद के अलावा कोई दूसरा ऐसा स्थान नहीं था जहाँ इस तरह की दयनीय स्थिति देखी जा सकती हो। स्वभावतः इसने साम्यवादियां का ध्यान अपनी ओर खींचा। वे गरीबी से पीड़ित क्षेत्रों में आ गये, लोगों से मिले और उनकी दु:खभरी कहानियाँ सुनने लगे। साम्यवादियों ने वहाँ के स्थानीय लोगों के बीच बड़ी आय असमानता पायी और इसे अपने तरीके से कम करने की कोशिश में लग गये। परिणामत: वे भू-स्वामियों को धमकाने और शक्ति द्वारा उनकी जमीन व सम्पत्ति छिनने में संलिप्त हो गये। वहां ज्यादातर गाँवों में जमीन एवं धन का कु-वितरण हो रखा था। साम्यवादियों ने इस अवसर का लाभ उठाया। उन्होंने गरीब लोगों के बीच एक प्रकार की सामान्य चेतना को जगाया और अमीरों के साथ हिंसक तरीके से व्यवहार करने लगे। इस प्रकार तेलंगाना साम्यवादी गतिविधियों का खतरनाक क्षेत्र बन गया। पुन: सरकार द्वारा पुलिस कार्यवाही के कारण स्थित और दयनीय हो गयी। दोनों ही पार्टियाँ लूट का शिकार बनीं तथा कई अबोध लोगों को कम्युनिष्टों के हाथों हिंसा की पीड़ा सहन करनी पड़ी। इसी तरह, आतंक का साम्राज्य सम्पूर्ण तेलंगाना में कायम हो गया और लोग एक भयानक, कठोर तथा आँसुओं व भयपूर्ण जीवन जीने लगे।

15 अप्रैल, 1951 को सम्मेलन की समाप्ति के बाद विनोबा जी ने शिवरामपल्ली से तेलंगाना की पैदल यात्रा शुरू की। शांति सेना के सैनिक के रूप में विनोबा जी ने शांति के संदेश का प्रचार-प्रसार किया। उसने तेलंगाना की समस्याओं का शोध किया। उन्होंने सभी समस्याओं के मूल में जमीन के कु-वितरण को सबसे महत्वपूर्ण कारक माना। विनोबा ने देखा कि कुछ लोगों के पास हजारों एकड़ जमीन थी जबकि दूसरों के पास कुछ भी नहीं थी। यहां तक कि उनकी साख के लिए एक बीघा भी नहीं थी। गांव वालों को पूर्ण रोजगार भी नहीं मिला था। जमीन पर उनको पर्याप्त रोजगार उपलब्ध नहीं था। सूती उद्योग व्यवहारत: नदारद था। सम्पूर्ण कृषक वर्ग गरीबी में पिसता जा रहा था। इन सभी के चलते कुछ साम्यवादियों ने भू-स्वामियों की हत्या की और उनकी जमीन को अपने बांट लिया। बाद में सरकार ने पुलिस कार्यवाही द्वारा कम्युनिष्टों को घेरने की कार्यवाही लेकिन यह आन्दोलन हाइड्रा के समान व्यापक शक्ति ग्रहण कर ली और सम्पूर्ण तेलंगाना में फैल गया।

इस क्षेत्र की तीन दिन की यात्रा करने के बाद विनोबा 18 अप्रैल 1951 को पोचमपल्ली गाँव पहुँच गया। इस गाँव में 700 घर थे और यहां तीन हजार से ज्यादा लोग रहते थे। विनोबा जी ने इस गाँव में घूमें और स्थानीय लोगों से बातचीत की। विनोबा जी की पवनार के संत के रूप में प्रतिष्ठा चारों ओर फैल चुकी थी इसलिए वे जिधर भी जाते उधर ही

भीड़ एकत्रित हो जाती। गाँव के हरिजनों की बस्ती में उन्होंने देखा कि स्थिति बड़ी दुखदायी और संकटमय था। हरिजन या अस्पृश्य जमीन चाहते थे और इसलिए वे विनोबा के पास आये और उनसे प्रार्थना की कि इस मामले में वे सरकार से कहें। इसका विनोबा ने जवाब दिया कि सरकार की सहायता का कोई महत्व नहीं है जब तक कि हम हमारी सहायता नहीं कर सकते। इसके साथ ही विनोबा ने कुछ भू-स्वामियों की खोज करना शुरू कर दी जो भूमिहीनों को जमीन दे सकें। एक महान व्यक्ति रामचन्द्र रेड्डी विनोबा जी के पास आकर खड़ा हुआ और विश्वासपूर्वक कहा -

"श्रीमान्, मैं जमीन देने को तैयार हूँ"

विनोबा ने शांति से पूछा कि " कितनी जमीन" देंगे।

श्रीमान् रेड्डी ने जवाब दिया जितनी आपको जरूरत है। इसके साथ ही उन्होंने घोषणा की कि वह उसकी जमीन का 100 एकड़ हिस्सा दान देंगे। इसने विनोबा को आश्चर्यचकित् कर दिया। उन्होंने उससे दोहराते हुए पूछा वह क्या कह रहे थे और उन्होंने विनोबाजी को कठोर दृढ़निश्चय के साथ कहा वह उसे जमीन देंगे जो कि 100 एकड़ होगी। इस प्रकार रामचन्द्र रेड्डी ने भूदान विलेख पर हस्ताक्षर किए और उसे विनोबा जी को सौंप दिया।

इसी दिन शाम को विनोबा जी ने एक प्रार्थना को सम्बोधित किया और वातावरण बड़े आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण था। विनोबा के मस्तिष्क में एक प्रकाश की किरण ने प्रभाव डाला और उसने भूमिहीनों की समस्या के समाधान पा लिया।

2.3.3 भूदान आन्दोलन का जन्म

भू-दान की इस पहली घटना ने विनोबा जी को बैचेन किया और उस रात वे सो नहीं सके। उनका मस्तिष्क एक बड़े भविष्य की दृष्टि से आक्रांत था। उसने इस चमत्कार के बारे में सोचना शुरू किया। उसने अपने आप से प्रश्न किया कि क्या वह एक एकाकी था या क्या यह असंबंधित प्रघटना थी या क्या यह लकड़ी में आग के समान कोई अन्य शक्ति उसे आवृत्त तो नहीं कर रही थी? विनोबा ने प्रथम दान को ईश्वर की इच्छा के रूप में ग्रहण किया जो सर्वोच्च सत्ता का एक संकेत था जो प्रत्येक व्यक्ति में निवास करती है और वह समझ चुका था कि पोचमपल्ली में जो घटित हुआ था उसका सम्भवत: कहीं पर भी दोहराव सम्भव है। इस घटना ने मानव की प्रकृति की अच्छाई में विश्वास और भावना को मजबूत किया। वे मान चुके थे कि यह दान केवल व्यक्तिगत सोच द्वारा ही सम्पन्न नहीं हो सका था। इसके पीछे बहुत बड़ी सामाजिक शक्ति का हाथ था।

परिणामत: विनोबा ने सोचना शुरू किया कि प्रकृति की योजना कभी भी भेदभावकारी नहीं थी। एक " फिजियोक्रेट के समान विनोबा ने प्रकृति की व्यवस्था और उसके लाभदायक चरित्र में विश्वास किया। माँ के समान प्रकृति न केवल लोगों को खाद्यान ही उपलब्ध नहीं कराती बल्कि उच्च सत्ताओं के साथ यह भी अपनी भावनाओं को बाँटती है। और तत्काल ही उन्होंने महसूस किया कि एक सर्वोच्च सत्ता उससे एक नये मिशन को पूरा करवाना चाहती है जिसको वह पहले ही हासिल करने का मन बना चुका था।

अगले पड़ाव पर उन्होंने अपने कार्यक्रम को "भूदान योजना" का नाम दिया और उसके दर्शकों को समझाया कि भूदान के विचार का कोई भी पूर्व नियोजित कारण नहीं था। लेकिन भूदान की पहली घटना ने अहिंसा में उसके विश्वास को पक्का कर दिया और इसकी शक्ति सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का समाधान करती है। इस प्रकार भूदान आंदोलन का जन्म हुआ और विनोबा ने अहिंसक आर्थिक क्रान्ति का मार्ग खोज लिया।

विनोबा जी ने तेलगांना की 51 दिवसीय यात्रा की। इस दौरान वे 200 गाँवों में घूमें 51 स्थलों पर शिविर लगाये, 200000 से ज्यादा लोगों से बातचीत की और भूमिहीनों के बीच वितरण हेतु 12,201 एकड़ जमीन प्राप्त की।

तेलंगाना यात्रा के बाद वे अपने पवनार आश्रम लौटे। पोचमपल्ली से पायनार तक यात्रा का समय भूदान के उद्भव का एक-लधुकारी चरण था। परमधाम आश्रम में उन्होंने इस पर बहुत चिन्तन किया, अब वे इसके लिए निश्चित थे, कि यदि सही रूप से निर्देशित किया और सही अवसर दिया तो लोग अपनी समस्याओं का समाधान खोज लेंगे और इस अर्थ में ही वे अपने लक्ष्यों को पूरा कर पायेंगे।

पवनार आश्रम में विनोबा जी ने यह उद्घोषणा की कि - "जो कार्य मैंने शुरू किया उसे भूदान योजना के रूप में जाना जाता है। यह केवल भूदान ही नहीं है, यह एक मिशन है जिसमें हम सभी को सहयोग करना चाहिए। ईश्वर ने जब मुझे शक्ति दी है तो मैं देश की यात्रा करूँगा और भूमिहीनों के लिए जमीन की भीख माँगूगा। जमीन हवा और पानी के समान सभी लोगों की साझा सम्पत्ति होनी चाहिए और सभी में समान रूप से वितरित होनी चाहिए।"

इसके अतिरिक्त पवनार से वापसी के पूर्व आव्हान् किया कि वे पवनार आश्रम तब तक नहीं लौटेंगे जब तक कि भूमि वितरण की समस्या का समाधान नहीं हो जाता। 12 सितम्बर, 1951 को विनोबा ने अपना आश्रम छोड़ दिया और अपने भूदान मिशन को पूरा करने के लिए पैदल ही चल पड़े।

तेलंगाना आंदोलन के बाद विनोबा जी पायनार आश्रम में अपने कंचन-मुक्ति कार्य को पुन: शुरू किया जिसको उन्होंने अन्त में कई वर्षो तक जारी रखा। भूदान का उस समय तक काफी प्रचार हो चुका था और कई विचार मत इस आन्दोलन के पक्ष और विपक्ष में दिए जा रहे थे। जब यह समाचार पं. नेहरू के पास पहुँचा, वे भूदान और भूमि सुधार पर विनोबा के विचार जानने को उत्सुक हो गए। वे प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप प्रतिवेदन, जो कि निर्माणाधीन था, पर विनोबा के विचार भी जानना चाहते थे। पं. नेहरू ने आर.के. पाटिल, जो योजना आयोग के एक सदस्य थे, को प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप रूपरेखा पर विनोबा के साथ विचार-विमर्श हेतु पवनार भेजा। विनोबा ने इस योजना को नहीं सराहा विशेषकर के उस भाग को जो कि खादी और ग्रामोद्योग से जुड़ा हुआ था। उनको यह लगा कि यह गाँधी की भावना का पूर्ण निषेध है। विनोबा अपने दृष्टिकोण से बहुत ज्यादा आलोचक थे और टिप्पणी की कि "मैं मेरे और योजना आयोग के दृष्टिकोण में कोई सामान्य अन्तर नहीं खोज सका। यह भी सम्भव नहीं होगा कि इसका यहाँ से कुछ पंक्तियों को हटाकर इसको सुधार दिया जाए। यदि आप मेरे विचारों को स्वीकारते हो तो सम्पूर्ण योजना को संशोधित करना होगा।" विनोबा ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यह योजना नीति के निदेशक तत्त्वों के साथ भी संगत नहीं थी। उन्होंने

यह भी कहा कि “यदि तुम सभी के लिए काम उपलब्ध नहीं करा सकते तो तुम्हें त्यागपत्र देना चाहिए आप ग्रामोद्योग को अपने आप समर्थन की बात कही है। यह ठीक वही बात है कि आप पहले मेरे पैरों को काट दीजिए और फिर मुझसे खड़ा होने को कहिए।” और इसी बिन्दु पर जोर देते हुए पुन: घोषणा की कि “मैं दो वर्ष के भीतर सम्पूर्ण भारत में घर में बना वस्त्र पहना सकता हूँ। यदि मैं यह नहीं कर सकूँ तो आप मुझे फाँसी के तख्ते पर लटका देना। लेकिन यह पूर्णतया अलग बात है कि यदि आप सभी को घर में बने कपड़े नहीं पहनने देना चाहते हो।”

बैठक के बाद श्री पाटिल ने अपनी बातचीत का परिणाम योजना आयोग के अध्यक्ष स्वर्गीय पण्डित नेहरू को बताया। विनोबा के क्रोध ने नेहरू और योजना आयोग के अन्य सदस्यों को चिन्तित किया। यहाँ हमेशा ही भारत की औद्योगिक आवश्यकताओं और ग्राम आत्म-निर्भरता के गाँधीवादी लक्ष्य के बीच संघर्श रहा। पं. नेहरू ने विनोबा को सलाह मशविरा हेतु दिल्ली बुलाया। सितम्बर, 1951 में प्रार्थना के समय पवनार में विनोबा जी ने इस पत्र का उल्लेख किया और कहा कि “यह सम्भव है कि मेरा दिल्ली जाना ज्यादा लाभदायक न हो। लेकिन कम से कम योजना आयोग हमारे विचारों के बारे में जानना तो चाहता है।” 7 सितम्बर, 1951 को विनोबा जी ने प्रातः:कालीन प्रार्थना सभा में बताया कि उसके इस निर्णय के सहयोगी दिल्ली चले। पवनार आश्रम से दिल्ली, जो लगभग 800 मील की दूरी पर था, पैदल चलने का बड़ा संकल्प लिया था। विनोबा जी 12 सितम्बर, 1951 को दिल्ली के लिए रवाना हुए इसके एक दिन बाद उनका 56वाँ जन्मदिन था।

2.4 भूदान : उद्विकास एवं क्रियान्विति

वास्तविक रूप से भूदान आंदोलन दो भिन्न-भिन्न चरणों में प्रकट हुआ। प्रथस चरण 1951 में शुरू हुआ और 1957 में समाप्त हुआ। इस चरण के दौरान भूदान 100 एकड़ (1951 में) से बढ़कर 43,81,871 एकड़ (1957 में) हो गया। द्वितीय चरण 1958 में शुरू हुआ। इस वर्ष से आगे की ओर कुल भूदान में 1957 की मात्रा में कोई वृद्धि दिखाई नहीं दी। इसके विपरीत यहाँ कुल भूदान में कुछ कमी आयी।

जैसा कि पहले कहा गया कि प्रथम भूदान आंध्रप्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र में पोचमपल्ली गाँव में रामचन्द्र रेड्डी द्वारा किया गया था। इस दान का इस क्षेत्र में पूर्व में जो घटित हुआ था उस संदर्भ में बड़ा महत्व हो गया था। इस क्षेत्र के बहुत से भागों के भूमिहीन श्रमिकों ने जिन पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव था, भू-स्वामियों के हितों के विरूद्ध खुला विद्रोह किया। सर्वोदयी बहुत चिंतित थे। विनोबा भावे ने हैदराबाद के सर्वोदय सम्मेलन में शामिल होने के लिए वर्धा छोड़ लम्बी पैदल यात्रा शुरू कर दी। उसके राज्य में विश्राम के दौरान उसने तेलंगाना के कई गांवों की यात्रा की। यह उन गाँवों में से एक था जिसमें भूमिवानों से भूमिहीनों के साथ उचित व्यवहार करने का आव्हान् किया जिसने भूदान के रूप में आन्दोलन को जन्म दिया। यह भूदान आंदोलन की शुरुआत थी। विनोबा ने कहा कि “यहाँ कुछ जल रहा था हमें अवश्य प्यार से बात मनवाने पर जोर दिया जाना चाहिए उससे पहले कि यह बुझ जाए” उसी वर्ष विनोबा भावे ने सम्पूर्ण मध्य और उत्तर भारत के राज्यों में लम्बी-लम्बी पैदल यात्राऐं की। 1951 के अंत में तीन लाख एकड़ से ज्यादा भूदान में जमीन एकत्रित हुई।

आगे, 1952 में बनारस में आयोजित सर्वोदय समाज सम्मेलन में विनोबा जी के निर्देशन में भूमि एकत्रित करने की राष्ट्रीय योजना तैयार की गई थी। यहाँ 500 लाख एकड़ या 5 करोड़ एकड़ जमीन भूदान में एकत्रित करने का निर्णय लिया गया, जो कि भारत की कुल कृषि भूमि का छठा भाग के बराबर थी, जो 1957 के अंत तक भूदान एकत्रित होनी चाहिए। यह लक्ष्य इस आधार पर तय किया गया था कि वह इतनी जमीन 1 करोड़ भूमिहीन परिवारों के लिए 5 एकड़ जमीन प्रति परिवार के हिसाब से पर्याप्त होगी। सम्मेलन में लिए गए निर्णय के आधार पर आरम्भिक स्तर पर 1954 तक 25 लाख एकड़ जमीन एकत्रित करनी थी।

इसके अतिरिक्त 1952 में विनोबा भावे बिहार में दूसरी लम्बी पैदल यात्रा पर गये। इस राज्य के भूस्वामियों की प्रतिक्रिया अन्ततोगत्वा उत्साहजनक एवं समर्थनकारी सिद्ध हुई। 1953 के अंत तक अकेले इस राज्य से लगभग 8 लाख एकड़ जमीन एकत्रित कर ली गई। भारत में पूर्णतया 1954 के लिए निर्धारित लक्ष्य पूर्णतया प्राप्त हो गये थे। 1954 में गया (बिहार) में आयोजित सर्वोदय समाज सम्मेलन ने भूदान के लिए अच्छी लहर को बढ़ावा दिया, यहाँ भूदान की गति को बढ़ाने का निर्णय लिया गया। सम्मेलन में लोगों से सम्मेलन के समक्ष विद्यमान संस्थात्मक एवं वित्तीय मुसीबतों से बचाने के क्रम में जीवन-दान और सम्पत्ति-दान करने का आव्हान किया गया। हालाँकि भूदान की प्रगति 1957 तक निरन्तर रूप से बढ़ती रही। इस वर्ष भूदान अपने आन्दोलन के इतिहास में उच्चतम स्तर पर पहुँच गया। 1954 से 1957 तक भूमि दान बढ़कर 8,38,493 एकड़ हो गया। 1956 और 1957 के बीच में 76,337 एकड़ भूमि दान की अतिरिक्त बढ़ोतरी हुई। इससे यह स्पष्ट होता है कि 1957 में भूदान अपने उच्चतम स्थिति में पहुँच गया, भारत में कुल दान 9 प्रतिशत (1952 के कुल लक्ष्य 500 लाख एकड़) से भी कम था। शायद इसने आन्दोलन के धीमी गति चरित्र को सिद्ध किया जो कि बड़े उत्साह और विश्वास के साथ शुरू हुआ था।

आगे 1957 के बाद से भूदान का द्वितीय चरण शुरू होता है। इस वर्ष के उपरान्त भूदान की गतिविधि देखने लायक रूप में सुस्त हो गई और भूदान में कोई शुद्ध वृद्धि नहीं हुई। 1958 में कुल जमीन दान 1,51,462 एकड़ जो 1957 के आकड़ों की तुलना में कम था। भूदान के शुद्ध क्षेत्र में कमी की प्रक्रिया 1962 तक निरन्तर चलती रही। हालांकि 1964 में 9,351 एकड़ क्षेत्र की वृद्धि हुई। 1967 में 1965 की तुलना में 27,269 एकड़ की बढ़ोतरी हुई। 1967 में कुल भूमिदान 42,64,097 एकड़ तक पहुँच गया। यह 1957 के आकड़ों की तुलना में 1,17,775 एकड़ कम था। 1958 से 1967 के दौरान 10 वर्षों में शुद्ध भूदान में 3 प्रतिशत तक की कमी आयी। यह दिखाता है कि 1957 तक भूदान में जो जमीन ग्रहण की गई वह आगामी वर्षों में बनाए रखी नहीं गई। इससे प्रकट होता है कि सरकार ने विभिन्न आधारों (जैसे- दानी के अपूर्ण टाइटल का होना, विवादित जमीन का होना आदि) पर इस भूमि के कुछ हिस्सों का निस्तारण कर दिया। इसके अतिरिक्त कुछ जमीन दानदाताओं द्वारा स्वयं वापिस ले ली गई। पहले से ही अधिग्रहित भूमि में 1958-61 के दौरान आयी कमी के साथ ही, नई

अधिग्रहित भूमि में ऐसी बढ़ोतरी भी नहीं हुई जिससे जमीन की कमी की हानि को पूरा किया जा सकता हो।

भूदान गतिविधि के ह्रास के लिए जो उत्तरदायी कारण थे उनके बीच सबसे महत्त्वपूर्ण लगता है - भूदान का स्थान 'ग्रामदान' द्वारा ले लिया जाना। इससे मूलत: सर्वोदयी कार्यकर्ताओं का भूदान से ग्रामदान की ओर ध्यान को बाँट दिया। 1952 में मंगरोठ उत्तर प्रदेश में, प्रथम ग्रामदानी गाँव बना। 1955 में उड़ीसा की पैदल यात्रा के दौरान विनोबा जी ने और ज्यादा ग्रामदानी गाँव प्राप्त किये थे। 1956 की पालनी (Palni) सर्वोदय समाज सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया कि सर्वोदयी लोगों को भूदान से ग्रामदान की ओर जाने पर बल देना चाहिए। यह विश्वास था कि ग्रामदान न केवल जमीन की भूख की सीमित समस्या का ही समाधान करेगा बल्कि सर्वोदयी सिद्धान्तों के अनुसार ग्रामीण समाज की पहचान बनाने में भी सहायता करेगा।

यह भूदान से ग्रामदान की ओर चलने पर जोर देने से ही आगामी वर्षो में भूदान गतिविधि को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। दूसरा महत्त्वपूर्ण निर्णय इस सम्मेलन में यह लिया गया था कि भूदान कार्यकर्ताओं को किसी भी कोष या संगठन से प्राप्त आर्थिक समर्थन पर निर्भर नहीं रहना चाहिए, इसने भूदान आन्दोलन को व्यापक रूप से प्रभावित किया। यह निर्णय लिया गया था कि भूदान कार्यकर्ताओं के वेतनों का भुगतान सर्व सेवा संघ के कोषों से नहीं किया जाना चाहिए और कार्यकर्ताओं को अपने आप को उसके सहारे का साधन नहीं बनाना चाहिए। यही नहीं बल्कि स्वयं को उसके कार्यक्रमों से पृथक कर ले और काम के अपने तरीके खोजे। सर्वोदयी लोगों की भाषा में समस्या का यह दृष्टिकोण 'मंत्र-मुक्ति' के रूप में व्याख्यापित किया गया। सभी भूदान समितियों को समाप्त कर दिया गया जो कि पहले जिला स्तर पर और तहसील स्तर पर स्थापित की गई थी। विनोबा जी ने कहा कि मेरा विश्वास संगठनों में नहीं है, केवल व्यक्तियों में है। इस निर्णय ने भूदान गतिविधि पर तत्काल प्रभाव छोड़ा। जब से भूदान कार्यकर्ता अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का आपूर्ति के प्रबन्ध में अपना ज्यादा समय व ऊर्जा देने लगे तब से स्वाभाविक रूप से भूदान आंदोलन को गहरा धक्का लगा। दूसरा, जब से कार्यकर्ताओं ने काम करने के अपने तरीके इजाद किए, और स्वतंत्र रूप से कार्य करने से कार्यकर्ताओं की गतिविधियों में समन्वय नहीं था। परिणामत: विनोबा ने सभी संगठनों के उन्मूलन सम्बन्धी अपने पूर्ववर्ती निर्णय को संशोधित किया। शीघ्र ही भूदान समितियों के स्थान पर नये सर्वोदयी मण्डलों की स्थापना की गई थी। हालाँकि यह नुकसान/क्षति पहले से ही बहुत हो चुकी थी। यह पूर्ववर्ती संगठन भी, विश्वास, अक्षमता का पुराना मिश्रण और व्यवस्था का प्रकार/रूप था जिसका केवल उत्साही नौसिखिया द्वारा ही रखरखाव किया जा सकता था। संगठन के इस प्रकार के उल्लंघन, चाहे थोड़े समय के लिए ही सही, निश्चय ही 'उत्साही नौसिखिया' की भावना को मन्द किया जब यह अपने समर्थन और सहायता के लिए एक संघर्ष साधन बना।

2.5 भूमि का वितरण

जहाँ तक भूमिहीनों के बीच भूमि वितरण का संबंध है, भूमिदान की कहानी भूमि वितरण की कहानी से कुछ हद तक अलग थी। कुल शुद्ध दान की गई भूमि में से भूमि का वितरण 1954 में 96,477 एकड़ से बढ़कर 1967 में 11,90,718 एकड़ हो गया। 1956,1957 एवं 1962 में पिछले वर्षों से भूमि वितरण जो 2 लाख एकड़ से अधिक था। सन् 1958 और 1967 में वितरण में 50 हजार एकड़ जमीन से ज्यादा वृद्धि हुई। सन् 1965 में पिछले वर्ष से वृद्धि 31 हजार एकड़ कम हुई और 1961 में निरंतर कमी आयी जो लगभग 16 हजार एकड़ थी। भूदान के सम्पूर्ण समय में सन् 1964 एक अपवाद था इस अर्थ में कि इस वर्ष के दौरान वितरित क्षेत्र पिछले वर्ष से 68 हजार एकड़ की गिरावट आयी। इस असामान्य घटना की एक व्याख्या यह हो सकती है कि या तो ज्यादातर भूमि पुराने पट्टेदारों से वापिस ले ली गई थी और नये पट्टेदारों के बीच वितरित नहीं की गई या ज्यादातर भूमि दान के भाग के रूप में बन्द हो गई।

1954 में एकत्रित भूमि (34,67,051 एकड़) में से 96,477 एकड़ भूमि लगभग 2.78 प्रतिशत वितरित की गई थी। 1962 में वितरित भूमि का प्रतिशत 27 प्रतिशत के लगभग पहुँच गया था। 1964 में यह 25 प्रतिशत हो गया। सन् 1965 में यह पुन: बढ़ा और 28 प्रतिशत के लगभग हो गया। 1967 में कुल वितरित भूमि 11,90,718 एकड़ के करीब आ गयी जो कि उस वर्ष शुद्ध दानित भूमि का लगभग 28 प्रतिशत था। 1958-1967 के दौरान वितरित भूमि का अनुपात दानित भूमि से उच्च रहा था। कारण कि शुद्ध दान में कमी आयी और शुद्ध वितरण में वृद्धि हुई।

2.8 अन्तर-राज्य तुलना

1954 तक सभी राज्यों में बिहार का दानित भूमि अंश सबसे ज्यादा था। इसका दानित क्षेत्र सम्पूर्ण भारत के कुल दान किए गए क्षेत्र का लगभग 61 प्रतिशत था। अन्य राज्यों में, जिन्होंने एक लाख एकड़ से ज्यादा भूदान किया, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं उड़ीसा आदि शामिल थे। केवल एक राज्य मध्यप्रदेश ने 50 हजार और 1 लाख एकड़ के बीच भूमि दान की थी।

आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र और तमिलनाडू ने 10000 और 50000 एकड़ के बीच जमीन दान की। आसाम, बंगाल, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, मैसूर और पंजाब ने 10000 एकड़ से कम भूमि दान की। 'अन्य क्षेत्रों' मध्य भारत, कनार्टक, विंध्यप्रदेश सौराष्ट्र, हैदराबाद और बम्बई को मिलाकर लगभग 2.15 लाख एकड़ जमीन दान की। 1956 तक जम्मू-कश्मीर में कोई दान नहीं हुआ था। सभी राज्यों और क्षेत्रों के बीच में, जो कि भूदान में कुछ जमीन का योगदान किया था, आसाम का योगदान सबसे कम 1,692 एकड़ का था।

1956 तक इस स्थिति में कोई व्यापक बदलाव नहीं आया था केवल, मध्यप्रदेश जिसका भूमिदान 1 लाख एकड़ से ऊपर बढ़ा, आन्धप्रदेश में 50,000 एकड़ से ऊपर और

पंजाब में 10,000 एकड़ से ऊपर, को छोड़कर 1954-56 के दौरान सभी राज्यों में, केवल हिमाचल प्रदेश जहाँ यह 1954 में 1900 एकड़ से कम होकर 1956 में 1564 एकड़ हो गया था, भूमि दान में वृद्धि हुई। जहाँ तक वितरण का सम्बन्ध है 1954 तक सात राज्यों (आसाम, आन्ध्रप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, मैसूर एवं पंजाब) में कोई भूमि वितरण नहीं हुआ था। 1956 तक आंध्र प्रदेश को छोड़कर सभी राज्यों में भूमि वितरण में कोई भी प्रगति नहीं हुई थी। जबकि 1954 केवल दो राज्यों में 10,000 एकड़ से अधिक जमीन वितरित की गई थी यह संख्या बढ़कर 1956 में छ: हो गई थी। 1956 तक भारत में वितरित कुल भूमि में उत्तर प्रदेश का भाग सबसे बड़ा (लगभग 31 प्रतिशत) था। प्रत्येक राज्य में दानित भूमि का वितरण प्रतिशत के रूप में अलग-अलग रहा जहाँ मैसूर में 1.01 प्रतिशत था वही गुजरात में 24.60 प्रतिशत था।

हालाँकि राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् भूमि का शुद्ध दान में गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मैसूर, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं तमिलनाडू में स्पष्ट रूप से व्यापक वृद्धि हुई। 1957 के दौरान कुछ अन्य राज्यों आन्ध्र प्रदेश, बंगाल एवं महाराष्ट्र में शुद्ध भूमि दान स्पष्ट रूप से कम हुआ। आसाम में इस क्षेत्र में गिरावट सीमांत थी। सन् 1963 में जम्मू-कश्मीर में पहला दान प्राप्त हुआ। 1957-67 के दौरान राज्यों के बीच जो भूमिदान में वृद्धि के लिए पंजीकृत हुए उनमें मध्यप्रदेश सबसे ऊपर था। यहाँ शुद्ध भूमि दान 2,26,587 एकड़ तक बढ़ा। यदि 1957 को एक आधार रूप में लेते हैं तब तो इस राज्य में भूमि दान में वृद्धि 127 प्रतिशत तक पहुँचती है। 1957-67 के बीच भूमि दान में कमी के लिए पंजीकृत राज्यों में उड़ीसा सबसे महत्वपूर्ण राज्य था। यहाँ इस काल में 1,95,450 एकड़ भूमि दान की कमी हुई। यदि 1957 को आधार वर्ष के रूप में लेते है तो यह कमी 51 प्रतिशत तक जाती है। यहाँ उल्लेखित है कि गुजरात, हिमाचल प्रदेश, मैसूर, राजस्थान, मध्यप्रदेश, तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश एवं महाराष्ट्र में शुद्ध दान में वृद्धि 1958 से 1967 के दौर में स्थिर नहीं थी। इन सभी राज्यों में वृद्धि एक या दो वर्षों में सांकेन्द्रित थी। इसलिए ज्यादातर राज्यों में भी जहाँ शुद्ध दानित क्षेत्र 1957-67 के दौरान कमी आयी थी।

लगभग सभी राज्यों में वितरित क्षेत्र 1957 की तुलना में 1967 में उच्चतर था। हालाँकि यहाँ भी सभी में प्रगति में निरन्तरता नहीं थी। बिहार, गुजरात, मध्यप्रदेश, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडू उड़ीसा और उत्तरप्रदेश में इस दौरान शुद्ध वितरित क्षेत्र में उतार चढ़ाव हुआ, सबसे ज्यादा उतार चढ़ाव उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब एवं मध्यप्रदेश में हुआ। हालाँकि आसाम, आन्ध्रप्रदेश, बंगाल, हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र एवं मैसूर में वितरित क्षेत्र इस दौरान निरन्तर बढ़ता रहा।

2.7 1967 की स्थिति

सभी राज्यों के बीच में, 1967 में बिहार का योगदान भूदान में सर्वोच्च था। यहाँ सम्पूर्ण भारत में कुल दानित भूमि का लगभग 50 प्रतिशत भूमि दानित की गई थी।

राजस्थान, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश ने लगभग 10-10 प्रतिशत भूमि दान की। आंध्रा, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडू एवं उड़ीसा में उन राज्यों में शामिल थे, जिन्होंने 1 प्रतिशत से 6 प्रतिशत के बीच योगदान किया। उन राज्यों में 1 प्रतिशत से कम योगदान दिया गया।

सम्पूर्ण भारत के कुल दानित क्षेत्र का अधिकतम भाग लगभग 28 प्रतिशत अकेले बिहार में दान किया गया था। उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश का प्रतिशत क्रमश: लगभग 17 और 13 प्रतिशत था। अन्य राज्यों में जिनकी भागीदारी 1 प्रतिशत रही उनमें आंध्रा, गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडू और उड़ीसा शामिल थे। आसाम, बंगाल, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, केरल, मैसूर तथा पंजाब के मामलों में योगदान कुल दानित क्षेत्र का 1 प्रतिशत से कम था।

दानित क्षेत्र का प्रतिशत के रूप में वितरित क्षेत्र का भाग प्रत्येक राज्य में अलग-अलग रहा जो लगभग 71 प्रतिशत महाराष्ट्र में तथा 2 प्रतिशत राजस्थान में था। अन्य राज्यों में यह स्थिति इस प्रकार थी - दिल्ली में 60 प्रतिशत, उड़ीसा में 59.93 प्रतिशत, गुजरात में 49.24 प्रतिशत, हिमाचल प्रदेश में 48.30 प्रतिशत, उत्तरप्रदेश में 46.29 प्रतिशत, आंध्रा में 42.70 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 38.60 प्रतिशत, बंगाल में 30.08 प्रतिशत, तमिलनाडू में 28.75 प्रतिशत, पंजाब में 24.43 प्रतिशत, केरल में 21.96 प्रतिशत, मैसूर में 15.84 प्रतिशत, बिहार में 15.64 प्रतिशत, जम्मू-कश्मीर में 2.37 प्रतिशत और आसाम में 2.20 प्रतिशत।

व्यापक रूप में देश के लिए 1951 से 1967 के काल को भूदान का काल मानते हैं जो यह दिखाता है कि भूदान गतिविधि 1957 तक बढ़ती हुई रही। 1957 में यह अपने उच्चतम स्तर पर पहुँची, हालाँकि आगामी समय में इसे बनाये नहीं रखा जा सका। दूसरी बात यह ध्यान देने योग्य है कि ज्यादातर भूदान गतिविधि केवल चार राज्यों - बिहार. राजस्थान, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में ही संकेन्द्रित रही थी। इन राज्यों में कूल भूमि दान 1967 में कुल राष्ट्रीय दान के 80 प्रतिशत के लगभग आ गया था। इसलिए ज्यादातर वितरण भी इन्हीं चार राज्यों में संकेन्द्रित रहा, जो 1967 में भारत में कुल वितरण का 68 प्रतिशत था। यद्यपि व्यापक रूप से देश में बिहार ने सबसे अधिक भूमि दान की फिर भी दानित भूमि की तुलना में वितरित भूमि का प्रतिशत अन्य कई राज्यों की तुलना में कम महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त आगे चलकर सर्वोदयी नेताओं और कार्यकर्ताओं के बीच कुछ संघर्ष पैदा हो गए तथा समूहों के अपने हित बन गये थे। इसी कारण एकता सिद्धान्त ने काम नहीं किया और परिणामत: भूदान आन्दोलन को गहरा धक्का पहुँचा तथा भूमि वितरण की प्रक्रिया विनोबाजी की इच्छानुकूल गति मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकी। कुछ कमियों के बावजूद, भूदान आन्दोलन भारत में आर्थिक और भूमि सुधारों के इतिहास में अद्भुत पदचिह्न रहा था।

2.8 सारांश

भारत में भूदान आन्दोलन आचार्य विनोबा भावे द्वारा 1951 में शुरु किया गया था। यह आन्दोलन गाँधी के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के क्रम में शुरू किया गया था। इस आन्दोलन के माध्यम से विनोबाजी ने भारत की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं जैसे - सामाजिक असमानता, आर्थिक असमानता, अस्पृश्यता, गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी आदि के समाधान का

तथा ग्रामीण भारत को स्वावलम्बी व आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया। इस आन्दोलन के आधार में यह विश्वास था कि सबे भूमि गोपाल की है, इसलिए उस पर किसी व्यक्ति विशेष या समूह विशेष का स्वामित्व नहीं हो सकता है, जैसे हम सभी हवा-पानी आदि का, जो कि ईश्वर द्वारा सृजित है, निःशुल्क उपभोग करते हैं जिन पर किसी का स्वामित्व नहीं है ठीक उसी तरह भूमि पर भी किसी का स्वामित्व नहीं होना चाहिए। क्योंकि स्वामित्व में असमानता का भाव छिपा रहता है। जिससे समाज में न्याय व शांति की बजाय अन्याय व हिंसा को बढ़ावा मिलता है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. भूदान आन्दोलन से आप क्या समझते हैं और इसका उद्भव कैसे हु आ था?
2. भूदान आन्दोलन में विनोबा की भूमिका का वर्णन करें।
3. भूदान आन्दोलन की पृष्ठभूमि, इतिहास और उद्भव का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. भूदान आन्दोलन के चढ़ाव और गिरावट का परीक्षण कीजिए।

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भावे विनोबा, "भूदान गंगा," सर्व सेवा संघ, वाराणसी, 1957.
2. भावे विनोबा, "भूदान योजना : लैण्ड-गिफ्ट्स मिशन," नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, मार्च, 1957
3. मिश्रा, आर.एन., "भूदान मूवमेंट इन इण्डिया एन इकॉनॉमिक असेसमेंट," एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 1972
4. ओम्मन, टी.के., "करिश्मा स्टेबिलिटी, एण्ड चेंज : एन एनालिसिस ऑफ भूदान-गाँधीयन मूवमेंट इन इण्डिया," थॉमसन प्रेस, 1972
5. राम, सुरेश, "विनोबा एण्ड हिज मिशन," अखिल भारत सर्व सेवा संघ, काँशी 1962 ।

इकाई - 3

ग्रामदान

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 ग्रामदान के लक्षण, स्वरूप एवं प्रकृति

3.3 ग्रामदान की अवधारणा

3.4 भारत में ग्रामदान

3.5 राजस्थान में ग्रामदान

3.6 राजस्थान में ग्रामदान अधिनियम, 1971

3.7 ग्रामसभा

3.8 सारांश

3.9 अभ्यास प्रश्न

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरान्त आप जान पाएँगे :

– ग्रामदान की अवधारणा स्वरूप एवं प्रकृति
– भारत में ग्रामदान की स्थिति
– राजस्थान में ग्रामदान की स्थिति
– वर्तमान सन्दर्भ में प्रभावशीलता

3.1 प्रस्तावना

उपरोक्त उद्देश्य स्वतंत्र भारत में अवस्थित ग्रामदान की अवधारणा व उसके क्रियान्वयन की प्रक्रिया व समस्याएँ व सफलताओं से अवगत करायेगी। राजस्थान के लगभग 40,000 गाँवों में 200 को ही ग्रामदान का दर्जा प्राप्त है। परन्तु प्रत्येक ग्रामदानी ग्राम गाँधी दर्शन की अहिंसात्मक पदति द्वारा सामाजिक-आर्थिक संघर्षों के निवारण का दर्शन कराता है। अत: इन ग्रामदानी ग्रामों के स्वरूप, समरसता एवं सफलताएँ जानने से आपको महात्मा गाँधी के विश्वविख्यात दार्शनिक सिद्वान्तों का प्रत्यक्ष दर्शन मिलता है।

3.2 ग्रामदान के लक्षण, स्वरुप एवं प्रकृति

भारत में ही नहीं किन्तु समस्त विश्व में पिछले एक - दो शताब्दियों से साधारण ग्रामों को ग्रामदान में परिवर्तित करने की घटनाएँ लगभग नगण्य हैं। इससे पूर्व यूरोप में कई समुदायवादी अथवा समाजवादी विचारकों ने इस प्रकार की इकाईयों की कल्पना अवश्य की थी। जिसमें किसी भी व्यक्ति के पास निजी सम्पत्ति का लगभग पूर्ण अभाव हो तथा उस इकाई में

रहने वाले सभी व्यक्ति अपना जीवन मिलजुल कर व्यतीत करते हैं। इस प्रकार की अवधारणा देने वालों में राबर्ट ऑवन व सन्त साइमन के नाम प्रमुख है, जिसमें से ऑवन ने तो कुछ इस प्रकार की सामूहिक समुदायों की स्थापना भी कर ली थी। कालान्तर में ये विचाराधारा प्राय: लुप्त हो गई तथा एक ओर पूंजी उन्मुख उदारवादी व पूंजीवादी विचारधारा तथा दूसरी ओर सर्वहारा उन्मुख समाजवादी व साम्यवादी विचारधारा के बढ़ जाने के कारण इस प्रकार के सामूहिक समुदायों या कम्यून/कॉमनवेल्थ की स्थापना की कल्पना भी विस्मृत हो गई।

जिन देशों में पूंजीवाद क्रांतिकारी रुप से विकसित होने लगा वहाँ तो निजी सम्पत्ति का महत्व अत्यधिक बढ़ गया। वहीं दूसरी ओर साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित सोवियत रुस में लगभग सभी सम्पत्तियों का राष्ट्रीयकरण अथवा राज्य-स्वामित्व का मॉडल विकसित होने लगा। ग्रामदान का मूल दर्शन विकसित पूंजीवाद व विकसित समाजवाद को नकारकार एक ऐसी सामाजिक इकाई का निर्माण करना है, जिसमें सामूहिक सम्पत्ति की मान्यता है और जिसमें उत्पादक सम्पत्तियों का सामूहिक रुप से उपयोग किया जाये।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि कुछ यूरोपीय नीतिशास्त्रीयों ने तो इस प्रकार की सामुदायिक व सामूहिक जीवन इकाईयों की कल्पना की थी, परन्तु अंग्रेजो के भारत में स्थापित होने के बाद भारतीय चिन्तन में इस प्रकार का प्रस्ताव परिलक्षित नहीं हुआ।

अतएव दार्शनिक रुप से ग्रामदान भारतीय परिप्रेक्ष्य में अनूठी व अनोखी कल्पना है जिसका कि विनोबा भावे जैसे गाँधीवादियों के संरक्षण में यथार्थ स्वरूप आज भी भारत के कई ग्रामों में अवस्थित है। गाँधीवादी विचारधारा का एक प्रमुख लक्षण स्वावलम्बन है तथा गाँधीजी के जीवन दर्शन में राज्य का महत्व बहुत कम है, परन्तु जब विनोबा भावे ने कई पूर्व-अस्तित्व ग्रामो को ग्रामदान में परिवर्तित कर दिया अर्थात् भारत के कई गाँवो में ग्राम के लगभग सभी निवासियों द्वार अपनी निजी भू-सम्पत्ति का स्वामीत्व एक साथ त्याग कर दिया। निश्चित ही आधुनिक समय की एक महत्वपूर्ण घटना है, क्योंकि अंग्रेजी शासन के अंतर्गत भारत में प्राचीन काल की सामूहिक जीवन पद्धति की परम्परा थी, जो प्राय: लुप्त हो गई थी तथा प्रत्येक गाँव में अधिकतर भू-सम्पत्ति के स्वामीत्व का निजीकरण हो चुका था। शामलात् अथवा गोचर भूमि व कुछ अन्य जो राज्य के स्वामित्व में अवस्थित थी को छोड़कर व 1947 तक लगभग सभी ग्रामीण भूमि सम्पूर्ण रुप से निजी स्वामित्व में बंट चुकी थी। साथ ही भू-सम्पत्ति का स्वामित्व सामाजिक प्रतिष्ठा का एक चिह्न बन चुका था। जिसके विवादास्पद प्रकरणों में प्रत्येक संबंधित व्यक्ति अपार सम्पत्ति का कई दशकों तक व्यय करके उच्च से उच्चतम न्यायालय तक संघर्ष करना न्याय संगत मानता था। इस प्रकार की महत्वपूर्ण निजी भू-स्वामित्व की धारणा को प्रत्येक ग्रामदानी व्यक्ति द्वारा सम्पूर्ण प्रकार से नकार दिया जाना ग्रामदान का एक अति महत्वपूर्ण लक्षण है।

कई सैकड़ों वर्षों तक ग्रामीण भारत में भूमि का निजी स्वामित्व की कल्पना व यथार्थ के बढ़ते हुए महत्व को देखते हुए एक ग्राम के समस्त ग्रामवासियों द्वारा भूमि सम्पत्ति का त्याग विधि के अभाव में असंभव था। ग्रामदान आन्दोलन का आधार निश्चित रुप से महात्मा गाँधी के स्वावलम्बन व स्वराज जैसे आदर्शों पर आधारित था तथा विनोबा भावे द्वारा सैंकड़ो ग्रामवासियों के द्वारा अपनी भू-सम्पत्तियों का ग्रामदान में विलिनीकरण अवश्य ही महात्मा

गाँधी के व्यक्तित्व व कृतित्व से प्रभावित था। परन्तु विनोबा जैसे गाँधीवादियों के ना चहाते हुए भी कई राज्य सरकारों द्वारा ग्रामदानी गाँवो के निवासियों द्वारा अपनी निजी भू-सम्पत्तियों का त्याग करके नई प्रकार की ग्रामदानी ईकाईयों का निर्माण करने का विधिक नियमन आवश्यक हो गया। सैद्धान्तिक रुप से निजी सम्पत्ति का त्याग मानव मात्र का अधिकार माना जा सकता है परन्तु व्यावहारिक रुप से भू-स्वामित्व त्याग करके ग्रामदानी प्रतिमानों का निमार्ण विधिक प्रक्रिया के बगैर संभव नहीं था। अतएव गाँधीवादी परम्परा से थोड़ा हटकर ग्रामदानी गाँवो का विधिक अस्तित्व दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण है।

ग्रामदान का तीसरा महत्वपूर्ण लक्षण, जो कि पहले व दूसरे लक्षणों का मात्र Corrolary (कारोलरी) है एक ग्रामदानी ग्राम में संग्रहित भू-सम्पत्ति का नियमन करने के लिए निर्मित की गई संस्थाओं का स्वरूप है। सैद्धान्तिक तौर पर ग्रामदान के अंतर्गत एक ग्रामदानी गाँव में समस्त भू-सम्पत्ति का सार्वजनिकरण हो जाता है तथा उसका उपयोग व उपभोग प्रजातान्त्रिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है। जिसमें गाँधीवादी विचारकों के अत्यधिक बल देने के कारण बहुमत सिद्धान्त का तिरस्कार करके सर्वमान्यता के सिद्धान्त को विधिक रुप से स्थापित कर दिया गया है। अतएव प्रत्येक ग्रामदान गांव में संग्रहित भू-सम्पत्ति का उपयोग ग्राम सभाओं में सर्वमान्यता के आधार पर किया जाता है तथा इन ग्राम सभा के मुखिया अथवा अध्यक्ष का चयन भी बहुमत पर आधारित चुनावों में न होकर सर्वमान्यता के आधार पर चयन का प्रयास किया जाता है।

ऊपर वर्णित तीनों लक्षणों के आधार पर सैद्धान्तिक रुप से ग्रामदानी गांवों का एक लक्षण यह भी माना जा सकता है कि निजी भू-सम्पत्ति के अभाव में आर्थिक विषमताएँ कम होती है तथा निजी व सामाजिक विद्वेषों के आधार प्राय: नहीं के बराबर होते है। अतएव सैद्धान्तिक तौर पर ग्रामदानी गाँवों का जीवन सामुदायिक व पारिवारिक समरसता, सार्वजनिक शान्ति से भरपूर व सम्पत्ति आधारित झगड़ों से रिक्त माना जा सकता है।

यथार्थ में ग्रामदानी गाँवो में भी समय-समय पर मूल्यों की टकराहट, आपसी व्यवहार में कटुता व शान्ति भंग होने के अवसर आते रहते हैं। परन्तु सिद्धान्त के रूप में निजी सम्पत्ति के विलीनीकरण के पश्चात् संघर्षो के आर्थिक व सामाजिक आधार नगण्य ही रह जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे देशों में पूंजीवादी व्यवस्था व सोवियत रुस जैसे देशों में साम्यवादी व्यवस्था में भू-सम्पत्ति का विलुप्तीकरण के संदर्भ में ग्रामदानी गाँवों में अधिकांश व्यक्तियों की सम्पत्ति का संग्रहण व सामंजस्यपूर्ण निर्वहन एक विलक्षण प्रतिस्थापना प्रतीत होती है। परन्तु यह निर्विवाद है कि विनोबाजी के निर्देशन से बहुत से ग्रामदानी गाँवों में ये लक्षण काफी समय तक पाया जाता रहा है तथा उसकी प्रतिछाया प्रत्येक ग्रामदानी गाँवों में अनुभव किया जा सकता है।

विद्यार्थियों को उपयुक्त सामग्री को अत्यन्त सावधानीपूर्वक पढ़ना चाहिये क्योंकि ग्रामदान एक असाधारण विश्वदर्शन को एक स्थानीय स्तर पर जीवन्त करने का प्रयास है। भारत में अभी भी 6 लाख से अधिक गाँव अवस्थित है जिनमें सभी में भू-सम्पत्ति का निजीकरण कई शताब्दियों से स्थापित है और गाँवों के इस विशाल समुद्र में ग्रामदानी गाँवों की संख्या बहुत ही कम होने के कारण समाज वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर नहीं जा पाया है।

इसका अध्ययन करके ही इस सामाजिक करिश्मों की संरचना, सफलता व असफलताओं की तरफ ध्यान दिलाया जा सकेगा। निश्चय ही ग्रामदान सामाजिक समस्याओं का निवारण करने के लिए एक शक्तिशाली संस्था है। परन्तु यथार्थ में ग्रामदान बनाकर अपने आप को समर्पित किया था, उनकी पीढीयाँ गाँधी व विनोबा के करिश्माई व्यक्तित्व के अभाव में कब तक जीवित रख पायेगी, यह एक यथार्थवादी प्रश्न है।

लगभग 40 वर्ष पूर्व नवोदित ग्रामदानी गाँधी का जन्म अवश्य करिश्माई था, परन्तु क्या इस करिश्मा को स्थाई बनाया जा सकता है। यह प्रश्न ग्रामदान की अवधारणा का एक प्रमुख घटक है जो कि भारत के जितने ग्रामदान के अंतर्गत गाँधी आ चुके वे सभी विलुप्त हो सकते हैं क्योंकि उनके चारों ओर अवस्थित व विकासमान व्यवस्थाएँ ग्रामदानी गाँवो के मूल लक्षणों से न केवल मेल नहीं खाती है बल्कि इन दोनों प्रकार के गाँवो की संरचना व संकल्पना में कई विभिन्नता स्पष्ट है, व ये विभिन्नताएँ विरोधाभासी भी मानी जा सकती है, और इन विरोधाभासों के अंतर्गत ग्रामदान का यथार्थ पर एक प्रश्न चिह्न स्वत: ही लग जाता है। इन विरोधाभासों का यथार्थ ग्रामदान का एक लक्षण ही माना जाना चाहिये।

3.3 ग्रामदान की अवधारणा

ब्रिटिश राज के दौरान भूमि के मालिकाना हक की जो सैद्धान्तिक व अभ्यासात्मक परिपाटी शुरू हुई थी उसके संदर्भ में ग्रामदान-आन्दोलन का प्रार्दुभाव व सफलता स्वतंत्र भारत की एक क्रान्तिकारी उपलब्धि है । विनोबा भावे की इस अवधारणा को ग्रामीण भारत की अशिक्षित जनता को 50-60 के दशक में समझाना और उसके सामुदायिक लाभों की विवेचना करना एक दुष्कर कार्य था क्योंकि ग्रामीण भारत की जनता के अधिकांश मामले भूमि से सम्बन्धित थे तथा ब्रिटिश न्यायिक प्रक्रिया में उलझे हुए थे। यह विनोबा भावे का एक करिश्मा ही था कि ग्रामदान की संकल्पना ने मूर्त रूप लिया और इनके द्वारा सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा के दौरान लाखों हैक्टेयर भूदानी भूमि में परिवर्तित व हजारों ग्रामदानी ग्रामों की स्थापना हुई।

आचार्य विनोबा भावे द्वारा 20 वीं शताब्दी के 50 के दशक में 'सबै भूमि गोपाल की' का अलख जगाकर गाँव-गाँव में भूमि मालिकों द्वार अपनी भू-सम्पत्ति से कुछ भाग दान करने का आन्दोलन भू-दान के नाम से जाना जाता है। तत्कालीन समय में विनोबा भावे की इस अलख का सर्वाधिक प्रभाव भारत के प्रत्येक गाँव में विस्मयकारी प्रभाव पड़ा तथा लाखों हैक्टेयर भूमि भूदान में संग्रहित हुई। इस आन्दोलन और विनोबा भावे सम्बन्धित साहित्य में भूदान पर सामग्री उपलब्ध है परन्तु ग्रामदान जो कि भूदान आन्दोलन का एक परिवर्धित अवधारणा है इसके सम्बन्ध में वर्णन एवं विश्लेषण बहुत कम मात्रा में उपलब्ध हैं। ग्रामदान एक ऐसी संरचना है जिसके अन्तर्गत अलग - अलग भूमि के टुकडे संग्रहीत नहीं करके यह प्रयास किया गया कि एक ग्राम के सम्पूर्ण निवासी अपनी सारी भूमि को ग्रामदानी घोषित कर दें, तथा कुछ शर्तें पूरी करने के पश्चात् वह गाँव ग्रामदानी घोषित हो सकते है।

भूदान आन्दोलन के प्रादुर्भाव से ही कई शिकायतें मिली कि कुछ भूमि मालिकों ने अपनी पड़त/बंजर भूमि विनोबा जी के करिश्माई व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भूदान की तथा इस प्रकार की भूदानी भूमि का छोटे-छोटे टुकडो में अलग-अलग क्षेत्रों में अवस्थित होना भूदान

आन्दोलन के समक्ष एक बहुत बड़ी चुनौती बना व बहुत मात्रा में आज भी भूदानी भूमि के चकबन्दी की समस्या का भी उचित हल नहीं किया जा सका है।

ग्रामदान की अवधारणा भूदान की प्रक्रिया से ज्यादा करिश्माई है। क्योंकि ग्रामदान निर्माण की प्रक्रिया में प्राय: विशेष गाँव के सभी भू-मालिकों द्वारा अपनी भूमि का स्वामित्व त्याग दिया जाता है तथा उस गाँव की प्राय: सभी भूमि ग्रामदानी घोषित होकर एक नवीन प्रकार की सम्पत्ति का रूप धारण कर लेती है जिसका स्वामित्व उस गाँव के सभी निवासियों का हो जाता है। इस प्रकार जहाँ भूदान में प्रत्येक रुमालिक अपनी सम्पत्ति का एक अंश भूदान आन्दोलन को समर्पित कर देता है वही दूसरी और एक गाँव तब ही ग्रामदानी बनता है जब उस गाँव के सभी निवासी स्वेच्छापूर्वक भूमिहीनता की स्थितइयों में आना स्वीकार कर लेते हैं ।

यद्यपि ग्रामदान एक करिश्माई क्रान्तिकारी परिवर्तन की प्रक्रिया है परन्तु फिर भी किन्हीं कारणों से पर्याप्त विशेषताओं व सफलताओं का विशेष प्रचार प्रसार नहीं हो सका है गाँधी दर्शन की स्थापना में स्वावलम्बन व स्वशासन प्रमुख है तथा साथ ही उस दर्शन में मनुष्य द्वारा अपनी इच्छाओं को न्यूनतम करने पर भी बहुत अधिक बल दिया जाता है। इस दृष्टिकोण से ग्रामदान का अध्ययन करके गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री मेक्सवेबर के करिश्मा सम्बन्धी विचारों का अध्ययन सर्वप्रथम राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रो. टी.के. उमन ने करके ग्रामदान की गाँधी दर्शन से संबंधित राजस्थान के 6 गाँवो का एक सैद्धान्तिक विश्लेषण प्रस्तुत किया, उनके अनुसार सामुदायिक स्वशासन की यह गाँधीवादी विचारधारा (ग्रामदान) एक श्रेष्ठ एकमात्र कल्पना नहीं है बल्कि गाँधी के विचारों का मूर्त रुप है जो एक ग्रामदानी ग्राम की आर्थिक स्वशासन समृद्धि की प्रक्रिया को जीवित करती है। प्रो. उमन का यह 1964 का शोध सर्वेक्षण सर्वप्रथम 1965 में प्रकाशित हुआ परन्तु शोक के साथ कहना पड़ रहा है कि इसके बाद पिछले 35-40 वर्षों से किसी भी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समाज वैज्ञानिक ने इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध नहीं किया।

ग्रामदान की अवधारणा को विकसित करने की आवश्यकता आज गाँधीजी के देहावसान के लगभग 60 वर्ष बाद भी बनी हुई है, यद्यपि अब राज्य सरकारों ने इन ग्रामदानी गाँवों की विस्मयकारी स्वायतत्ता को वैधानिक सुरक्षा प्रदान कर रखी है परन्तु ग्रामदान का मूल करिश्माई स्वरूप अभी तक पूर्णरुप से प्रकाश में नहीं आ सका है और कई ग्रामदानी गाँव कई दशकों के मूल ग्रामदानी अस्तित्व को खोते जा रहे है। अतएव आज सभी ग्रामदानी भारत के शुभ चिन्तकों को ग्रामदान की व्यवस्था अवस्था का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। गाँधीवादी विचारधारा के अध्ययनकर्ताओं को तो ग्रामदानी गाँवों की समस्याओं व सफलताओं का आकलन करना और भी आवश्यक हो जाता है। क्योंकि सैद्धान्तिक रूप से ग्रामदानी गाँवों में तनाव व टकराव की लपटें स्वाभाविक रूप से ज्यादा ज्वलनशील नहीं हो पाती है क्योंकि ग्रामदानी ग्राम के निवासियों का भूसम्पत्ति में कोई स्वामित्व नहीं रहता है जो कि पिछले कई शताब्दियों से प्रत्येक भारतीय ग्राम में प्रतिष्ठा व प्रतिद्वन्द्वता का आधार बन गया है।

3.4 भारत में ग्रामदान

मई, 1952 में ग्रामदान की कल्पना ने मूर्तरुप "मंगरोठ" में लिया जो भारत का पहला ग्रामदानी गाँव बना और इस ग्राम की समस्त भूमि का स्वामित्व समस्त ग्रामवासियों का हो गया। विनोबा भावे ने इस समाज को "ग्राम समाज" माना। मंगरोठ के बाद बिहार, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आसाम, पश्चिम बंगाल, केरल तथा राजस्थान में ग्रामदान आन्दोलन शुरू हुआ।

मंगरोठ (उ.प्र.) व अन्य राज्यों में ग्रामदान प्रक्रिया शुरू होने के बाद, सर्व सेवा संघ के निमन्त्रण पर मैसूर राज्य में "येलवाल" नाम के स्थान पर 21 -22 सितम्बर 1957 को ऐतिहासिक अखिल भारतीय ग्रामदान परिषद् हुई जिसमें तत्कालीन भारत के शीर्ष राजनीतिज्ञों, विद्वानों, विचारकों व विश्लेषकों ने भाग लिया। इस परिषद् में आचार्य विनोबा भावे ने ग्रामीण भारत की सामाजिक - आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में भूमि की प्रबंध व्यवस्था को हल करने के अहिंसक आन्दोलन की आवश्यकता को विश्लेषित किया और इस परिषद् ने "ग्रामदान" आन्दोलन को श्रेष्ठ प्रक्रिया माना। परिषद् में उपस्थित तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू, गोविन्द बल्लभ पंत, मोराजी देसाई, गुलजारी लाल नन्दा, एस.के. डे., कामराज नाडार, ई.एम.एस. नम्बूद्रीपाद, भक्त वत्सलम, जयप्रकाश नारायण, श्रीमन्नारायण, आदि ने श्री विनोबा भावे के "ग्रामदान" आन्दोलन का स्वागत किया। "येलवाल", परिषद् में श्री विनोबा भावे ने चर्चा -परिचर्चा व विश्लेषण के लिए निम्न वक्तव्य प्रस्तुत किया -

1. यह आन्दोलन स्वप्रेरित भूमिदान से शुरु हुआ और विकसित होते-होते ग्रामदान के रुप में स्पष्ट हुआ।
2. 3 हजार से ज्यादा गांव ग्रामवासियों ने समाज को दान कर दिये और जमीन पर से अपनी निजी मालकियत छोड़ दी।
3. गाँवों में सहकारी जीवन का और समग्रतापूर्व आर्थिक विकास व सर्वागीण प्रगति ग्रामदान प्रक्रिया से सम्पन्न होगी।
4. सम्पूर्ण भारतवर्ष में भूधारणा व भूप्रबंधन की समस्या हल होगी।
5. यह एक अहिंसात्मक प्रक्रिया व उसका स्वरुप स्वप्रेरित होगा।
6. आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ सहयोग और स्वावलम्बन पर आधारित एक नये समाज की रचना होगी।
7. सहकारी सामुदायिक आन्दोलन में और ग्रामदान आन्दोलन में घनिष्ठ सहयोग उत्पन्न होगा।

येलवाल परिषद् के बाद श्री विनोबा भावे ने सम्पूर्ण भारत की पदयात्रा की और भारतीय गणतंत्र के सभी राज्यों में संकल्पित ग्रामदान आन्दोलन तूफान के रूप में प्रगति करने लगा। 17-18 नवम्बर 1957 को तत्कालीन सामुदायिक विकास मंत्री श्री एस.के. डे तथा जयप्रकाश नारायण ने ग्रामदान व सामुदायिक विकास आन्दोलन के समन्वय के लिए निम्न सुझाव निश्चित किये :

1. दोनों आन्दोलनों के उच्चतम कार्यकर्ताओं की एक विशेष कार्यशाला आयोजित की जाये।
2. सर्व सेवा संघ के कार्यकर्ता राज्य सरकारों द्वारा आयोजित कार्यशालाओं में भाग ले।
3. सामुदायिक विकास कार्यक्रम मे लगे मुख्य कार्यकर्ताओं को ग्रामदान आन्दोलन का विशेष प्रशिक्षण दिया जाये।
4. स्थानीय तथा अंग्रेजी भाषा में भूदान-ग्रामदान साहित्य उपलब्ध हो।
5. क्षेत्रीय समस्याओं पर खण्ड स्तर पर विश्लेषण तैयार किया जाये।

येलवाल परिषद् के समय व अगले 7 वर्षों में भारत में ग्रामदानी गाँवों की संख्या 1964 ई. में निम्न प्रकार हो गई।

सुलभ ग्रामदान व ग्रामदान तूफान के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारत वर्ष की पदयात्रा के दौरान श्री विनोबा भावे ने प्रखण्ड दान व जिलादान की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए इस बात पर जोर देना शुरू कर दिया कि जब सरकारी विकास योजनाएँ प्रखण्ड (ब्लाक स्तर) के आधार पर चलती है तब 30-40 या 50 ग्रामदान के स्थान पर एक पूरा प्रखण्ड दान होना चाहिए जिसमें विकास की प्रक्रिया में और अधिक तीव्रता लाई जा सके और डसी दौरान श्री विनोबा भावे ने अनेक राज्यों में प्रखण्ड दान सम्पन्न कराया।

3.5 राजस्थान में ग्रामदान

श्री विनोबा भावे के इन विचारों का "जमीन पर से व्यक्तिगत मालकियत का विसर्जन और गाँव की कुल जमीन सारे गाँव की हो" मूर्त रूप राजस्थान में 11 फरवरी 1955 को नागौर के "गोरावा" गाँव के ग्रामदानी गाँव बनाने से शुरू हुआ जिसका श्रेय बद्रीप्रसाद स्वामी (तत्कालीन भूदान संयोजक) को जाता है। 1957 में राजस्थान में ग्रामदानी गाँवों की संख्या 11 हो गई। 1960 में राजस्थान ग्रामदान अधिनियम पारित होने के बाद यह संख्या बढ़कर 44 हुई। इसी क्रम में 1963 तक राज्य में 65 ग्रामदानी ग्राम घोषित हुए। जून 1966 तक ग्रामदान तूफान के पश्चात् राजस्थान में ग्रामदानी प्रक्रिया निम्न सारणी अनुसार सम्पन्न हुई।

1. जयपुर जिले में चाकसू पंचायत समिति में जयप्रकाशपुरा 1957 में प्रथम तथा 1957 में दूदू पंचायत समिति का गाँव "आइदान का बास" प्रथम ग्रामदानी गाँव बना।
2. सीकर जिले में 1961 में नीम का थाना समिति गाँव "खाती की ढाणी" प्रथम ग्रामदानी ग्राम बना।
3. सिरोही जिले में रेवदर पंचायत समिति का गाँव "हाथल" 1960 में प्रथम ग्रामदानी गाँव बना।
4. डूंगरपुर जिले में सागवाड़ा पंचायत समिति के 3 गाँव 1961 में ग्रामदानी घोषित हुए।
5. नगौर जिले में मकराना पंचायत समिति में "गोरावा" ग्राम 1955 में प्रथम ग्रामदानी गाँव बना जो राजस्थान का भी प्रथम ग्रामदानी ग्राम घोषित हुआ।
6. बांसवाडा जिले में 1961 में भूखिया प्रखण्ड का "बावडी" गाँव सर्वप्रथम ग्रामदानी घोषित हुआ।
7. चित्तौड़गढ़ जिले में 1960 में गंगरार तहसील में 7 गाँव ग्रामदानी घोषित हुए।

इस प्रकार ऊपर लिखित ग्रामों का ग्रामदानी इतिहास राजस्थान में सबसे लम्बा माना जा सकता है, तथा इस पाठ के विद्यार्थियों को यह प्रयास करना चाहिये कि इन ग्रामों में जाकर उनकी वर्तमान विकास व स्थितियों का अवलोकन करके गाँधीवादी दर्शन की मूलभूत अवधारणाओं की व्यवहारिकता व उपयोगिता का आकलन करें।

राजस्थान में ग्रामदानी गाँवों की संख्या वर्तमान में 12 जिलों में 204 ग्राम है। राजस्थान समग्र सेवा संघ तथा सर्वोदयी विचारकों ने विनोबा भावे के इस क्रान्तिकारी आन्दोलन को वर्तमान समय तक चला रखा है। राजस्थान में इस आन्दोलन के प्रमुख सर्वोदयी कार्यकर्ताओं में सर्व श्री गोकुल भाई भट्ट, भोगी लाल पंडया, मनमोहन चौधरी, सिद्धराज ढढ्ढा, पूर्णचन्द जैन, जवाहिर लाल जैन, यज्ञदत्त उपाध्याय, बद्रीप्रसाद स्वामी, जगन्नाथ कसारा, गोपाल हरी वर्मा, नाना जी कोठारी, उम्मेदजी राव, छीतरमल पुरोहित, सुन्दरलाल आजाद, राधाकृष्ण बजाज, रामेश्वर अग्रवाल, कालूराम, दुर्गा प्रसाद अग्रवाल, छीतरमल गोयल आदि प्रमुख है।

3.6 राजस्थान मे ग्रामदान अधिनियम - 1971 और ग्रामदान बोर्ड के कार्य

राजस्थान विधानसभा द्वारा राजस्थान ग्रामदान अधिनियम 3 अगस्त 1971 को सम्पूर्ण राज्य में प्रवृत्त कर दिया गया, तथा राजस्थान ग्रामदान अधिनियम-1960 को निरस्त कर लिया गया। इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए पूर्व अवस्थित भू-दान बोर्ड को राजस्थान भू-दान, ग्रामदान बोर्ड के रुप में निर्दिष्ट कर लिया गया तथा उसके निम्नलिखित कर्त्तव्य घोषित किये गये -

1. ग्रामदान बोर्ड का राजस्थान में ग्रामदान अभियान को प्रसन्नता करना और उसके प्रयोजनार्थ-
   (क) इस अधिनियम के लक्ष्यों तथा उद्देश्यों को क्रियान्वित करने के लिये कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना और ग्रामदान गाँवों में उन्हें समनुदिष्ट करना।
   (ख) अपने कर्तव्यों के समुचित निर्वाह करने में ग्रामसभाओं का मार्गदर्शन करना।
   (ग) ग्रामदान गाँवो के विकास का अध्ययन करना तथा उसमें सामान्य अनुभव का मूल्यांकन करना और
   (घ) ग्रामदान गाँवो से संसक्त विधिक तथा अन्य औपचारिकताओं को शीघ्र पूरा करना।
2. ग्रामदान बोर्ड ऐसे कर्तव्यों का भी पालन करेगा जो उसे इस अधिनियम के उपबन्दों के अधीन समनुदेशित किये जा सकेंगे।

1971 के अधिनियिम के मूल्यों को ग्रामदान के रुप से स्वेच्छा आन्तरिक करने की प्रक्रिया निर्धारित कर दी गई है इसकी धारा 11 में किसी गाँव को ग्रामदान गाँव के रूप में घोषित करने की निम्न शर्तें निर्धारित है।

गाँव की ग्रामदान गाँव के रूप में घोषणा :

1. जहाँ कहीं गाँव में -

(क) भूमियों, जिनके संबंध में धारा 8 की उप-धारा (1) के अधीन फाइल की गई घोषणाएँ पुष्ट कर दी गई हैं, का क्षेत्रफल उस गाँव में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा धृत भूमियों के कुल क्षेत्रफल के इक्यावन प्रतिशत से कम नहीं है।

(ख) ऐसे व्यक्तियों की संख्या जिनकी घोषणाएँ इस प्रकार पुष्ट कर दी गई हैं उस गाँव में भूमि धारण करने वाले और रहने वाले व्यक्तियों की कुल संख्या के पचहत्तर प्रतिशत से कम नहीं है।

ऐसे व्यक्तियों की संख्या जिनके संबंध में धारा 8 और 9 के अधीन की गई घोषणाएँ पुष्ट कर दी गई हैं, उस गाँव में रहने वाले भूमिधारियों और परिवार के मुखिया जो भूमि धारण नहीं करते हैं, की संख्या के पचहत्तर प्रतिशत से कम नहीं है।

तो सभापति समस्त ससंक्त कागज तथा अपनी राय कि वह गाँव ग्रामदान गाँव घोषित किया जाना है या नहीं के संबंध में समस्त घोषणाएँ उस जिले, जिसमें वह गाँव स्थित है, के कलेक्टर को भेज देगा तथा कलेक्टर ऐसी जाँच, जैसी वह ठीक समझें, करने के पश्चात् विहित रीति में अधिसूचना द्वारा उस गाँव को उक्त अधिसूचना में विनिर्दिष्ट तारीख से ग्रामदान गाँव होना घोषित कर सकेगा।

2. यदि कलेक्टर उस गाँव को ग्रामदान होना घोषित करने से इन्कार कर देता है तो सभापति ऐसे गाँव को ग्रामदान गाँव होना घोषित करने के लिए राज्य सरकार को अभ्यावेदन कर सकेगा, और राज्य सरकार, अपना समाधान कर लेने के पश्चात् कि उप-धारा (1) में बताई गई शर्ते सारत: पूरी की जा चुकी हैं उस गाँव को ग्रामदान गाँव होना घोषित करने के लिए कलेक्टर को निर्देश दे सकेगी तथा राज्य सरकार का यथापूर्वोक्त रुप में समाधान न होने की दशा में, वह उस गॉव को ग्रामदान गाँव घोषित करने से इन्कार करते हुए आदेश जारी कर सकेगी और उपधारा (4) में अन्तर्विश्ट उपबन्ध, केवल कलेक्टर या राज्य सरकार के किसी गाँव को ग्रामदान गाँव घोषित करने से इन्कार करते हुए कोई विशिष्ट आदेश जारी होने पर ही प्रवृत्त होंगे।

3. उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक अधिसूचना की एक प्रति गाँव में प्रमुख स्थान पर सम्प्रदर्शित की जायेगी तथा ऐसे तहसीलदार, सब-डिविजनल ऑफिसर और कलेक्टर, जिनकी अधिकारिता के भीतर वह गाँव स्थित है, के कार्यालयों के नोटिस बोर्डो पर चिपकाई जायेगी और ऐसी अधिसूचना का सार विहित रीति से प्रकाशित भी किया जायेगा।

4. जहाँ किसी गाँव को ग्रामदान घोषित नहीं किया जाता है वहाँ धारा 8 या धारा 9 के अधीन प्रत्येक घोषणा, इस बात के होते हुए भी कि वह पुष्ट कर दी गई थी, प्रभावहीन हो जायेगी।

इसी धारा में यह स्पष्ट किया गया कि जब पूर्वोल्लेखित समस्त ससंक्त प्रारुप कलेक्टर को प्रेषित किये जायेंगे तथा वह जिस प्रकार भी ठीक समझे उस प्रकार ज्ञात करने के पश्चात् उक्त ग्रामदान घोषित कर सकता है

3.7 ग्राम सभा

अध्याय-4 में किसी ग्राम को ग्रामदानी घोषित होने के पश्चात् उस ग्रामदानी के लिए ग्राम सभा का गठन, ग्राम सभा की प्रक्रिया व कार्यकाल, संगठन व कार्यविधि का निर्धारण किया गया है इस ग्राम सभा को निगमित करने का तथा इस अधिनियम के अन्तर्गत सभी प्रकार की सम्पत्तियों को अर्जित करने, धारण करने, प्रशासनिक करने की शक्ति होगी। प्रत्येक ग्राम सभा अपने स्वयं की कार्यपालिका समिति जिसमें कम से कम 5 सदस्य- होंगे तथा कार्य समिति के सदस्य अपने आपको ग्राम सभा के रूप में जाना जाये। ग्राम सभा को एक अधिकारी के रूप में सचिव की नियुक्ति करने व हटाने का अधिकार होगा।

अध्याय-5 में यह स्पष्ट किया गया है कि ग्रामदान में दान की गई सभी भूमियाँ ग्राम सभा में नीहित होगी तथा विभिन्न धाराओं में प्राप्त समस्त भूमियों का एक भूमिपूल (Land Pool) बनाया जायेगा। इसी अधिनियम की धारा 26 के अनुसार ग्राम सभा भूमिपूल में से दान की गई भूमि का 19/20 प्रमाण उनके दानकर्ताओं को आवंटित कर सकेगा। तथा ग्राम सभा इस संबंध में बनाये गये किसी विनियमन के अनुसार भूमिहीन व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को वैयक्तिक कृषि के लिए भूमि आवंटित कर सकेगी।

धारा 33 के अनुसार ग्राम सभा की अन्य शक्तियाँ निम्न प्रकार निश्चित की गई है :-

1. इस अधिनियम के उपबन्धों के अध्याधीन ग्राम सभा ग्राम समुदाय और उसके सदस्यों के कल्याण के लिए समस्त क्रिया कलापों का जिम्मा लेगी और उससे आनुशंगित समस्त अन्य बातें करेगी।
2. विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर विपरीत प्रभाव डाले बिना, ग्राम सभा
   - (क) सामुदायिक प्रयोजनों के लिए भूमि पृथक् रख सकेगी
   - (ख) भूमि सुधार कर सकेगी
   - (ग) खेती के तरीकों में सुधार करने और बंजर भूमियों को कृषि योग्य बनाने के उपाय कर सकेगी।
   - (घ) भूमि विनिमय द्वारा अथवा अन्यथा ग्रामदान गाँव में भूमियों का समेकन कर सकेगी।
   - (ङ) ग्राम अभिलेख जिसमें ग्रामसभा के अधीन व्यक्तियों के कब्जे में, भूमियों का ब्यौरा देने वाला रजिस्टर सम्मिलित हैं, तैयार तथा संधारित कर सकेगी।
   - (च) ग्रामदान गाँव के निवासियों के हित में कोई कृषि अथवा कृषि इतर उपक्रम का जिम्मा ले सकेगी।
   - (छ) ग्रामसभा के सदस्यों को किसी प्रयोजन के लिए, चाहे वह कृषि सम्बन्धी हो अथवा अन्यथा, उधार मंजूर कर सकेगी।
   - (ज) वृद्धावस्था, निर्योग्यता अथवा अंगशैथिल्य से ग्रस्त व्यक्तियों अथवा गाँव के अनाथों को ऐसी सहायता दे सकेगी जो वह साध्य समझे।

(झ) गाँव में अथवा गाँव में लगे हुए परिक्षेत्र में शान्ति बनाये रखने के लिए शान्ति बल अथवा शान्ति दल स्थापित कर सकेगी।

(ञ) गाँव में अथवा गाँव में लगे हुए परिक्षेत्र में खाद्य में और जीवन की अन्य आवश्यकताओं में आत्मनिर्भरता के लिए सरकार का अथवा अन्य अधिकरणों का सहयोग और सहायता प्राप्त करने की स्कीमें तैयार कर सकेगी और उन्हें कार्यान्वित कर सकेगी।

(ट) ग्राम उद्योग जिनमें, खादी, पशु प्रजनन आदि सम्मिलित हैं, के सम्पूर्ण विकास की स्कीमें तैयार कर सकेगी और उन्हें कार्यान्वित कर सकेगी।

(ठ) गाँव में बेकारी की समाप्ति के लिए कदम उठा सकेगी।

(ड) सामुदायिक प्रयोजनों के लिए गाँव में स्वेच्छिक अभिदान जुटा सकेगी।

(ढ) ग्राम निधि के लेख संघारित कर सकेगी।

(ण) अपने प्रभावाधीन ग्राम समुदाय के लिए आवासीय, शैक्षिक और चिकित्सकीय सहायता के लिए स्कीमें तैयार कर सकेगी और उन्हें कार्यान्वित कर सकेगी।

(त) अपने सदस्यों को निजी ऋणों के बारे में समझौते के लिए प्रोत्साहित कर सकेगी।

(थ) ऐसे अन्य कर्तव्यों को कर सकेगी जिन्हें करने के लिए उसे राज्य सरकार द्वारा शासकीय राज-पत्र में अधिसूचना द्वारा प्राधिकष्त किया जाये।

अध्याय-6 में किसी भी भूमिदानकर्ता द्वारा ग्रामदान समुदाय के बाहर हो जाने की विधी का निर्धारण भी किया गया है। इस विधि के अनुसार किसी ग्रामदान गाँव के 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों द्वारा ग्रामदान से बाहर निकलने का प्रतिवेदन प्रस्तुत करने पर कलेक्टर, उपखण्ड अधिकारी द्वारा जाँच करने के पश्चात् वह यदि सन्तुष्ट हो जाता है कि ग्रामदान के 50 प्रतिशत व्यक्तियों ने ग्रामदान संविधान से बाहर होने का निश्चय कर लिया है तब उक्त ग्राम ग्रामदान नहीं रहेगा तथा इस ग्राम के किसान इस अधिनियम के द्वारा शामिल नहीं होगे।

ग्रामदान अधिनियम 1971 व अन्य नियमों के अन्तर्गत ग्रामदानी ग्रामों के निर्माण व इस प्रक्रिया के लिए विभिन्न प्रकार के घोषणाओं सम्बन्धि विधि का विस्तृत अध्ययन करने के लिए प्रपत्रों (क,ख,ग-1 तथा ग-2) का अध्ययन किया जा सकता है। यद्यपि ये प्रपत्र विधिक व प्रशासनिक महत्व अधिक रखते हैं परन्तु गाँधीवादी विचारधारा के सभी व्यक्तियों को इनका ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि ये प्रपत्र गाँधीवाद की संकल्पनाओं को मूर्तरूप देने के लिए प्रक्रियाओं का पथ प्रदर्शन करती है। किसी प्रपत्र की पूर्ति करके व हस्तान्तरित करने पर कई शताब्दियों से ग्रामीण भू-सम्पत्ति के स्वामी अपनी भू-सम्पत्ति का सार्वजनिकीकरण कर सकते हैं तथा ग्रामदानी ग्रामों का निर्माण करते हैं।

3.8 सारांश

ग्रामदान के सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि भारत में ग्रामदानी गांवो की जीवन प्रकृति एवं पद्धति का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करना एक दुष्कर कार्य हैं। भूदान और ग्रामदान की अवधारणाओं के क्रियान्वयन में अनेक समस्याऐं उत्पन्न हुई है और वेश्वीकरण और विकास की नवीन परिस्थितियों में इस गाँधीवादी अवधारणा

के समक्ष कई नवीन चुनौतियां विद्‌यमान है। भारत की मूल आर्थिक समस्याऐं यथा भू-संग्रहण एवं उनका भूमिहीनों के मध्य समता पूर्ण वितरण गाँधीवादी दर्शन पर आधारित ग्रामदान अथवा भूदान से काफी हद तक संभव हो सका है। ग्रामदान तथा भूदान गाँधी के विचारों और उनकी प्रांसगिकता के प्रति संवेदना जगाने का कार्य करते है। इस दृष्टि से ग्रामदान तथा ग्रामदानी गांवो की सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्ययन महत्वपूर्ण और प्रासंगिक प्रतीत होता है।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. भूदान तथा ग्रामदान से आप क्या समझते है?
2. राजस्थान में ग्रामदान की स्थिति की समीक्षा कीजिए?
3. राजस्थान में ग्रामदानी ग्रामसभा की अवधारणा की समीक्षा कीजिए?

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओम्मन, टी.के. : प्राब्लम्स ऑफ ग्रामदान : ए स्टडी इन राजस्थान, इकॉनोमिक वीकली, 1965
2. ओम्मन, टी.के. : ग्रामदान मूवमेन्ट इन इण्डिया, थॉमसन प्रेस, नई दिल्ली, 1972
3. ग्रामदान से ग्राम स्वराज्य (1999), राजस्थान ग्रामदान बोर्ड जयपुर
4. माथुर, पी.सी. : ग्रामसभा इन राजस्थान, कुरुक्षेत्र अक्टूबर 1999, नई दिल्ली

इकाई-4

स्थिर विकास और पर्यायवरण

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विकास का पूंजीवादी मॉडल

4.3 आधुनिकीकरण सिद्धान्त

4.4 आधुनिक सभ्यता पर गांधीजी की आलोचना

4.5 भारतीय सभ्यता पर गांधीजी की संकल्पना

4.6 विकास का गाँधीवादी वैकल्पिक मार्ग

4.7 गांधीजी का पर्यावरणवाद सिद्धान्त

4.8 आधुनिक पर्यावरणविद् और गांधीजी

4.9 सारांश

4.10 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात् आप जान जाएगे :-

- विकास का पूंजीवादी मॉडल
- आधुनिक सभ्यता पर गांधी जी की आलोचना
- गांधी जी का विकास का वैकल्पिक मार्ग
- गांधी जी का सुस्थिर विकास का सपना

4.1 प्रस्तावना

पश्चिमी जगत ने पर्यायवरण के महत्व को 1972 में क्लब ऑफ रोम की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद अनुभव किया। इससे पहले पश्चिमी जगत अपनी विशिष्ट समृद्धि से प्रसन्न था जिसे उसने विज्ञान और तकनीकी में हुए नये विकासों .... आधुनिकीकरण के सिद्धान्त तर्कवाद के दर्शन और बढ़ते वैश्विक बाजार से प्राप्त किया था।

लोककल्याणकारी राज्य की पश्चिमी यूरोप की नीतियों का पश्चिम की प्रगति और समृद्धि में अत्यधिक योगदान रहा। परन्तु पर्यावरण के संरक्षण की समस्या विद्वानों के लिए लगातार चिंता का विषय बनी रही जैसा कि आन्द्रे गोर ने घोषित किया कि, विकासोन्मुखी पूंजीवाद और समाजवाद मृत है, इसके द्वारा सामाजिक विकास के स्थिर पश्चिमी मॉडल को चुनौती मिल रही है। यह मॉडल जे. बेथम के उपयोगितावादी दर्शन पर आधारित था।

अधिकतम प्रसन्नता और न्यूनतम दुख, में विश्वास करता था इसमें माना जाता था कि व्यक्ति को अपनी शक्तियों और क्षमता को अधिकतम करना चाहिए। द्वितीय विश्वयुद्व के

बाद के समय में पश्चिम में समृद्वि और विकास दिखाई पड़ा। पश्चिम के विशेषज्ञों का तर्क था कि विकास का यह मॉडल लोगों के न्यूनतम जीवन स्तर को सुनिश्चित करेगा गरीबी उन्मूलन करेगा और पिछडे देशों में आर्थिक विकास लाएगा। परन्तु 1970 के प्रारम्भ से ही बहुत से गहन अध्ययन कर्त्ता पर्यवेक्षको ने यह अनुभव किया कि इस तरह का विकास लम्बे समय तक नही चल सकता क्योंकि यह मानव सभ्यता का सम्पूर्ण विनाश कर सकता है। इस लिये यह कहा गया कि समुद्र जीवाणु रहित भूमि बंजर और वायु सांस लेने योग्य नही बची है अत: पूंजीवादी विकास का मुकाबला न केवल आर्थिक सीमा से है वरन् मानव शरीर से भी है। महात्मा गांधी आधुनिक सभ्यता और विकास के पूंजीवादी मॉडल की कमजोरियों को उजागर करने वाले प्रारम्भिक राजनीतिक विचारकी में से एक थे। उन्होंने पश्चिम को चेतावनी दी थी कि इस तरह के विकास निरन्तर नहीं चल सकता। उन्होंने आधुनिक विकास सिद्वान्त की दार्शनिक धारणा पर प्रश्न उठाऐ। इस लेख में महात्मा गांधी के पर्यावरणवाद के सिद्वान्त का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

4.2 विकास की पूंजीवादी मॉडल

आधुनिक सभ्यता विकास के पूंजीवादी मॉडल की जनक है। यह मॉडल मानव के सिद्धान्त पर आंध्ररित या जो यह मानता था कि मानव एक तार्किक प्राणी है और तर्क की सहायता से वह यह निश्चित कर सकता है कि उसकी रूचि (हित) किसमें है। इसलिए अलग-अलग मानवों में प्रतियोगिता थी।

स्वतंत्र आत्मनिर्भर और बुद्धिमान व्यक्ति अच्छे और सुखी जीवन के लिए अपनी शक्तियों को बढाने का इच्छुक था। अच्छे जीवन की उसकी धारणा आवश्यकरूप से उपयोगिता पर आधारित थी। वह निश्चित रूप से मानता था कि इस विश्व में पूंजीवाद ने बाजार को बढाया जिससे उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का जन्म हुआ। पूंजीवाद का लालच राष्ट्र की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रहा पूंजीवादी मुनाफा चाहते थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अत्यधिक उत्पादन किया गया और इसे बनाए रखने के लिए अति उपभोग को बढ़ावा दिया गया। इसके परिणाम स्वरूप धनी देशों में धनवानों जैसी जीवन शैली अनजाने में अपनायी गई। पूंजीवादी मॉडल ने प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन किया जिसके कारण भूमि जल और वायु में पर्यावरण प्रदूषण फैला।

आधुनिक पश्चिमी सभ्यता ने राज्य रूपी संख्या को पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास किए साधन सम्पन्न बनाया। विज्ञान और तकनीकी की सहायता से राज्य ने सभी शक्तियों को अपने हाथ में केन्द्रीकृत कर लिया और राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया को तेज कर दिया। राज्य निजी उद्योगों को सार्वजनिक संसाधनो से पूंजी दिलवाने का माध्यम बन गया। इससे सामाजिक उत्पादन के निजी हाथों में जाने को प्रोत्साहन मिला। इस प्रकार की व्यवस्था में सभी विरोधियों की आवाज को सफलता पूर्वक दबाया गया और चुने हुए प्रतिनिधियों के माध्यम से अपनी सत्ता को वैधानिक बना लिया गया। इस प्रकार का राज्य राष्ट्र राज्य कहा गया क्योंकि सभी संकीर्ण विचारों को लोगों की राष्ट्रीय एकीकरण के संरक्षण के लिए माना गया। राष्ट्रवाद राज्य के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप आने का साधन भी नही है वरन पडौसी देशों के विरूद्व युद्व करने का हथियार भी है। राष्ट्रवाद बड़े पैमाने पर विनाश करने वाले हथियारों के उत्पादन

के लिए भी जिम्मेदार है जिसमें सबसे खतरनाक परमाणु हथियार भी शामिल है। इस प्रकार राष्ट्रवाद अत्यधिक विनाशक मनोभाव है।

4.3 आधुनिकीकरण सिद्धान्त

द्वितीय विश्वयुद्व के बाद के प्रथम तीन देशों में दौर में विकास का सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण आधुनिकीकरण का सिद्धान्त है। कीन्स की अर्थशास्त्र की लोककल्याणकारी नीतियों की सफलता से पश्चिम ने इस दौरान सापेक्षिक सफलता प्राप्त की जिसने क्षमता में विश्वास के विचार को और सुदृढ़ता प्रदान की परन्तु विरोध के स्वर भी उठे। इन आलोचनाओं के तीन आधार थे-

पहला फ्रैकेफर्ट स्कूल और नव वामपंथी आंदोलन ने आधुनिकीकरण की आलोचना इसकी जबरन सकारात्मकता और लोगों को संगठित करने के तरीके के आधार पर की थी।

द्वितीय तृतीय विश्व के देशों के विद्वानों ने इस सिद्वान्त की आलोचना की। इनका तर्क था कि यह सिद्धान्त विकसशील देशों के अल्प विकास के लिए जिम्मेदार है। उन्होंने पर्यावरण के पतन के लिए प्रथम विश्व के देशों को दोषी ठहराया। इन्होंने इंगित किया कि पश्चिमी समाज का धनी वर्ग जिस अभूतर्पूव (धनी) जीवन शैली को अपनाए है वह तृतीय विश्व के देशों के प्राकृतिक संसाधनो के विदोहन पर आधारित है। इस नीति ने उनकी कृषि का विनाश किया है समुद्र और नदियों को प्रदूषित किया है। उनके प्राकृतिक संसाधनों को समाप्त किया है।

तृतीय 1970 के बाद पर्यावरणविदों ने पश्चिमी मॉडल की आलोचना इसलिए करना प्रारम्भ की क्योंकि इससे समाज का जन्म हुआ। इनका तर्क था कि आर्थिक रूप से विकसित समाज ने इस ग्रह (पृथ्वी) की संरचना को अन्दर से खोखला कर दिया है। समुद्र जीवाणु रहित हो गए है भूमि बंजर और हवा सांस लेने योग्य नहीं रही। अब समय ज्यादा उपयोग करने का नहीं वरन कम उपभोग करने का है। उनका कहना था कि प्राकृतिक जगत में मानव की गतिविधियां कार्यकलाप अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँच चुके है। और यदि अब इन पर रोक नहीं लगायी गई तो नये प्रकार के रोग उत्पन्न होगे और जीवन की गुणवता भौतिक उपभोग के बावजूद भी घटने लगेगी।

पर्यावरण वाद के भी कई प्रकार से है जैसे- प्राकृतिक संरक्षण कर्त्ता पर्यावरण संरक्षणकर्त्ता हरित राजनीति सिद्धान्तवादी, वनस्पति सरक्षणकर्ता सघन हरित सिद्धान्तवादी वनस्पति केन्द्रित विचारों को सबसे अधिक स्वीकृति मिली। हालांकि यह भावनात्मक वास्तविकता से परे अपील का नैतिक पहलू और तार्किक वैज्ञानिक आधार था। पर्यावरणवाद ने राजनीतिक सिद्धान्त पर बहस की प्रकृति को पूर्णतया बदल दिया और विभिन्न समस्याओं के अन्तर सम्बंधों पर बल दिया। यह विचार वैश्विक और सामुदायिक था। पर्यावरणवाद के समर्थक साधनों और तकनीकों में परिवर्तन लाकर सामाजिक विकास के मसौदे को बदलना चाहते थे। उन्होंने मौजूद सामाजिक सम्बंधो को मजबूत करने पर बल दिया। उस प्रकार उन्होंने ऐसी तकनीक के विकास और उत्पादन की पद्धति की आवश्यकता पर बल दिया-

1. जिसका प्रयोग और नियंत्रण पास पडोस और समुदाय के स्तर पर हो सके।
2. जिससे आर्थिक स्वयत्तता को स्थानीय व क्षेत्रीय समूहों में बढाया जा सके।

3. जो पर्यावरण के लिए हानिकारक न हो।
4. जो उत्पादक व उपभोक्ता द्वारा उत्पादन पर संयुक्त नियंत्रण कर सकने में सक्षम हो।

अंत में ये राजनीति को परमाणु रहित करने के पक्षधर थे।

पर्यावरण विज्ञानियों का मानना था कि प्रकृति पर प्रभुत्व का परिणाम लोगों थोडे से लोगों का प्रभुत्व है जिन्होंने प्रविधि और तकनीक पर नियंत्रण कर लिया है। इस प्रकार पश्चिम पर्यावरण संरक्षण एक महत्वपूर्ण समस्या बन गई है जिसके लिए पर्यावरण विज्ञानी वैकल्पिक मार्ग ढूंढने का प्रयास कर रहे हैं इसमें नैतिकरूप से खोखले आधार वाली और सुखवादी संस्कृति पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। यह बताना जरूरी है कि महात्मा गांधी प्रारम्भिक विचारकों में से थे जिन्होंने प्रगति व विकास के पूंजीवादी मॉडल के खतरों को इंगित किया था।

4.4 आधुनिक सभ्यता पर गाँधीजी की आलोचना

गांधी जी पश्चिम द्वारा मानव सभ्यता के जीवन सम्बंधी महत्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा करने के आलोचक थे। उन्होंने अंग्रेजी उपनिवेशवाद और बुराइयों को आधुनिकीकरण के प्रभाव के रूप में देखा। उन्होंने पश्चिम को भविष्य की अनदेखी करने का जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने लिखा, एक गोरा व्यक्ति वर्तमान के लिए उत्पादन करता है। एक सामान्य व्यक्ति वर्तमान को उपभोग के रूप में लेता है। पश्चिम के लोगों ने अब यह अनुभव करना शुरू किया है कि अपने वर्तमान जीवन के लिऐ उन्होंने भविष्य को बलिदान कर दिया है। इस प्रकार उन्होंने भारतीयों को पश्चिम का अंधानुकरण नहीं करने को कही।

अपनी प्रसिद्व पुस्तक ' हिन्द स्वराज' में गांधी जी ने पश्चिमी सभ्यता के नैतिक आधारो पर सन्देह व्यक्त किया और तर्कपूर्वक कहा कि विकास की समस्या को सम्पूर्ण परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। गांधीजी ने यह पुस्तक 1907 में लिखी हिन्द स्वराज या इंडियन होम रूल गांधी जी का राजनीतिक वसियतनामा था जिसके मूलभूत विचारों और मान्यताओं को उन्होंने पूरे जीवन में कभी नही बदला। पश्चिमी सभ्यता की गांधी जी द्वारा की गई आलोचनाओं को निम्न 4 भागों में बाटा जा सकता है:-

1. आधुनिक विचारधारा की गांधी द्वारा आलोचना
2. आधुनिकी सभ्यता की गांधी द्वारा आलोचना
3. रेलवे व वकीलों आदि पर उनकी आलोचना
4. संसदीय लोकतंत्र की आलोचना

गांधी तर्कवाद व उपयोगितावाद पर आधारित आधुनिक पश्चिमी दर्शन के आलोचक थे। गांधी आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते थे जिन्हें विश्व के सभी प्रमुख धर्मों ने प्रतिपादित किया था और विशेषकर जिन धार्मिक मूल्यों की गीता और भक्ति आन्दोलन ने शिक्षा दी थी। वे एक वेदान्ती थे जो मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करना चाहते थे। वे लोगों की एकता में विश्वास करते थे और मानते थे कि सभी मानव बुनियादी रूप से अच्छे है, और केवल इसी अच्छाई के कारण व्यक्ति सम्पत्ति को त्यागने और न्योछावर करने को तैयार रहता है। उसमें नैतिक उत्थान और अहिंसा को आत्मसात करने और निस्वार्थ भाव से कर्त्तव्य करने की क्षमता है। इस

प्रकार गांधी जी इस सिद्वान्त में विश्वास नही करते थे। कि स्वहित ही मानव का मुख्य सोच है। उन्होंने तर्कवादी की आलोचना की और लिखा। " जब यह स्वयं के सर्वशक्तिमान होने का दावा करता है तब तर्कवाद घृणित दानव है। इस सर्वशक्तिमान को महिमामंडित कर वस्तुओं और पत्थर की पूजा कर उसे भगवान मानते है। मैं तर्क के दमन की वकालत नहीं करता लेकिन इस पर स्वाभाविक सीमा लगाने की अनुशंसा करता हूँ। " उनका विश्वास था कि विश्वास तर्क से ऊपर होता है। उनकी दृग मान्यता थी कि अहिंसा जीवन सिद्धान्त है और ऐतिहासिक रूप से भी मानव हिंसा पर अहिंसा की विजय के इतिहास के अलावा कुछ नहीं है।

सभी स्थानों पर मानव स्वभाव आगे को बढ रहा है, प्रगति कर रहा है। उन्होंने जीवन संघर्ष के सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी और मानव के कर्त्तव्य, बलिदान, स्वविमुखी दूसरों की देखभाल और को दृढतापूर्वक कार्य को मानव की विशेषता माना। मानव व मानव के मध्य तथा मानव और प्रकृति के मध्य प्रतियोगी सम्बन्ध नहीं थे वरन् आवश्यक तौर पर सहयोगात्मक थे। उनका दावा था कि यदि इस वात पर विश्वास किया जाए कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ युद्वरत है। और केवल योग्यतम को जीने का हक है तो विश्व एक दिन भी नहीं चल सकता। गांधी प्रकृति और मानव को एक दूसरे के प्रतिकूल नहीं मानते। उनका मानना था कि प्रकृति जीवंत और जीवनदायी पानी, भोजन व हवा का स्त्रोत है। प्रकृति मानव की आवश्यकता की पूर्ति के लिए पर्याप्त देती है लेकिन हर एक के लालच को पूरा करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। गांधी जी चाहते थे कि- प्रकृति पर विजय पाने का प्रयास करने के स्थान पर व्यक्ति को इसके प्रति दयालु व कृतज्ञ होना चाहिए। मानव अपने भाग्य का स्वयं निमार्ता है क्योंकि उसे अपनी पसंद छुनने की स्वतंत्रता है। उसने कार्य व उनके परिणाम आपदाओं के सिद्धान्त से शासित होते है। इसीलिए प्रकृति के साथ मानवीय सम्बन्ध बनाना आवश्यक है।

'हिंद स्वराज' पुस्तक में गांधी ने आधुनिक सभ्यता की आलोचना की है और इसे असुरी कहा है। उनकी धारणा थी कि भारत को इंग्लैड की नकल नहीं करनी चाहिए क्योंकि इंग्लैंड की स्थिति भी अत्यंत दयनीय है। इंग्लैंड के किसी विशेष दोष के कारण ऐसा नहीं है वरन् आधुनिक सभ्यता के चक्र के कारण ऐसा हो रहा है। यह सभ्यता केवल नाम भर के लिए है। इसमें यूरो के देशों का पतन हो रहा है। ये देश आधुनिकता के नाम पर भौतिक कल्याण को बढ़ावा दे रहे है। अंग्रेज लोग अच्छे कपडे पहन अच्छा खा रहे है, अच्छी तरह रह रहे हैं पर वे शायद ही प्रसन्न है। आधुनिक सभ्यता से समाज में असमानता हिंसा वर्ग विभेद और आलसीपन आया है। सही मापदण्ड नही है विशेषतया तब जबकि इंग्लैड में हजारों मजदूरों की स्थिति पशुओं से भी बदतर है। यह धर्म व नैतिकता विहीन है। लोगों में आत्मबल की कमी है। इंग्लैड में चालीस लाख महिलाओं को फैक्टरी या ऐसे ही संस्थानों में बहुत कम मेहनताने पर सख्त मजदूरी करनी पडती है।

गांधी कहते है कि इस सभ्यता ने इंग्लैंड की सजीवता को निगल लिया है लेकिन इंग्लैंड वासी इसका परित्याग नहीं करना चाहते क्योंकि वे व्यापार वाणिज्य को बढ़ाने के इच्छुक है। पैसा ही उनका भगवान है। वे अपने माल के लिए पूरे विश्व को एक बड़े बाजार में परिवर्तित करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि भारत को इंग्लैंड देश ने नहीं जीता वरन् इस पर आधुनिक सभ्यता ने विजय पाई है। इससे भारत में रेलवे व वकील डॉक्टर और मशीनें यही

से आये हैं। रेलवे से अंग्रेजो को भारत में अपना शासन फैलाने और उसे बनाए रखने में मदद मिली वकीलों और जजों के बिना भारत में अंग्रेजों को शासन एक दिन भी नहीं चल सकता। इन्होंने भारत को गुलाम बनाया हिन्दु मुस्लिम मतभेद को बल दिया और ब्रिटिश शासन की सत्ता को स्थापित किया। जो अलग व्यवसाय शुरू हुए उन्होंने अनैतिकता को बढ़ाया। गांधी जी ने लिखा संकीर्ण विचारों वाले तुच्छ अनुयायी विवादों के जन्मदाता है। उनके दलाल जौक की तरह गरीबो का खून चूसते है। उनका कहना था कि डॉक्टर का पेशा भी परजीवी के समान है क्योंकि वे भी पैसे के पीछे ही भागते है वे शायद ही कभी लोगों के हित के इच्छुक होते थे।

गांधी आधुनिक शिक्षा की भी आलोचना करते है क्योंकि यह विद्यार्थियों के नैतिक चरित्र का विकास नहीं करती।

आधुनिक सभ्यता की आलोचना करते हुए गांधी जी ने मशीनों की भी आलोचना की है। उन्होंने बताया कि मशीनों ने भारतीय हैडंलूम को नष्ट कर दिया है। यंत्रों ने आधुनिक पूंजी व फैक्टरी व्यवस्था को जन्म दिया है। फैक्टरी मालिक लोगों को गरीब बनाकर धन सम्पदा संचित कर रहे है। उनकी धारणा थी कि भारतीय मिल मालिक भी उतने ही शोषण कर्त्ता होगें जितने कि अमेरिका या यूरोप के मालिक है। उनकी मान्यता थी कि यंत्र बेकार है क्योंकि यंत्र बडी संख्या में लोगों को कंगाल और उन पर निर्भर बना रही है। यह स्वदेशी की भावना गांधी दृढ़ता पूर्वक कहते है कि ओद्यौगीकरण आधुनिक सभ्यता का परिणाम है। ठीक ऐसे ही आधुनिक यूरोप राज्य और संसदीय व्यवस्था आधुनिक सभ्यता के साधन है।

उनका कहना था कि ब्रिटिश पार्लियामेट (संसद) संसदों की जननी नहीं है वरन् एक बांझ स्त्री और वेश्या है। बिना बाहरी दबाव के ब्रिटिश संसद ने अपने आप एक भी अच्छा काम नहीं किया। यह वेश्या (वेश्या) के समान है क्योंकि यह मंत्रियों के नियत्रण में कार्य करती है जो समय-समय पर बदलते रहते है। ब्रिटिश संसद के ईमानदार लोग चुनकर नहीं आते और चुने हुए सदस्य हमेशा अपने हितों के बारे में सोचते है। वे सिर्फ भय या व्यक्तिगत स्वार्थ से कार्य करते है। वे सदैव अगले चुनाव में पुन: चुने जाने के बारे में सोचते है। यह दुनिया की बातूनी दुकान है। इसके सदस्य बिना विचार किए अपने दल को ही वोट देते है। इसकी कार्य प्रणाली में बहुत अधिक धन व समय खर्च होता है। अपनी इच्छा लोगों पर थोपते है। अंग्रेज मतदाताओं के लिए अखबार (समाचार पत्र) उनकी बाइबिल है। ये अखबार प्राय: अप्रमाणिक होते है।

प्रजातंत्र के वेस्ट मिनिस्टर मॉडल की आलोचना के बाद गांधी आधुनिक राज्य की आलोचना करते हुए तर्क देते है कि यह हिंसा और दमन पर आधारित है यह बहुमत के शासन के सिद्धान्त पर आधारित है। परन्तु हर समय बहुमत का निर्णय ही सही नहीं होता और हमेशा बहुमत की निरंकुशता का खतरा बना रहता है। उन्होंने इस विचार का समर्थन नहीं किया कि संवैधानिक सत्ता द्वारा पारित कानून का आंखमूंद कर समर्थन किया जाए चाहे वह हमारी आत्मा के विरूद्व ही क्यों न हो।

गांधी जी का तर्क था कि अन्यायपूर्ण कानून को मानना अमानवीय है अन्यायी कानून की अवज्ञा करना स्वराज की कुंजी है।

गांधी जी का कहना था कि उनका स्वराज अंग्रेजी शासन से अलग है क्योंकि वे नहीं चाहते कि भारत पश्चिम की नकल करे हम बिना अंग्रेज लोगों के अंग्रेजी शासन स्थापित नहीं

कर सकते। उन्होंने इटली का उदाहरण देते हुए बताया कि मैजिनी के सपने को नहीं समझा गया हालांकि इटली विदेशी आधिपत्य से मुक्त हो गया। इटली में शासन लोगों का नहीं वरन् राजकुमारों नोबल्स और अमीरी का हो गया। उनका कहना था कि भारतीय राजाओं का शासन अच्छा नहीं था और सिर्फ इसलिए क्योंकि वे भारतीय थे उनका शासन स्वदेशी नहीं माना जा सकता उन्होंने लिखा मेरी राष्ट्रभक्ति मुझे यह नहीं सिखाती कि मैं इस बात से सहमत हो जाऊँ कि जनता का दमन भारतीय राजाओं के पांवों तले हो सिर्फ इसलिए कि अंग्रेज चले गये है। यदि मेरे पास शक्ति है तो मैं भारतीय राजाओं के अत्याचारों का भी उतना ही विरोध करूँगा जितना कि अंग्रेजों का करता हूँ। उन्होंने पश्चिम की नकल करने पर जापान की भी आलोचना और द्वितीय विश्वयुद्ध की उसकी नीतियों की भी भर्त्सना की।

4.5 भारतीय सभ्यता पर गांधी जी की संकल्पना

सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता पर गांधी जी द्वारा की गई आलोचनाऐं इस रूप में है कि वे अलग अलग ईकाइयों को आधुनिक सभ्यता में अर्न्तसम्बंधित और जुडी हुई मानते है। उनका कहना था कि इस सभ्यता का अंधानुकरण बहुत से अन कहे है दुख कष्टों का कारण बनेगा। जब गांधी इन आलोचनाओं को लिख रहे थे उस समय सम्पूर्ण विश्व विज्ञान और तकनीकी की नई खोजों से प्रकाशित हो रहा था। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारतीय सभ्यता ही सच्ची सभ्यता है क्योंकि इसने ग्रीस व रोम द्वारा की गई गलतियों को छोड दिया है और आज भी अपनी मजबूत बुनियाद पर खडा है। गांधी जी के अनुसार सभ्यता आचरण का वह तरीका है जो व्यक्ति को कर्त्तव्य का मार्ग बताता है। कर्त्तव्य करने का अर्थ है नीति की पालना करना नीति का पलन का अर्थ है अपने मन और इन्द्रियों को वशमें रखना भारतीय सभ्यता इच्छाओं को सीमित करने में विश्वास करती है क्योंकि जितना अधिक हम कामनाओं, इच्छाओं में संलग्न होते है वैसे ही वे बढती जाती है। इसी लिए हमारे पूर्वजों ने भोग की सीमा तय कर दी थी। उनका मानना था कि मोटे तौर पर सुख मानसिक स्थिति है यह आवश्यक व्यक्ति अपनी अमीरी की वजह से सुखी नहीं है। गांधीजी का तर्क था कि भारत में जीवन को नष्ट करने वाली होड को समाज में जगह नहीं दी गई। क्योंकि यह सब अपना अपना व्यवसाय करते थे। ऐसा नहीं था कि भारतीय मशीनों का अविष्कार नहीं कर सकते थे। बल्कि वे जानते थे कि यंत्रों के कारण लोग इनके गुलाम बन जाएंगे और नैतिकता को छोड देंगे। इसलिए उन्होंने शारीरिक श्रम करने पर बल दिया। वे जानते थे कि बडे शहर बुराइयों के घर होंगे और लोग सुखी नहीं रह सकेंगे इसलिए व छोटे गांवों में रहते थे। शहर गरीबों के शोषण हेतु थे भारतीय राजाओं और राजकुमारों के मुकाबले ऋषि और फकीरों को ज्यादा सम्मान व महत्व देते थे। सामान्य नागरिक सुख से रहता था और कृषि कार्य करता था। गांधीजी ने स्वीकार किया कि भारतीय सभ्यता में भी कुछ देश थे और उन्होंने इन बुराइयों को दूर करने के प्रयास करने पर जोर दिया। उन्होंने लिखा दुनिया के किसी भी हिस्से में और कोई भी सभ्यता सम्पूर्णता तक नहीं पहुँची है। भारतीय सभ्यता की प्रकृति नैतिक प्राणी को उन्नत करना है। इस प्रकार गांधी भारतीय सभ्यता के माध्यम से आधुनिक सभ्यता की चुनौतियों का सामना करने के इच्छुक थे और सभी मान्यताओं पर तर्क करते है। उनका तर्क था कि विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में प्रगति के बावजूद पश्चिम में मानव वास्तव में सुखी नहीं है और तृतीय विश्व के देशों में उपनिवेशवाद

और प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन ने लोगों के दुखों को अत्यधिक बढाया है। यह सभ्यता पश्चिम के लिए भी अच्छी नहीं है और गरीब देशों के लिए तो अभिशाप की तरह है। पर गांधी जी जानते थे कि प्राचीन भारतीय सभ्यता यथावत वापस नहीं आ सकती और विकास के पूंजीवादी मॉडल को विस्थापित करने के लिए नये वैकल्पिक राजनीतिक व्यवस्था को आगे आना होगा।

4.6 विकास का गांधीवादी वैकल्पिक मार्ग

गांधी ने विकास का वैकल्पिक मार्ग दिया जो निम्न पांच सिद्वान्तो पर आधारित हैं-

1. मानव सम्बन्धित नया दर्शन
2. विकेन्द्रित आर्थिक विकास
3. ग्राम स्वराज की अवधारणा
4. सत्याग्रह की अवधारणा
5. विश्व शांति और शांतिपूर्ण साधनो से संघर्ष

गांधी ने तर्कवाद और अनुभववाद पर बल देने वाली आधुनिक पश्चिमी विचारों का विरोध किया है। उन्होंने तर्क और विज्ञान को सर्वोच्च स्थिति देना स्वीकार नहीं किया वे मुख्य रूप से आध्यात्मिक थे और आत्मा की स्वतंत्रता को प्राप्त करना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। वे सुख प्राप्त करने के लिए प्रकृति को रौदना उचित नहीं मानते थे उनका तर्क था कि गीता की शिक्षाओं का सार अहिंसा है और प्रत्येक व्यक्ति को आत्म नियंत्रण और निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य की पालना करनी चाहिए।

गांधी इंद्रिय सुख में लगे रहने के पक्षधर नहीं थे और व्यक्ति के द्वारा उच्च नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति को महत्व देते थे पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा जो अर्थशास्त्र वैभव की पूजा को बढ़ावा दे वो कर्म के स्थान पर सम्पत्ति को अंधाधुंध बढाने पर जोर देता है ऐसा विज्ञान असत्य और निराशाजनक है। यह जल्दी ही मृत्यु की ओर ले जाता है। सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों पर अडिग रहता है। जिनके पास सामान से भरे रेफ्रीजरेटर हैं अलमारीयों में ढेरों कपडे व प्रत्येक गैराज में कार और हर कमरे में आराम के साधन है वे लोग भी मानसिक रूप से असुरक्षित और दुखी हैं। ऐसे मानव का क्या जो अपने व्यक्तिगतता को खोकर यदि मानव सम्मान को प्राप्त करे और मशीन को पुर्जा मात्र बन जाए। मैं चाहता हूँ। कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में हाडमास के मानव के रूप में सदस्य हो। इस तरह गांधी एक ऐसे मानव के सिद्धान्त प्रस्तुत करते है जो राज्य समाज अर्थव्यवस्था और प्रकृति में अपनी स्वायत्तता और स्वतंत्रता को सुरक्षित रख सकें। गांधी जी आधुनिक पूंजीवाद और औद्यौगीकरण की आलोचना करते है। उनका मानना था कि औद्यौगीकरण के कारण समृद्ध पश्चिमी देशों ने तृतीय विश्व का शोषण किया है। इसने लोगों को अमीर और गरीब दो वर्गो में बाट दिया और कुछ थोडे से धनवान लोगों के हाथ में शक्ति का केन्द्रीकरण कर दिया औद्योगीकरण कुछ थोडे से लोगों पर बहुमत के नियंत्रण के अतिरिक्त कुछ भी नही है। इन थोडे से अल्पसंख्यकों ने बाजार का शोषण किया बाजार में प्रतियोगिता का नाश किया और बहुत बड़ी संख्या में लोगों को बेरोजगार किया। उनका दृढ़ विश्वास था कि मशीनें हानि प्रद है। जो काम मशीनें करती है वे काम लाखों हाथ आसानी से कर सकते है अन्यथा वे बेकार

बेराजगार होगे। यंत्रीकरण तब उचित है जब काम करने वाले हाथ कम संख्या में हो।" व्यक्ति की आत्मनिर्भरता और रोजगार के लिए गांधी ने चरखे से कताई और खादी की वकालात की उससे अमीर देशों द्वारा गरीब देशो का और अमीर लोगों द्वारा गरीबों के शोषण से मुक्ति भी मिलेगी उन्होंने लिखा"(खादी) प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण है। यदि व्यक्ति को स्वयं की शक्ति के गर्व को महसूस करवाती है जो व्यक्ति में है और भारतीय मानवता के समुद्र की प्रत्येक बूंद के रूप उसकी पहचान से उसे गौरवान्वित करती है।" खादी के साथ-साथ गांधी प्राकृतिक चिकित्सा का समर्थन करते है और आधुनिक औषधियों का विरोध करते है। उनकी मान्यता थी कि सभी बीमारियां प्रकृति के नियमों की अवहेलना का परिणाम है और उन नियमों की पालना से स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त होगा। आधुनिक तरीके के जीवन से व्यक्ति शारीरिक और मानसिक स्वस्थ्य प्राप्त कर सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा रोगी को जीने की सही पद्धति सिखाती है जिससे न केवल व्यक्ति विशेष रोगों में अपना बचाव कर सकता है वरन् भविष्य में बीमार पड़ने से भी बच सकता है। एक सामान्य चिकित्सक रोगों का अध्ययन करने में रूचि रखता है जबकि प्राकृतिक चिकित्सक स्वास्थ्य के अध्ययन में ज्यादा रूचि रखता है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोगी को बीमारी को जड़ से खत्म करने पर जोर है जो जीवन की ऐसी शुरुआत है जिसमें बीमारी और रोगों के लिए कोई स्थान नहीं है। इस तरह प्राकृतिक चिकित्सा इलाज का तरीका नहीं वरन् एक जीवन पद्धति है जिसका उद्देश्य शरीर मन और मस्तिष्क का शुद्धीकरण करना है।

गांधी ने आर्थिक विकास के पश्चिमी मॉडल का विरोध किया क्योंकि यह असमानता का जनक है। गांधी के लिए आर्थिक समानता का आर्थ है- पूंजी व श्रम के मध्य अन्तर की समाप्ति गरीब और अमीर के बीच की खाई को पाटना। इसे प्राप्त करने के लिए कुछ थोडे से अमीरों के स्तर को घटाकर और लाखों अध भूखे -नंगे भारतीयों के स्तर को ऊपर उठाकर होगा। गांधी मानते हैं कि यह परिवर्तन केवल अहिंसक तरीके से ही लाया जा सकता है जिससे इस परिवर्तन को स्थायी रूप से प्राप्त किया जाए। इस तरह ' स्वराज ' स्वयं के सहयोग से ईट दर ईट जोड़ कर बनेगा।

4.7 गांधीजी का पर्यावरणवाद सिद्धान्त

पर्यावरण सम्बंधी गांधी के आर्थिक विकास के वैकल्पिक मॉडल में स्वदेशी की अवधारणा तथा आर्थिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण की स्पष्ट घोषणा है।

ब्रिटिश उपनिवेशवाद का भारतीय हल स्वदेशी था और गांधी के राजनीति में प्रवेश से पहले ही दादा भाई नौरोजी श्री अरविंद और तिलक जैसे दृढनिश्चयी नेताओं द्वारा इसका प्रचार किया गया था। गांधी ने इसे नया अर्थ दिया और दावा किया कि ' स्वदेशी' का अर्थ है आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था गांधी स्वदेशी को हमारी ऐसी भावना के रूप में परिभाषित करते है जो हमें हमारे आस पास मौजूद वस्तुओं और सेवाओं तक सीमित करती है बजाय दूर दराज मौजूद वस्तुओं के "यह अपने पास पडौस के प्रति अपने कर्तव्यों व एहसानों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना है। स्वदेशी के अनुयायीयों को अपने पर्यावरण का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए और अपने पडौसी की मदद के लिए प्रयत्नरत रहना चाहिए। गांधी के अनुसार यह सार्वभौमिक धर्म है जिसमें निकटतम उपलब्ध संदर्भो के प्रति कर्तव्यों का पालन करके धीरे-धीरे कर्तव्यों की परिधि

को व्यापक बनाया जाना है। वे यह भी कहते है कि स्वदेशी का अर्थ अपने चारों ओर चीन की दीवार बनाना नहीं है। वे इस बात को महत्व देते है कि सभी जीवित प्राणी एक दूसरे से जुड़े है और सभी को अपने सामर्थ्य के अनुसार सेवा करनी चाहिए। इससे अपने पास पडौस के लगाव के साथ विश्व बंधुत्व का सामंजस्य विकसित होगा। अपने लाखों देशवासियों को बर्बाद करने और बडे पैमाने पर उत्पादित विदेशी सामान के उपयोग में गांधी विश्वास नहीं करते थे। यह ने तो किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति पूर्ण निष्ठा है और न संकीर्ण क्षेत्र तक सीमित कूप मंडूकता। यह मित्रता और आपसी सहयोग के दायरे को बढाने में विश्वास करती है। गांधी का मानना था कि अपने पडौसियों की सहायता करके सम्पूर्ण मानवता की सेवा की जा सकती है इसकी एक मात्र शर्त है कि यह सेवा निस्वार्थ हो और किसी भी मानव के शोषध पर आधारित न हो यह सेवा की भावना गति पकडेगी लोगों को इकट्टा करेगी और सम्पूर्ण पृथ्वी को एक घेरे में ले लेगी। गांधी जी कहते है समुद्र से अलग होकर एक बूंद बिना कुछ किए नष्ट हो जाती है। लेकिन समुद्र के रूप में जुडकर अपने सीने पर विशाल जहाज को ले जाने का गौरव प्राप्त करती है। गांधी का स्वदेशी की अवधारण का आधार ग्राम व कुटिर उधोगो के प्रति उनका लगाव है। गांधी जी पश्चिम की विनाशक आर्थिक नीतियों के आलोचक थे क्योंकि वे विकास शील देशों की मानव शक्ति का यथा उपयोग करने के स्थान पर कच्चे माल पर जोर देते थे जिससे कुछ थोडे से लोगों के हाथों में अत्यधिक शक्ति और भाग्य केन्द्रीकृत हो गई थी। इस लिए गांधी की दृढ़ मान्यता थी कि जहां तक भारत का प्रश्न है। मानव शक्ति का पूर्ण उपयोग और कच्चे माल का वितरण गांवो में करना ही वास्तविक नीति होगी जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में ही वस्तुओं का उत्पादन है। बजाय कच्चे माल को गांवो से बाहर भेजने अथवा मंहगे दामो पर तैयार विदेशी माल खरीदने के जब गांधी जी 30 के दशक के प्रारम्भ में इंग्लैंड गए तो उनसे बड़े पैमाने पर उत्पादन से सम्बंधित प्रश्न पूछे गए। गांधी ने बताया कि बडे पैमाने पर उत्पादन करने के पीछे की सनक ही विश्व संकट के लिए उत्तरदायी है।

गांधी के बड़े पैमाने पर उत्पादन के विरूद्व विचार निम्न तर्को पर आधारित थे:-

1. बड़े पैमाने पर उत्पादन समाज में बड़े पैमाने पर उचित वितरण को सुनिश्चित नही करता।
2. यदि बडे पैमाने पर उत्पादन विकेन्द्रित तरीके से भी किया जाए तो भी शक्ति के कुछ विशिष्ट केन्द्र बन जाते हैं जिनके निर्णयों पर लोगों को निर्भर रहना पड़ता है।
3. यूरोपीयन शक्तियाँ विश्व की तथा कथित कमजोर और असंगठित नस्लों का शोषण करती है जिससे विश्व में असमानता बढ़ती है।
4. लोगों के उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन करके बड़े पैमाने के उत्पादन के दोषपूर्ण प्रभावों को कम किया जा सकता है परन्तु इसे देश की समृद्धि और सोने को सुरक्षित करने के लिए ऐसा लम्बे समय तक नहीं चल सकता।
5. उत्पादन के स्थानीय होने पर ही वितरण की समानता हो सकती है। परन्तु ऐसा संभव नहीं हो सकता क्योंकि पूंजीपति अपने द्वारा उत्पादित माल को बेचने के लिए विश्व बाजार पर कब्जा करना चहते है।

6. वास्तव में वे बड़े पैमाने के उत्पादन के विरोधी नहीं है वे चाहते है कि लोग अपने घरों में साधारण मशीनों से उत्पादन करे। इस प्रकार बड़े पैमाने पर उत्पादन भी स्थानीय आधार पर होगा।

इस प्रकार गांधी के लिए समानता का विचार महत्वपूर्ण था और उन्होंने थोड़े से विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के प्रति पक्षपात पर आधारित आधुनिक सभ्यता का विरोध किया। इसलिए उन्होंने लिखा, "मैं विशेषाधिकारों और एकाधिकारों से घृणा करता हूँ। जिसे सम्पूर्ण जनता के साथ नही बांटा जा सकता वह मेरे लिए वर्जित है।" गांधी जी ने खेती और हस्तशिल्प उधोगों के विकास पर बल दिया। वे इस बात को नही मानते थे कि शहर भारत के सच्चे प्रतिनिधि है। उनका मत था कि थोडे से शहरी धनी लोगों के लिए ग्रामो का शोषण होता रहा है।

गांधी जी अपने आदर्श ग्राम स्वराज की अवधारणा को प्रस्तुत किया और बताया कि यह जाति विहिन और वर्ग विहीन समाज होगा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता और क्षमता के अनुसार प्राप्त करेगा। इस व्यवस्था में कोई उच्च या निम्न नही होगा और सभी सेवाऐं (कार्य) समान मानी जाएगी तथा उन्हें वेतन मजदूरी भी समान मिलेगी। व्यक्तिगत प्रगति के स्थान पर लोगों का उद्देश्य समाज की सेवा के माध्यम से आत्माभिव्यक्ति व आत्म चेतना का विकास करना होगा। ऐसे स्वराज में प्रत्येक व्यक्ति कठोर परिश्रम करेगा। शिक्षा व संस्कृति के लिए पर्याप्त स्वतन्त्र अवसर और सुविधा होगी इस दुनिया में हस्त शिल्प कुटीर उघोग और लघु स्तर पर सहकारी खेती थी, लेकिन जाति और सम्प्रदायिकता के लिए कोई स्थान नहीं था। उन्होंने लिखा" यह स्वदेशी है जिसमें आर्थिक सीमाऐं निर्धारित होगी लेकिन व्यक्तिगत स्वंतत्रता का दयरा अत्यधिक बढ़ जाएगा। इस व्यवस्था में सम्पूर्ण और उसके एक अंग में कोई संघर्ष नहीं होगा संकीर्ण स्वार्थी या आक्रमक राष्ट्रवाद का भय नहीं होगा। राज्य की शक्ति को कम करने के लिए गांधी शाक्ति के विकेन्द्रीकरण को आवश्यक शर्त के रूप में मानते है। गांधी का मानना था कि हिंसा पर आधारित केन्द्रिकृत शक्ति और बल के कारण आधुनिक राज्य व्यक्ति के अधिकारों का शत्रु बन गया है।

'हिन्द स्वराज' में गांधी राज्य निर्माण के पश्चिमी मॉडल का विरोध करते है और भारतीयों को इसकी नकल नहीं करने की सलाह देते है। उन्होंने लिखा राज्य हिंसा का संगठित और केन्द्रीकृत रूप है। व्यक्ति में आत्मा होती है जबकि राज्य आत्माविहीन मशीन है जो हिंसा से कभी अलग नहीं हो सकती क्योंकि इसका अस्तित्व ही उससे है। गांधी राज्य की शक्ति को कम करके इसे पीड़ितों को देना चाहते थे। शक्ति को कम करने और राज्य की सहायता करने के लिए गांधी पंचायत प्रजातंत्र की पद्वति सुझाते हैं जो सबसे निचले स्तर पर मौजूद लोगों को निर्णय करने की शक्ति देता है। उन्होंने इस मॉडल को सरकार की संसदीय प्रणाली से बेहतर माना है। गॉधी का पंचायत का प्रजातांत्रिक रूप निम्न सिद्धान्तों पर आधारित हैं:-

1. ग्राम गणराज्य आत्मनिर्भर होने और अन्न, दूध, कपास और कपड़े उत्पादित करेंगे।
2. प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होगा और गांव के अपने स्कूल थियेटर सार्वजनिक सभागृह और खेल के मैदान आदि होगे।

3. प्रत्येक गतिविधियों का आधार सहकारिता होगा। गांव स्वच्छ पानी की आपूर्ति करेगा और सार्वजनिक कुओं और पानी सम्बंधी अन्य कार्यो की देख भाल करेगा।
4. जाति और अस्पृश्यता जैसी स्थिति नहीं होगी।
5. अहिंसा और इसकी असहयोग की पद्वती को ग्राम समुदाय की स्वीकृति होगी।
6. बारी-बारी से सभी के लिए ग्राम सुरक्षा का कार्य करना अनिवार्य होगा।
7. पंचायत में 5 सदस्य होगे जिनका प्रतिवर्ष चुनाव होगा ये पंचायत ग्राम गणराज्य कार्यपालिका व्यवस्थापिका और न्यायपालिका सम्बंधी कार्य करेगी।
8. सभी निर्णय सर्वसहमति से लिए जायेगे समाज में असमानता के बड़े कारणों में तीन प्रकार के भेदभाव थे। ये तीन कारण थे।
    1. शारीरिक व मानसिक श्रम में विभेद ।
    2. ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के मध्य भेदभाव।
    3. कृषि और उद्योगों के मध्य भेदभाव।

गांधी जी ' ग्राम स्वराज' में इस भेदभाव को समाप्त करने के इच्छुक थे। उन्होंने शारीरिक और मानसिक श्रम में भेद नहीं किया और कहा कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रोटी पसीने की कमाई से प्राप्त करनी चाहिए। बड़े पैमाने पर अत्याधिक उत्पादन करने बडी औद्योगिक इकाई लगाने और विकेन्द्रित आर्थिक गतिविधियों पर रोक लगाकर शहर और ग्राम के बीच की खाई को पाटा जा सकता है। गांधी का कुटीर और ग्रामीण उद्योगों की अवधारणा विशेषतौर पर कृषि और उद्योग के बीच के अन्तर को कम करने पर आधारित थी क्योंकि वे इन दोनों के मध्य एक सामंजस्य बैठाना चाहते थे।

गांधी के आदर्श राज्य 'स्वराज' में लोगों को सभी अधिकार प्राप्त होंगे और निर्वलतम भी उतना ही शक्ति और सत्ता प्राप्त करे जितना कि शक्ति शाली। उन्होंने लिखा " स्वराज्य की प्राप्ति थोड़े से लोगों द्वारा सत्ता अर्जित करना नहीं है वरन् सभी के द्वारा इतनी शक्ति प्राप्त करना है कि इसके दुरूपयोग को रोक सकें विरोध करने की क्षमता आत्मा की स्वतन्त्रता आत्मनिर्भरता पर आधारित है जिसे एक अनुशासित सहयोगी जीवन उत्पन्न होगा गांधी के लिए सार्वजनिक जीवन की मूल ईकाई ग्राम गणतंत्र थे। यह संरचना अनगिनत ग्रामों से मिलकर बनेगी जो हमेशा विस्तृत होती जाएगी कभी भी इसके वृत कम नहीं होगें। जीवन एक पिरामिड की तरह नहीं होगा जिसका शिखर उसके तल से स्थिर है वरन् यह समाज के भीतर सागरीय वृतों के समान होगा जिसके केन्द्र में व्यक्ति होगा जो अपने निकटवर्ती वृत अर्थात ग्राम के हित में त्याग करने को तैयार रहेगा। और अंत में इसमें व्याप्त लोक कल्याण की भावना ऐसे मनुष्यों की विराट समष्टि में विलीन हो जाएगी जो अहंकारी नहीं अपितु विनम्र होगे और उस विशाल वृत्त की गरिमा को अनुभव करेगें जिसके कि वे स्वयं भी अनिवार्य घटक हैं। इस व्यवस्था में सबसे बडा वृत्त अपने भीतर छोटे वृत्तों को कुचलकर शक्ति प्राप्त करेगा। गांधी चाहते थे कि व्यक्ति को पूर्ण अधिकार और सत्ता मिले और राज्य की शक्ति को सीमित किया जाएगा। उनका कहना था कि सविनय अवज्ञा अथवा सत्याग्रह की सहायता से लोग राज्य की शक्ति को चुनौती दे सकते है। सत्याग्रह का उद्देश्य राज्य की गलत नीतियों का अहिंसक तरीके से विरोध करना सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं को बुरइयों व विकृतियों से मुक्त करना

तथा गलत नीतियाँ अपनाने वालों को उनकी कमियां बताकर उनका हृदय परिवर्तन करना है। गांधी ने सत्याग्रह को सदैव बहादुरों और भययुक्त निडर व्यक्ति का अस्त्र माना।

गांधी ने हिंसा का विरोध किया और घृणा को जहर फैलाने के कारण आधुनिक राष्ट्रवाद की आलोचना की युद्व की नीति निरंकुशता को शुद्व और सादा बना देती है। गांधी का तर्क था कि जो लोग शांति के लिए कार्य करना चाहते है उन्हें निरंकुश के दबाव को बढ़ाने में मदद नही करनी चाहिए तथा विवादों के शांतिपूर्ण समाधान नहीं है। शांति बल प्रयोग से नहीं लायी जा सकती। पूर्व के पृष्ठों में हमने संक्षिप्त में गांधी द्वारा पर्यावणवाद के रूप में प्रतिपादित राजनीतिक सिद्धान्त की चर्चा की। यह गांधी की विशेषता है कि उन्होंने पर्यावरणविदों के अधिकांश तर्कों की कल्पना की और वैकल्पिक मॉडल की रूप रेखा प्रस्तुत की जिसमें आधुनिक पर्यावरण विज्ञानियों की चिन्ता का निराकरण है।

4.8 आधुनिक पर्यावरणविद और गांधीजी

आधुनिक पर्यावरण विज्ञानियों ने महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिनमें शामिल हैं- स्थानीय उत्पादन मशीनों का सीमित प्रयोग क्षेत्रीय और स्थानीय समूहों के लिए आर्थिक स्वायत्तता उत्पादन प्रक्रिया पर उत्पादक और उपभोक्ता का संयुक्त नियंत्रण युद्व तथा परमाणु हथियारों का प्रयोग। यदि हमें गांधी के आर्थिक राजनीतिक युद्व और शांति सम्बंधित विचारों का ध्यान पूर्वक अध्ययन करें। तो हमें अनुभव होगा कि गांधी इनसे अधिकांश विचारों को वे सामाजिक व राजनीतिक जीवन में प्रयुक्त करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि पृथक होकर या बचाव सम्बंधी उपायों को अपना कर पर्यावरण का संरक्षण नहीं किया जा सकता बल्कि विकास की मुख्य समस्या को समझना होगा। जब तक कि बाजार के शोषण पर आधारित और बड़े पैमाने पर उत्पादन की व्यवस्था पर आधारित पूंजीवादी व्यवस्था को चुनौती नहीं मिलेगी तथा इसकी नीतियों को नहीं बदला जाएगा तब तक प्रकृति के क्षरण और पर्यावरण के विनाश को रोकना सम्भव नहीं है। गांधी उस आधुनिक सभ्यता को अभिशाप की संज्ञा देते हैं जो शक्ति के केन्द्रीयकरण दबावकारी राज्य व्यवस्था विज्ञान और तकनीकी को प्राविधिक प्रयोग और तर्कवाद की विकृत व्यवस्था पर आधारित हो। उनका कहना बिल्कुल सही था कि समाज में असमानता का कारण विशाल और जटिल मशीनों का उपयोग है क्योंकि उत्पादन के आधुनिक तरीके धनवानों के सहायक हैं। उनका मानना था कि प्रकृति के साथ उचित व्यवहार होना चाहिए। उन्होंने इस हेतु वैकल्पिक पद्धतियां दी जैसे -प्राकृतिक चिकित्सा सहकारी कृषि और प्रजातंत्र के सिद्धान्त पर राजनीतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण और सत्याग्रह तकनीक।

गांधी जी एक ऐसे राष्ट्र से सम्बंधित थे जहां उत्पादन के विभिन्न तरीके मौजूद थे और प्रयोग करने के लिए प्रचुर अवसर थे। पश्चिम ने भारत की बहुमूल्य संस्कृति को नष्ट किया हांलाकि पूरी तरह नहीं हो पाया गांधी ने भारतीय सभ्यता की आर्थिक राजनीतिक व सांस्कृतिक विविधताओं का रचनात्मक उपयोग किया और एक वैकल्पिक प्रतिमान दिया। गांधी भारतीय सभ्यता के प्रशंसक थे। परन्तु वे इसकी कमियों को भी जानते थे इसी लिए वे उस प्राचीन सभ्यता को हूबहू पुर्नजीवित नहीं करना चाहते थे वे इसमें स्वतंत्रता की भावना और स्वायत्तता जागृत कर उसे परिवर्तित करना चाहते थे। इस प्रकार ग्राम गणराज्य का उनका

सपना एकदम स्पष्ट था जिसमें सडकें थी शिक्षा और मनोरंजन की सभी महत्वपूर्ण सुविधाऐं थी।

पर्यावरणवाद से स्थिर विकास और प्रगति की सीमाओं के बारे में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठखडे हुए क्योंकि हमें आपने प्राकृतिक संसाधनो का भलीभांति संरक्षण करना पड़ेगा परन्तु दोनों बातें तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि हम अपनी मांगों को सीमित करने का निर्णय नही लेते और प्रगति तथा भौतिक जो की अवधारणा पर पुर्नविचार नही करते गांधी चाहते थे कि लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो व सम्मान जनक जीवन मिले। वे भौतिक सुखों में अत्यधिक लिप्तता के विरोधी थे क्योंकि इसकी बहुत अधिक कीमत थी। गांधी जी का राजनीतिक सिद्धान्त वास्तव में एक ऐसा राजनीतिक सिद्धान्त था जो स्थिर विकास इच्छाओं की संतुष्टि और शांति पर आधारित थी। अन्याय के विरूद्व संघर्ष के लिए दी गई सत्याग्रह अथवा सविनय अवज्ञा की अवधारणा गांधी की हरित सिद्धान्त की महत्वपूर्ण देन है। विश्व भर में चल रहे शांति आन्दोलनों को इस तथ्य की ओर ध्यान देना चाहिए और अन्याय के खिलाफ इस अस्त्र का प्रयोग करना चाहिए।

4.9 सारांश

पर्यावरण की राजनीति अभी अपने शैशव काल में है। राजनीति विज्ञान की धारा पर आधुनिकता वाद के अनुयायियों का गहरा प्रभाव है। पर्यावरण वाद के अनुयायी गांधी के विचारों का लाभ नहीं उठा रहे जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्व वैचारिक युद्व किया था। इस प्रकार हम कह सकते है कि उनकी राजनीतिक नीतियों का सुदृढ विरोधियों पर परिवर्तन होना अभी बाकी है। इसलिए जब भी एक न्यायपूर्ण स्थिर समाज की स्थापना के लिए संघर्ष और विश्व व्यवस्था के लिए उत्साह होगा तो यह और कुछ नहीं होगा बस-गांधी जी को पुन: वापस लाना होगा।

4.10 अभ्यास प्रश्न

1. आधुनिक सभ्यता पर गांधीजी द्वारा दी गई आलोचना का वर्णन करें।
2. गांधीजी द्वारा बताये विकास के मार्ग का मूल्यांकन करें।
3. पर्यावरण पर गांधीजी के विचारों का वर्णन करें।

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

- एम. क्लर्क ‘एनवायरनमेंटलिस्म' इन अर. बेले की सम्पादित थ्योरीज एंड कान्सेटटस ऑफ पॉलिटिक्स एन. इट्रोडेमान (मैनचेस्टर ऐंड न्यूयार्क मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस 1993)
- पी.एन.सेठ थ्योरी ऐंड प्रैक्टिस ऑफ एनवायरनमेंटलिस्म :ग्रीन प्लस गांधी (अहमदाबाद, गुजरात विद्यापीठ, 1999) एम. के. गांधी, हिन्द स्वराज अथवा इंडियन होम रूल (अहमदाबाद, नवजीवन, 2003)
- डी. जोशी. गांधीजी ऑन विलेजेस (बोम्बे:मणिभवन संग्रहालय 2003)

इकाई - 5

चिपको आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 शांति का अर्थ
5.3 गांधी की गतिशीलता
5.4 गांधीवादी शांति आंदोलन
5.5 चिपको आंदोलन
5.5.1 ऐतिहासिक वृतांत
5.5.2 दार्शनिक आधार
5.5.3 आंदोलन
5.5.4 चिपको तथा सर्वोदय
5.6 सारांश
5.7 अभ्यास प्रश्न
5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे

- चिपको आन्दोलन के बारे में
- चिपको आन्दोलन की ऐतिहासिकता के बारे में
- चिपको आन्दोलन के दार्शनिक आधारों के बारे में
- चिपको आन्दोलन के महत्व के बारे में

5.1 प्रस्तावना

इस अध्याय में भारत के विभिन्न भागों में वन तथा पर्यावरण संरक्षण की महान परम्परा के बारे में चिपको आंदोलन के द्वारा आपको संवेदीकृत करने का प्रयास किया गया है। पारिस्थितिकी तथा पर्यावरण की संरक्षित करने के लिए प्रयुक्त की गई तथा विकसित की गई जन्मजात, स्वंयसेवी, आत्मनिर्भर क्रियाविधि जो हमारी परम्परा तथा संस्कृति के द्वारा प्रयुक्त एवं विकसित है के बारे में भी यह आपको सूचित करना चाहता है। यह आशा की गई है कि इस अध्याय को पढ़ने के बाद यह भी ज्ञात होगा कि नये समय में हमारी संस्कृति तथा परिस्थितिकी पर विकास तथा आधुनिकीकरण के नाम पर क्या विपत्ति आयेगी। निरन्तर विकास स्वचालित, स्वयं निर्मित है। जिसमें स्वदेशी तकनीक तथा विधियों को प्रयुक्त किया जाता है तथा सार्वभौमिक (Universal) तकनीकों तथा विधियों जो कि उदारीकरण, निजीकरण

तथा वैश्वीकरण (liberalization, privatization and globalization) आदि के द्वारा उत्पन्न हो रही है। दबाव से निम्नीकृत नहीं करना चाहिये ।

5.2 शांति का अर्थ

शांति आन्दोलन की व्याख्या करने से पहले शांति की व्याख्या करना आवश्यक हो जाता है। शांति एक आकारहीन (amorphous) शब्द है जिसका एकदम सही अर्थ भ्रमित करता है। विभिन्न सन्दर्भों में विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न परिस्थितियों में इसका भिन्न भिन्न अर्थ है। यह स्वास्थ्य के काफी समान है - पूर्णता में समझने के लिए काफी कठिन। शांति का सम्पूर्ण अर्थ समझना आवश्यक है क्योंकि इससे शांति की प्रकृति सामान्य तौर पर तथा शांति आन्दोलन विशिष्ट तौर पर समझे जा सकते हैं।

शांति का अर्थ संयुक्त राष्ट्र संघ ने दिया है - "शांतिमय जीवन के लिए समाजों को तैयार करने की घोषणा करना"। इस घोषणा में जोर देकर कहा गया है - "शांति खुली, गतिशील, बहुआयामी प्रक्रिया है जो ऐतिहासिक, सैन्य, राजनीतिक, सामाजिक-राजनैतिक, वैज्ञानिक-तकनीकी, विश्व के आर्थिक तथा शैक्षिक विकास के प्रति बन्धित है तथा जिसको चेतनापूर्वक तथा तार्किक ढंग से परिवर्तित किया जा सकता है।

जौन गलतुंग जिन्होंने आधुनिक समय में शान्ति पर खोज कार्य किया है तथा गांधीजी से शांति को जोड़ते है ने शांति के दोपक्ष परिभाषित किये हैं। ऋणात्मक शांति (युद्ध की अनुपस्थिति तथा शारीरिक हिंसा) तथा धनात्मक शांति जिसको "मानव समाज का एकीकरण" के रूप में परिभाषित किया जाता है। उसमें बाद में उन्होंने धनात्मक शांति की अवधारणा की पुनरावृति की जिसका अर्थ शारीरिक तथा संरचनात्मक हिंसा का नहीं होना था तथा साथ ही साथ "मानव समाज के एकीकरण के साथ मानव की पूर्ति" इस भावना को प्राप्त करना था। अत: गलतुंग ने शांति की अवधारणा की पुनरावृति की जिसका अर्थ शारीरिक तथा संरचनात्मक हिंसा का नहीं होना था, तथा साथ ही साथ "मानव समाज के एकीकरण के साथ मानव की पूर्ति" इस भावना को प्राप्त करना था। अत: गलतुंग ने शांति को उस स्थिति के रूप में परिभाषित किया है जहां जीवित रहने की आवश्यकताओं (सुरक्षा, स्वतंत्रता, कल्याण तथा पहचान) की पूर्ति की जाती है। उनके विचार से इन चार आवश्यकताओं के लिए खतरा हिंसा, दमन, दुख तथा विदेशीकरण से है।

एक विचारधारा के अनुसार सभी संस्कृतियों में सभी सभ्यताओं में सभी समय पर शांति के तीन अर्थ बताये गये हैं। तीन अर्थो को एक पिरेमीडिय क्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है। इस क्रम के निम्नतम स्तर पर शांति की संकीर्ण प्रतिबिम्ब होता है। यह विचारधारा ऋणात्मक शांति, अर्थात् नाभिकीय या पारम्परिक युद्ध का नहीं होना ही शांति है तथा इसकी संभावना नहीं होना भी शांति है कि सीमाओं से परे नही है। दूसरे स्तर पर वे है जो शांति का व्यापक अर्थ सोचते हैं। यह शांति की धनात्मक विचारधारा है जिसमें शांति का अर्थ युद्ध तथा हिंसा का नहीं होना ही नही है किंतु अप्रत्यक्ष संरचनात्मक हिंसा का नहीं होना है। यह विचारधारा केवल नाभिकीय अग्नि के खतरे को ही प्रकाशित नहीं करती है बल्कि धीमी तथा मौन अग्नि को भी बताती है जो कि अत्यधिक गरीबी, भूख तथा शोषण से विश्व के विभिन्न

समाजों में उत्पन्न होता है। पिरेमिड के शीर्ष पर शांति की व्यापक तथा महत्वाकांशी छवि है जो आदर्शवादी दार्शनिकों (गांधीजी) योगियों तथा संतों (नानक) भविष्यवक्ता (बुद्ध तथा महावीर) से सम्बन्धित है। यहां शांति को मन की आन्तरिक अवस्था माना गया है जो कि संरचनात्मक रूप से शांतिपूर्ण तथा अहिंसात्मक आचरण, व्यक्तिगत तथा सामूहिक स्तर पर बाह्य प्रदर्शन से जुड़ी हुई है। प्राच्य तथा पाश्चात्य सभ्यताओं में पूर्व-औद्योगिक, औद्योगिक क्या पश्च-औद्योगिक समाजों में शांति की तीन छवि हमेशा एक साथ विद्यमान रही है तथा आज तक भी विद्यमान है। पश्चिम के धनाढ्य समाजों में जहां भौतिक आवश्यकता संतुष्ट हो जाती है ऋणात्मक शांति की आवश्यकता का अनुभव होता है। दूसरी तरफ, धनात्मक शांति की आवश्यकता कम विकसित देशों में अधिक बलवान है, जहां बाह्य-सामाजिक तथा अन्त: सामाजिक शोषण अधिक तीव्र है।

5.3 गांधी की गतिशीलता

गांधी केवल आदर्शवादी ही नहीं थे। विश्व के अन्य दार्शनिकों से भिन्न उन्होंने अपने महान विचारों को प्रयुक्त भी किया। उनके लिए शब्द तथा कार्य में कोई अन्तर नहीं था। विचार तथा प्रयोग में समन्वय का सौन्दर्य उनके व्यापक तथा सार्वजनिक विश्व परिदृश्य से उत्पन्न है। जब वे जीवित थे तब उन्होंने बहुत से आन्दोलनों को प्रेरित किया तथा आज भी उनके पीछे बहुत से नये आन्दोलन तथा सभ्य समाज उनके विचारों को पल्लवित करके प्रासंगिकता को सुदृढ़ बनाया है।

भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन पर महात्मा गांधी के नेतृत्व का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। भारत के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के अतिरिक्त इस आंदोलन ने 1947 में 30 लाख लोगों वाले राष्ट्र को प्रभावित किया तथा आज करोड़ों लोगों के जीवन सम्बन्धी सभी पक्षों तथा राजनैतिक पक्षों को प्रभावित किया। उन्होंने भारत के लोगों को शांति की राह के दीर्घ आयाम दर्शाये, जिनमें न्याय, समानता तथा सर्वजनकल्याण आदि सम्मिलित थे। उन्होंने अपने जीवन तथा क्रियाओं में सत्य, अहिंसा तथा नैतिक मूल्यों के मानक को आधार बढ़ाया था। उन्होंने एक पूर्णरूपेण नवीन तकनीक 'सत्याग्रह' को स्वीकार किया था। इसमें हिंसा के स्थान पर अहिंसा का प्रयोग किया गया हिंसा की विधियों को प्रतिस्थापित करने का प्रयत्न किया गया, यह आन्दोलन पूर्णरूपेण सत्य पर आधारित था।

गांधीजी के नेतृत्व से विद्रोह "शांति न्याय के साथ" में परिवर्तित हो गये थे जिसमें विरोधियों को भी समान न्याय देने पर बल दिया गया। उनके अनुसार शांति वह थी जिसमें "सर्वोदय" अर्थात सभी का कल्याण सम्मिलित था, केवल बड़ी संख्या में बड़ी वस्तुएं नहीं।

अहिंसा तथा सत्य पर आधारित संघर्ष (सत्याग्रह) की मुख्य विशेषताओं के अतिरिक्त गांधीवादी विचारों ने सरकारी क्षेत्र, विकेन्द्रीकरण, नीतिशास्त्र, राजनैतिक नैतिकता, शिक्षा, ग्रामीण तथा शहरी विकास, आत्मनिर्भरता, स्वेच्छाकार्य, जाति तथा छुआछूत के क्षेत्रों को भी प्रभावित किया। अत: वे कार्यक्रम तथा आन्दोलन अधिक लोकप्रिय हुए जो प्रकृति तथा मानव

क्रियाओं के बीच अधिक नैतिक तथा सुसंगत सम्बन्ध स्थापित करना चाहते है तथा राजनैतिक शक्ति के केन्द्रीकरण तथा आर्थिक उत्पादन से पृथक शांतिपूर्ण समाज चाहते हैं।

5.4 गांधीवादी भांति आन्दोलन

आज भारत में, दो प्रकार के शांति आंदोलन हैं, पहला स्वतंत्रता आन्दोलन जो स्वतंत्रता के पश्चात हमारे द्वारा चुने गये विकासपथ की बुराईयों के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुआ है। इसमें छात्र समूहों, महिला संस्थाओं, धार्मिक निकायो पर्यावरण कार्यकर्ताओं, कलाकारों, शिक्षाशास्त्रियों नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं तथा सम्बन्धित पत्रकारों द्वारा किये जाने वाले आन्दोलन सम्मिलित किये जाते हैं। दूसरा अहिंसा उपागम पर आधारित आन्दोलन जो गांधीवादी परम्परा से सम्बन्धित है तथा शांति एवं विकास की ओर ले जाता है। इन दोनों ही प्रकारों में एक ही बात सामान्य है कि जो समस्याएं भारतीयों के समक्ष आती है वे उन समस्याओं से काफी अलग हैं जो समस्यायें उत्तरी गोलार्द्ध में शांति आन्दोलन को जन्म दिया था (नाभिकीय युद्ध का डर)। भारत के जनसाधारण के लिए शांति का अर्थ युद्ध न होने की अपेक्षा और बहुत कुछ सम्मिलित किया जाना है। दैनिक जीवन में शांति का अर्थ सभ्य जीवनचर्या, दबाव से स्वतंत्रता, जीवित रहने के लिए संसाधनों की प्राप्ति, सांस्कृतिक स्वायत्तता तथा शक्तिशालियों तथा राज्य के द्वारा की गई हिंसा से मुक्त होना है। अत: भारत में शांति आंदोलन अन्यत्र कहीं विशेष रूप से पाश्चात्य देशों में उत्पन्न होने वाले परिप्रेक्ष्य से बिल्कुल भिन्न है।

बहुत से आन्दोलनों में गांधीवादी प्रभाव देखा जा सकता है जो कि स्वतंत्रता संघर्ष के समय तथा स्वतंत्रता के बाद से प्रारम्भ हुए हैं। निम्नलिखित उदाहरण उनमें से कुछ है जो विधि, लक्ष्य, स्वरूप, पहुंच, सफलता, गांधीवादी सत्याग्रह दर्शन की प्रभावशीलता आदि के द्वारा प्रदर्शित कर सकेंगे।

1. चिपको आन्दोलन
2. सेवा आन्दोलन
3. खादी आन्दोलन
4. भूदान-ग्रामदान आन्दोलन

5.5 चिपको आन्दोलन

भारत के वन पूरे देश में ग्रामीण लोगों के जीविका के संसान है किंतु पहाड़ी क्षेत्रों में भोजन ईधन तथा चारा प्रदान करने तथा मृदा एवं जल संसाधनों के स्थायीकरण में भूमिका के कारण विशेष महत्व है। ये वन व्यवसाय तथा उद्योग के लिए गिराये जा रहे हैं अत: भारतीय ग्रामीणों ने अपनी आजीविका को सुरक्षित करने के लिए अहिंसात्मक प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह की गांधीवादी विधि का प्रयोग किया है। 1970 तथा 1980 के दशकों में वन नष्ट करने का प्रतिरोध पूरे भारत में फैल गया तथा व्यवस्थित होकर चिपको आन्दोलन कहलाने लगा। (उत्तरांचल का एक कस्बा)

यह मुख्य रूप से एक पर्यावरणीय आन्दोलन है जो गोपेश्वर में उत्पन्न हुआ है। वहां के लोगों ने अपने पारिस्थिकीय जीवन को बचाने के लिए जो कि विकास के साधनों की चुनौती

थी। कुछ प्रतिरोधी विधियां अपनाई जिसे "चिपको" शब्द दिया गया है जिसका अर्थ होता है "आलिंगन करना"। संक्षेप में यह उनका विरोध था जो पहाड़ों पर प्राकृति संसाधनों का शोषण कर रहे थे तथा पारिस्थिकीय संतुलन, को बाधित कर रहे थे। जब वे बाह्य अभिकरण पेड़ों को काटने का प्रयत्न करते थे तो गढ़वाल के लोग बचाव के लिए आते थे। इन लोगों ने विरोध विधि का प्रयोग किया - जब लकड़हारा पेड़ को काटने लगता तो पेड़ से चिपक जाते थे। पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाने वालों के सामने उन्होंने मरने का साहस दिखाया।

यह उन पहाड़ों में प्रारम्भ हुआ जहां आजीविका का मुख्य साधन वन ही है क्योंकि कृषि कार्य करना सरल नहीं है। इनमें से 1973 का चिपको आन्दोलन अधिकतम प्रसिद्ध है। उपरी अलकनन्दा घाटी मण्डल के गांव में अप्रैल 1973 में सबसे पहला चिपको आन्दोलन हुआ तथा पांच वर्षो में उत्तर प्रदेश के कई जिलों में फैल गया था। अलकनन्दा घाटी के वनीय क्षेत्र को स्पोर्ट कम्पनी को आवंटित किये जाने के सरकारी आदेश के साथ यह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इससे ग्रामीण क्रोधित हो गये क्योंकि उनकी ऐसी मांग जिससे लकड़ी कृषि औजार बनाने के लिए मांगी गई थी पहले अस्वीकार कर दिया गया था। एक स्थानीय गैर-सरकारी संस्था (non–government organization) दसोली ग्राम स्वराज संघ (BGSS) के उत्साहित करने पर इस क्षेत्र की महिलाएं एक महिला कार्यकर्ता चन्द्री प्रकाश भट्ट के नेतृत्व में वन में जाती थी तथा पेड़ के चारों ओर एक घेरा बना लेती थी और पेड़ को काटने से पहले रोकती थी। अशिक्षित ग्रामीण महिलाओं ने वन कटाव के परिणामों को जानने के बाद मुख्य रूप से इस प्रकार विरोध किया।

इस विरोध के पश्चात मिलने वाली सफलता से देश के अन्य भागों में भी इसी प्रकार का विरोध फैल गया। लकड़ी काटने के विरूद्ध एक स्वत: विरोध उत्तरप्रदेश में फैल गया फिर उत्तर हिमाचल प्रदेश में फैल गया, दक्षिण कर्नाटक में, पश्चिम राजस्थान में, पूर्व में बिहार में तथा केन्द्रीय भारत में विंध्याचल तक फैल गया था। इस आन्दोलन से पश्चिमी घाटों तथा विंध्याचल में पेड़ों के गिरने को रोका गया तथा ऐसी प्रकृतिक संसाधन नीति बनाने का दबाव पड़ा जो कि लोगों की आवश्यकता तथा पारिस्थितिकीय आवश्यकताओं के लिए अधिक संवदेनशील हो।

5.5.1 ऐतिहासिक वृतान्त

प्रकृति के समीप रहने वाले कई समुदाय इसकी सुरक्षा करते हैं। इसी प्रकार का एक समुदाय राजस्थान में विश्नोई समुदाय है। इस समुदाय ने 280 वर्ष पहले 18वीं शताब्दी में ही राजस्थान में चिपको आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया था। इनका एक बड़ा समूह उपजिलों से था जिसका नेतृत्व अमृता देवी ने किया तथा जोधपुर नरेश की आज्ञा से पेड़ों को गिराने से रोकने के लिए अपने जीवन समर्पित कर दिया। इस घटना के बाद महाराजा ने सभी विश्नोई गांवों में पेड़ों को काटने से रोकने के लिए राजकीय आज्ञा दे दी थी।

5.5.2 दार्शनिक आधार

चिपको आन्दोलन ऐतिहासिक रूप से, दार्शनिक रूप से, तथा संगठनात्मक रूप से पारम्परिक गांधीवादी सत्याग्रह का विस्तार है। इसका विशेष महत्व यह है कि यह स्वतंत्रता के बाद भारत में हुआ। यह विकास की गांधीवादी विचारधारा से युक्त तथा न्याय एवं पारिस्थितिकीय स्थायित्व पर आधारित था उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में इसके अनुयायिओं ने महिलाशक्ति एवं पारिस्थितिकीय चेतना की वृद्धि में मौन योगदान दिया। गांधीजी के दो यूरोपीय शिष्यों (मीरा बेन तथा सरला बेन) का प्रभाव उत्तर प्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में सामाजिक न्याय तथा पारिस्थितिकीय स्थायित्व के संघर्ष में बहुत अधिक था तथा उन्होंने गांधीवादी कार्यकर्ताओं का एक नया प्रकार दिया जिन्होंने चिपको आन्दोलन को आधार प्रदान किया।

5.5.3 आन्दोलन

चिपको आन्दोलन विकेन्द्रीकृत तथा स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं द्वारा की गई पहल का परिणाम है। इसकी नेता तथा कार्यकर्ता ग्रामीण महिलाएं है जो अपनी आजीविका के साधन तथा समुदाय को बचाने के लिए कार्य करती है। पुरूष भी सहभागी हैं इनमें से कुछ ने आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया है। चिपको आन्दोलन में सुन्दरलाल बहुगुणा गांधीवादी कार्यकर्ता तथा दार्शनिक भी सम्मिलित हैं जिन्होंने 5000 किलोमीटर की ट्रान्स-हिमालय पदयात्रा 1981-1983 में चिपको सन्देश प्रसारित करने के लिए की थी। बहुगुणा ने चिपको नारा " पारिस्थितिकी ही स्थाई अर्थव्यवस्था है" दिया था। चन्दी प्रसाद भट्ट सबसे पहले चिपको कार्यकर्ता थे जिन्होंने स्थानीय उद्योगों जो कि स्थानीय प्रयोग के लिए वन संपदा के संरक्षण तथा निरन्तर उपयोग पर आधारित थे को बढ़ावा दिया था। धूमसिंह नेगी ने बचनी देवी तथा अन्य कई ग्रामीण महिलाओं के साथ पहले पेड़ों से आलिंगन करके चिपको आलिंगन द्वारा पेड़ों को बचाया था। उन्होंने यह नारा दिया - वन में क्या है मृदा, जल तथा शुद्ध हवा।

5.5.4 चिपको तथा सर्वोदय (Chipko and sarvodaya)

उत्तराखण्ड के लोगों द्वारा सतत विरासत का शांतिपूर्ण प्रतिरोध की समकालीन अभिव्यक्ति ही चिपको आन्दोलन है। स्वतंत्रता के बाद के समय में गांधीवादियों ने 1961 में उत्तराखण्ड सर्वोदय मण्डल संगठित किया था। सर्वोदय आन्दोलन का संगठन निम्नलिखित चार मुख्य मुद्दों के लिए था -

1. महिलाओं को संगठित करना
2. शराब पीने के विरोध में संघर्ष
3. वन अधिकारों के लिए संघर्ष
4. स्थानीय वन आधारित लघु उद्योगों की स्थापना

60 तथा 70 के दशक में यह अनुभव किया गया कि वन निष्कर्षण की पारिस्थितिकीय सीमाएं पहचानी तथा अंकित नहीं की गई थी। पारिस्थितिकीय समस्याओं के दबाव से वे महिलाएं परेशान हो रही थी जो पानी लाने, चारा एकत्रित करने आदि का कार्य करती थी। वनों के संकट की नागरिक प्रतिक्रिया के लिए नौकरशाही सक्षम तथा संवेदनशील

होने के बावजूद भी विकल्प नहीं बन पाई थी। गांधीवादी कार्यकर्ता अपने स्तर की क्रियाओं में धीरे-धीरे परिपक्व हो रहे थे। सम्पूर्ण गढ़वाल हिमाचल में कई वर्षो में चिपको आन्दोलन की सफलता के बहुत से उदाहरण में से कुछ अडवाणी, अमरसर तथा बदियागढी उनको यह समझ आ गया था कि स्थानीय लघु उद्योगों की आपूर्ति की मांगें अब नहीं है तथा वन संसाधन निष्कर्षण पर पारिस्थितिकीय नियंत्रण की नई मांग द्वारा चारे की आपूर्ति की प्रतिज्ञा की गई।

1990 के दशक में तथा बाद में भारत पर्यावरणीय जागरूकता में बहुत अधिक वृद्धि हुई है तथा बहुत से संगठनों ने भी स्वच्छ पर्यावरण के लिए ऐसा ही किया है। इसके परिणामस्वरूप नई दिल्ली में प्रदूषण को रोकने के लिए कानून बनाया गया किंतु उसकी पुर्नबलन क्रिया बहुत कम थी। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अत्यधिक प्रभावित हुई तथा कीमतों में वृद्धि हुई। टिहरी में बांध निर्माण को चिपको आन्दोलनकारी रोकना चाहते थे क्योंकि इससे पेड़ उखाड़े जायेंगे जो बाढ़ का कारण बन सकते हैं। आज अधिकांश राज्य किसान तथा वहां के निवासियों का आदर करते हैं। भविष्य में भी वनों की कटाई रोकने के लिए चिपको आन्दोलनकारी बहुत सक्रिय हैं। उनका आन्दोलन देश के विभिन्न भागों में फैल चुका है तथा भारत तथा विदेश में गांधीवादी आन्दोलन की विचारधारा तथा उत्तराधिकार को प्रमाणित किया है।

5.6 सारांश

अर्थव्यवस्था तथा पारिस्थितिकी एक ही है। विकास तथा पारिस्थितिकी में कोई विरोधाभास नहीं है। वास्तव में चिपको आन्दोलन अपनी इस विचारधारा की प्रबल वकालत करता है कि पारिस्थितिकीय संरक्षण विकास की ओर ले जा सकता है चाहे कितना भी विरोधाभास क्यों न हों। चिपको आन्दोलन का यह दार्शनिक तथा अस्तित्ववादी पक्ष गांधीवादी विचारधारा से बहुत अधिक प्रभावित है तथा गतिमान गांधी का सुन्दर उदाहरण है।

यह अध्याय हमें विकास के पूंजीवादी पक्ष के दोषों के प्रति संवेदी बनाता है तथा सीमान्त, जनजातीय तथा स्थानीय स्वदेशी लोगों के लिए गम्भीर चुनौती को बताता है। यहां सभ्यताओं की प्रगति तनावयुक्त घुमाव है क्योंकि इसमें उन्हीं लोगों के जीवन को खतरा है जिनकी भलाई के लिए यह कार्यक्रम है। नये सामाजिक आन्दोलन संसार के इस भाग में शांति आन्दोलन इस जन्मजात विरोध को अच्छी तरह प्रदर्शित करता है। ये आन्दोलन आधुनिक विकास की समालोचना के उदाहरण है तथा एक जीने योग्य विकल्प भी सुझाते है। फिर भी ये उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण (liberalisation, privatisation and globalization) की तरंगों के द्वारा छोडे गये बलों के आक्रमण से बहुत अधिक आतंकित हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्न

1. चिपको आन्दोलन की विवेचना कीजिए।
2. चिपको आन्दोलन की ऐतिहासिकता का उल्लेख कीजिए।
3. चिपको आन्दोलन के कारण एवं महत्ता पर प्रकाश डालिए।

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लेसली, जैक्स, "डीप वाटर : द एपिक स्ट्रग्ल ओवर डेम्स्, डिसप्लेसड पिपल, एण्ड द एनवायरमेन्ट", पिकाडोर, 2006
2. सिंघवी, संजय, "द रिवर एण्ड लाइफ" अर्थकेयर बुक्स, 2002
3. फिशर, विलियम, "टुवार्डस् सस्टेनेबिल डेवलपमेंट : स्ट्रगलिंग ओवर इण्डियाज नर्मदा रिवर", एम. ई. शार्प, अलबामा।
4. वर्ल्ड कमिशन ऑन डेम्स रिपोर्ट - 2000

इकाई - 8

नर्मदा बचाओ आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 आन्दोलन की पृष्ठभूमि

6.3 डब्ल्यू सी डी रिपोर्ट या विश्व बाँध आयोग प्रतिवेदन

6.4 सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका : बाँध की ऊँचाई का मामला

6.5 नर्मदा बचाओ आन्दोलन या एन.बी.ए.

6.6 सारांश

6.7 अभ्यास प्रश्न

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

6.0 उद्देश्य

यह इकाई नर्मदा बचाओ आन्दोलन से सम्बन्धित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- नर्मदा बचाओ आन्दोलन के प्रयासों, इतिहास, रणनीतियों, सफलताओं और सीमाओं को जान सकेंगे,
- विकास के पूँजीवादी तरीके की नैतिक कमजोरियों का पता चलेगा जो कि सीमान्त आदिवासियों एवं स्थानीय देशी लोगों के लिए खतरनाक चेतावनी है, तथा
- यह एक नव-सामाजिक आन्दोलन है जो विकास का एक नया गाँधीवादी प्रतिमान प्रदर्शित करता है, इसलिए उसके द्वारा सुझाए गए सशक्त सफल व प्रभावी विकल्प जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

नर्मदा बचाओ आन्दोलन (एन.बी.ए.) मूलत: स्वतंत्रता के पश्चात् अपनाए गये हमारे देश के विकास पथ के परिणामों का वर्णन है। यह नर्मदा घाटी में रहने वाले उन लोगों का आन्दोलन है, जो इस विश्वस्तरिय आन्दोलन में अग्रिम पंक्ति में रहते हैं। यह आन्दोलन नर्मदा घाटी में बन रहे बाँध के ही नहीं बल्कि एक विकास प्रतिमान के रूप केन्द्रीकृत, अन्याय, परिस्थितिकीय विनाश, उपभोक्ताम्मुखी जल एवं प्राकृतिक संसाधन प्रबन्ध के भी विरूद्ध है। यह संघर्ष स्पष्टतया उनको मजबूत कर रहा है जो प्रकृति और लोगों के बारे में तथा मानवीय न्याय के बारे में सोचते हैं साथ ही उतना ही उन लोगों के विरूद्ध है जो बाजार आधारित विकास की वेदी पर प्रकृति व लोगों को भेंट चढ़ाने पर आमादा है। यह उदारीकरण, निजीकरण तथा

भूमण्डलीकरण के संदर्भ में ओर भी प्रासंगिक है जहाँ शोषण, बेरोजगारी, विस्थापन, असमानता तो सामान्य प्रघटनाऐं बनती जा रही है।

यह उन नव-सामाजिक आन्दोलनों या अहिंसक शान्ति आन्दोलनों की सफलता की भी कहानी है जो हमारे स्वतंत्रोत्तर विकास योजनाओं की प्रतिक्रियास्वरूप एकाएक भड़के हैं। आज भारत में ये आन्दोलन दो प्रकार है - एक ओर तो वे स्वतंत्र आन्दोलन हैं जो स्वतंत्रता के पश्चात् चुने गए विकास के मार्ग के प्रतिक्रिया स्वरूप भड़के हैं, जिनमें शामिल है - छात्र समूहों द्वारा, महिला संगठनों द्वारा, धार्मिक निकायों द्वारा, पर्यावरणीय कार्यकर्ताओं द्वारा, कलाकारों द्वारा, शिक्षाविदों द्वारा, नागरिक अधिकार कार्यकर्ताओं द्वारा तथा पत्रकारों द्वारा संचालित आन्दोलन शामिल है। दूसरे प्रकार के आन्दोलन 'अहिंसक उपागम' पर आधारित है जो गाँधीवादी परम्परा से सम्बन्धित शान्ति एवं विकास के वैकल्पिक धारणा पर आधारित है। इन दोनों धाराओं में टकरावों की समान गम्भीरता की समानता है। भारत में शान्ति आन्दोलनों के उद्भव के कारण उत्तरी गोलार्द्ध में शान्ति आन्दोलनों के विकास में योगदान देने वाले कारण - आणविक युद्ध का भय से भिन्न है क्योंकि भारत के आम लोगों के लिए शान्ति का अर्थ युद्ध की अनुपस्थिति से कहीं ज्यादा व्यापक है जो दैनिक जीवन में अर्थपूर्ण भी है जैसे - सभ्य आजीविका, उत्पीड़न से स्वतंत्रता, उत्तर जीवितत्ता के लिए संसाधनों की पहुँच, सांस्कृतिक स्वायत्तता एवं राज्य द्वारा हिंसा से स्वायत्तता। भारत में शान्ति आन्दोलन का उद्भव पूर्णतया उस परिप्रेक्ष्य से भिन्न हुआ जो अन्यत्र कहीं मिलते हैं, विशेषकर पश्चिम में। ज्यादातर आन्दोलनों में गाँधीवादी प्रभाव देखा जा सकता है और जो स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान एवं स्वतंत्रता के बाद से उत्पन्न हुए हैं। जैसे - चिपको आन्दोलन, सेवा (SEWA) आन्दोलन, खादी आन्दोलन, भूदान-ग्रामदान आन्दोलन आदि गाँधीवादी दर्शन की पद्धतियों, लक्ष्यों, आव्हानों, पहुँच, सफलता व सामर्थ्य को प्रदर्शित करते हैं।

इनकी अहिंसा और संघर्ष की मुख्य सुभिन्नता से अलग सत्य, सत्याग्रह पर आधारित गाँधीयन चिंतन शासन, विकेन्द्रीकरण, राजनीति की नीतिशास्त्र एवं नैतिकता, शिक्षा, ग्रामीण एवं राष्ट्रीय विकास, स्वायत्तता, स्वैच्छिकतावाद जाति एवं अस्पृश्यता और इससे भी ज्यादा इन जैसे क्षेत्रों में पहुँच बनाये हुए हैं। इसलिए यह समूहों तथा आन्दोलनों के बीच ज्यादा नैतिक एवं सामंजस्यकारी जुड़ाव स्थापित करना चाहते हैं तथा जो केन्द्रीकृत राजनीतिक शक्ति एवं आर्थिक उत्पादन से अलग शान्तिपूर्ण समाज चाहते हैं।

नर्मदा भारत में पाँचवी सबसे बड़ी नदी है और भारतीय प्रायद्वीप की पश्चिम में बहने वाली सबसे बड़ी नदी है। इसके किनारों पर निवास करने वाले लोगों के लिए इसका बड़ा धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी है। इसका वार्षिक प्रवाह लगभग सतुलज, रावी व व्यास नदियों के कुल प्रवाह के बराबर है। यह मध्यप्रदेश में अमरकंटक की मईकला पहाड़ियों से निकलती है। यह पश्चिम की ओर लगभग 1312 किलोमीटर लम्बी बहकर कैम्बे की खाड़ी में गिरती है। इसका प्रथम 1077 कि.मी. विस्तार मध्यप्रदेश में है और अगला 35 कि.मी. विस्तार मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र के राज्यों के बीच सीमा बनाता है। अगला 39 कि.मी. महाराष्ट्र और गुजरात के बीच सीमा रेखा बनाती है तथा अन्त में 161 कि.मी. गुजरात में फैली हुई है। नदी का द्रोणी क्षेत्र 1

लाख वर्ग कि.मी. के लगभग - है। इस नदी के कुल द्रोणी क्षेत्र के 4 प्रतिशत जल का ही उपयोग हो पाता है। ज्यादातर पानी इस प्रायद्वीपीय नदी का समुद्र में बहकर चला जाता है।

यह विश्व में सबसे बड़े नदी विकास साहस (Venture) का केन्द्र, नर्मदा बेली प्रोजेक्ट भी है जहाँ 30 बड़े और 100 छोटे बाँधों के निर्माण की कल्पना की गई है। इनमें दो सबसे बड़े प्रस्तावित बाँध हैं - सरदार सरोवर बाँध और नर्मदा सागर बाँध।

6.2 आन्दोलन की पृष्ठभूमि

व्यापक संभावना के बावजूद स्वतन्त्रता से पूर्व नर्मदा जल संसाधनों के उपयोग का नाममात्र भी प्रयास नहीं हुआ था। नेहरूजी भारत के ऐसे प्रथम प्रधानमंत्री थे जिन्होंने इस नदी के किनारों पर बड़े व बहुद्देश्यीय बाँध बनाने की विचार-दृष्टि बनायी। जल के वितरण एवं क्रियान्वित योजनाओं में अन्तर-राज्यीय मतभेदों के चलते भारत सरकार ने 9 अक्टूबर, 1969 को जल विवादों के न्याय निर्णयन हेतु नर्मदा जल विवाद प्राधिकरण का गठन किया था। प्राधिकरण ने उसको सौंपे गये मामलों की जाँच की और उसके 10 वर्षों के बाद कार्य करना शुरू किया। 12 दिसम्बर, 1979 को प्राधिकरण द्वारा निर्णय दिया जो भारत सरकार द्वारा प्रकाशित किया गया कि - इसके निर्णय को सभी पक्ष मानने को बाध्य है।

प्राधिकरण के निर्णयानुसार 30 बड़े, 135 मध्यम तथा 3000 छोटे बाँधों के निर्माण की स्वीकृति प्राप्त हुई जिसमें सरदार सरोवर बाँध की ऊँचाई बढ़ाना भी शामिल था। विश्व बैंक ने भी पूर्ववर्ती का खूब समर्थन किया। सरदार सरोवर बाँध से गुजरात की भूमि पर सिंचाई करने, सुखा-सम्भाव्य गाँवों व कस्बों में पेयजल की आपूर्ति करने तथा बिजली निर्माण का लक्ष्य रखा गया था। इस बाँध के सम्भावित लाभों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में निम्नलिखित प्रकार से सूचीबद्ध किया गया है -

सिंचाई - गुजरात में 12 जिलों, 62 तालुकों एवं 3393 गाँवों (जो कि सुखा संभाव्य क्षेत्र का 75 प्रतिशत है) में फैली 17920 कि.मी. भूमि पर तथा राजस्थान के बाड़मेर और जालौर जिलों के 730 कि.मी. सूखे क्षेत्र में।

पेयजलापूर्ति - कमाण्ड क्षेत्र के अन्दर और बाहर गुजरात के 8215 गाँवों और 135 शहरी केन्द्रों को। बाढ़ नियंत्रण क्षमता: 6.7 कि.मी., वास्तविक बाढ़ नियंत्रण क्षमता : 5.7 कि.मी., निर्माण के बाद 6,00,000 मानव वर्षो का वार्षिक रोजगार; कच्छ के रण और राजस्थान के मरूस्थल के विस्तार से सुरक्षा, तटवर्ती क्षेत्रों के 300 कि. मी. क्षेत्र के 210 गाँवों जिसमें भरुच शहर और 7,50,000 जनसंख्या शामिल है, की बाढ़ से सुरक्षा करना।

नाल - सरोवर पक्षी अभ्यारण्य, **कच्छ** बस्टर्ड अभ्यारण्य (ग्रेट इण्डियन बस्टर्ड), **वेलवडार** ब्लैक बक सेन्तुरी, कच्छ के छोटे रण में **वाइल्ड एस्स** वन्यजीव अभ्यारण्य, **जस्सौर** स्लोथ बीयर अभ्यारण्य को लाभ; मछली पालन का विकास: कमाण्ड क्षेत्र सभी गाँव टैंक गहरे होंगे जो उनकी क्षमता को बढ़ायेंगे, जल संरक्षण, भूजल स्तर का पुनर्भरण होगा, नहर किनारों के विनिर्माण के लिए आवश्यक जमीन की प्राप्ति से मँहगी जमीनों के अधिग्रहण से बचायेगा, और स्वास्थ्य खतरों को कम करेगा; सम्पूर्ण कमाण्ड क्षेत्र में जटिल संचार तंत्र की सुविधाऐं बढ़ेगी, बाँध के

कारण अतिरिक्त वार्षिक उत्पादन बढ़ेगा; कृषि उत्पादन 9,000,000,000 रूपये, घरेलू जलापूर्ति 1,000,000,000 रूपये, बिजली निर्माण 4,400,000,000 रूपये इस प्रकार कुल 14,000,000,000 रूपये की वृद्धि होगी।

यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि इसने तार्किक रूप से यह प्रतिस्थापित किया है कि - देश में आज विस्थापित जनसंख्या के पुनर्वास के लिए उपलब्ध जमीन उचित रूप से पर्याप्त नहीं है और कम से कम समृद्धता के वर्तमान स्तर की सुनिश्चितता के लिए। यह तथ्य विश्व बैंक द्वारा गठित स्वतन्त्र समीक्षा समिति द्वारा भी बताया गया था। विश्व बैंक आखिरकार इस समिति की अनुशंसाओं द्वारा अपने आपको परियोजना से अलग होने को बाध्य हो गया। इससे भिन्न बाँधों पर विश्व आयोग ने भी बड़े बाँधों के अन्यायों को उजागर किया।

6.3 डब्ल्यू सी डी रिपोर्ट या विश्व बाँध आयोग प्रतिवेदन

इस डब्ल्यू सी डी (World Commission on Dams) प्रतिवेदन ने इस मामलों को स्पष्टतया सिद्ध कर दिया कि पिछली आधी सदी के दौरान जन आन्दोलन का उद्भव हुआ, संघर्ष हुआ। बड़े बांधों की योजना बनती है, उन पर काम होता है और उन्हें वैध ठहराया जाता है। बिना लोगों के संसाधनों के अधिकारों को और विकास योजना को ध्यान में रखें और उनके नीति-निर्माण में सामाजिक तथा पर्यावरणीय प्रभावों के मूल्यांकन का कोई स्थान नहीं होता है।"

यह प्रतिवेदन बताता है कि - "बड़े बाँधों ने 40-80 मिलियन लोगों को उनके घरों व जमीन से हटने को बाध्य किया है जिससे उनको 'कठोर आर्थिक स्थिति, सामुदायिक विखण्डन तथा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं में वृद्धि हुई। देशज, आदिवासी एवं किसान समुदायों को विशेषकर हानि हुई है। जो लोग बाँध के निचली ओर रहते वे बीमारियों से घिरे रहते हैं और जिन संसाधनों पर उनकी आजीविकाऐं टिकी रहती है उन प्राकृतिक संसाधनों की हानि होती है। बिजली और पानी की सेवाओं के संदर्भ में लाभों के विरूद्ध विशेषकर सामाजिक तथा पर्यावरणीय संदर्भ में कई मामलों में लोगों द्वारा कीमत चुकाना प्राय: अस्वीकार और अनावश्यक है। बड़े बाँधों के लाभों, जिनका बड़ा भाग पहले से साधन सम्पन्न लोगों के पास पहुँचता है वहीं समाज के गरीब लोग उसकी लागतों को सहन करते हैं, अनुचित है।"

इसमें कोई संदेह नहीं है कि बाँधों के आर्थिक निष्पादन का विस्तृत मूल्यांकन मिश्रित है और फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि नियोजकों के आर्थिक प्रस्तावों का संस्थापित ढाँचा (सामाजिक-पर्यावरणीय लागतों, जोखिम विश्लेशण एवं उत्तरवर्ती मूल्यांकन को छोड़ देते हैं), सिंचाई और पेयजलापूर्ति का निष्पादन अत्यधिक खराब होता है बजाय नियोजन के, बड़े मामलों में 50 प्रतिशत से भी कम लक्ष्य हासिल होता है, बाँधों का बड़ा प्रतिशत उनके संचालन एवं रखरखाव लागतों की पुन: प्राप्ति में असफल रहा है। डब्ल्यूसीडी की नजर में बड़े सिंचाई बांधों ने अपने लक्ष्यों को हासिल करने में असफल रहें, अपनी लागतों की पुनर्प्राप्ति और सम्भावना से कम लाभ प्राप्त हुए हैं। डब्ल्यूसीडी ज्ञान आधार ने यह भी सुझाया है कि क्रियान्विति के लिए नियोजित समय की तुलना में बड़े बांध परियोजनाओं के निर्माण में देरी प्रवृत्ति महत्त्वपूर्ण रही है।

यह प्रतिवेदन बड़े बाँधों के ऊपर नीति-निर्माण की दोषपूर्ण प्रक्रियाओं पर कई प्रश्न उठाती है क्योंकि इनमें सभी सम्भावित विकल्पों पर विचार नहीं किया जाता है और न ही समग्र सामाजिक और पर्यावरणीय प्रभाव मूल्यांकन किया जाता है और अन्ततः परियोजना प्रभावित लोगों को अधिकारविहीन बनाती है। उपलब्ध सभी विकल्पों पर जोर देती है, इसमें लिखा है कि वर्तमान में कई गैर-बाँध विकल्प भी उपलब्ध है जिसमें माँग-पक्ष प्रबन्धन, आपूर्ति क्षमता एवं नये आपूर्ति विकल्प आदि शामिल है जो जल और ऊर्जा सेवाओं को सुधार और विस्तृत कर सकते हैं और समाज के सभी वर्गों की बढ़ती विकास आवश्यकताओं को पूरा कर सकती है। विकेन्द्रीकृत, छोटे पैमाने वाले विकल्प (छोटी जलीय परियोजना, घरेलू स्तर पर सौर-ऊर्जा व्यवस्थाएँ, वायु एवं बायोमास व्यवस्थाएँ) भी अल्पकाल में बड़े महत्वपूर्ण होते हैं, दीर्घकाल में सम्भाव्य है, जो स्थानीय पुर्नउपयोगी स्त्रोतों पर आधारित होते हैं। यह दुरूस्थ ग्रामीण दुर्गम स्थलों पर जो कि परम्परागत बिजली आपूर्ति संजाल की परिधि से बहुत दूर है, वहाँ बड़े उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

डब्ल्यूसीडी की अनुशंसाऐं समानता, क्षमता, नीति-निर्माण में सहभागिता, संपोषितता एवं उत्तरदायित्वता के मूल्य-तन्त्र परिधि में की गई है जो न केवल बांधों बल्कि जल और ऊर्जा के क्षेत्र में सभी विकल्पों की नई नीति निर्माण प्रक्रिया के लम्बे रास्ते की ओर ले जाती है। डब्ल्यूसीडी का मुख्य योगदान यह है कि यह नीति-निर्माण में लोगों के अधिकारों के लिए प्रयास करती है, आदिवासियों व देशज समुदायों के मामलों में पूर्व संसुचित सहमति के द्वारा तथा जल/ बिजली परियोजना से प्रभावित होने वाली ग्रामीण/शहरी समुदायों के मामलों में प्रयदर्शनीय जन-सहमति के द्वारा/प्रतिवेदन में यह अनुशंसा की गई कि तकनीक का उपयुक्त चुनाव, गैर-परम्परागत विकल्पों को विशेष स्थान उपलब्ध कराने से पहले विकल्प मूल्यांकन करने से ज्यादा समतापूर्ण, संयोजित और इससे भी अधिक प्रभावी विकास होगा।

6.4 सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका : बाँध की ऊँचाई का मामला

फरवरी, 1999 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बाँध की ऊँचाई अधिकतम 80 मीटर से 88 मीटर तक बढ़ाने का निर्णय सुनाया। अक्टूबर, 2000 में पुनः 2:1 के बहुतम के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने सरकार को बाँध की ऊँचाई 9० मीटर तक बढ़ाने की अनुमति प्रदान की। मई, 2002 में नर्मदा कंट्रोल ऑथोरिटी ने बाँध की ऊँचाई 5 मीटर और बढ़ाने को अनुशंसित किया। मार्च, 2004 में इस प्राधिकरण ने इसकी ऊँचाई 110 मीटर तक करने की अनुमति प्रदान कर दी। मार्च, 2006 में नर्मदा कंट्रोल ऑथोरिटी ने बाँध की ऊँचाई 110.69 मीटर से बढ़ाकर 121 .92 मीटर करने की अनुमति दी (यह तब हुआ जब सर्वोच्च न्यायालय ने 2003 में बाँध की ऊँचाई बढ़ाने पर यथास्थिति बनाए रखने के आदेश देने से मना कर दिया था)।

6.5 नर्मदा बचाओ आन्दोलन या एनबीए

नर्मदा बाँध भारत की सबसे विवादित बाँध परियोजना है तथा इसके पर्यावरणीय प्रभाव व शुद्ध लागत और लाभ काफी विवादित हैं। नर्मदा बाँध 1980 के दशक से ही विवाद और संघर्ष का केन्द्र बना हुआ है। नर्मदा बचाओ आन्दोलन (एनबीए) एक जन आन्दोलन है जो 1980 के दशक के मध्य और बाद में लोगों को अपने आप इसके विकास के विरूद्ध लामबद्ध किया। अमीर और गरीब किसानों, कृषि श्रमिकों एवं आदिवासी लोगों, बाँधों द्वारा विस्थापित लोगों के समर्थन ने मुख्य रूप से इस आन्दोलन में जान फूंकी। यह मूल रूप से बाँध के डूब क्षेत्र में आ रहे वृक्षों से जुड़े पर्यावरणीय मामलों पर केन्द्रित रहा। हाल में इसने गरीब नागरिकों को योग्य बनाने के लक्ष्य पर पुनर्केन्द्रित किया विशेषकर उन लोगों के लिए जो विस्थापित हैं, जो सरकार द्वारा पूर्ण पुनर्वास सुविधाएँ चाहते है। यह सारे उपमहाद्वीप में एक बहस छेड़ने में सफल रहा कि विकास के दो मार्गों में से कौन सा बेहतर है - एक तो व्यापक स्तर पर औद्योगिकीकरण के लिए लोगों और पर्यावरण का भारी विदोहन करने पर जोर देता है और दूसरा स्थानीय लोगों और प्रकृति दोनों के साथ छोटे स्तर की गतिविधियों से मिलकर बनी सामंजस्यकारी एकीकृत प्रतिकृति है।

एनबीए ने दावा किया है कि सर्वविदित रूप से यह भारत के संविधान में उपबंधित जीवन के अधिकार, आजीविका का अधिकार तथा अन्य मानवाधिकारों का उल्लंघन है और इसी प्रकार भारत द्वारा अंगीकृत संयुक्त राष्ट्र के चार्टरों, अभिसमय व घोषणाओं, जैसे - आई.एल.ओ. अभिसमय 107, आदिवासी लोगों के संरक्षण के लिए, का भी उल्लंघन है। एन.बी.ए. बाँध के स्थान पर शुष्क खेती तकनीक पर आधारित ऊर्जा एवं जल नीति बनाने, जल संभरण विकास, छोटे बाँधों का निर्माण, पेयजल व सिंचाई की जलोत्थान योजनाऐं और विद्यमान बाँधों की क्षमता व उपयोग में सुधार करने की माँग करती है। नर्मदा परियोजनाऐं असंपोषित विकास का मानवीकरण है। नर्मदा बांध पर एन.बी.ए. की सफलता संपोषितता के लिए महान् विजय होगी तथा गृह-विहीन तथा प्रवासी की स्थिति में रह रहे कई लोगों के लिए राहत की बात होगी।

एन.बी.ए. कार्यकर्ताओं और अनुयायियों को अभी भी निरन्तर रूप से नर्मदा परियोजना की वकालत करने वालों से चुनौती मिल रही है। उदाहरण के लिए यह निश्चित रूप से सिद्ध हो चुका है कि यह परियोजना नदी में औसत वार्षिक आश्रित जल प्रवाह के दिग्भ्रमित आकलन पर आधारित है। उस दौरान यह अनुमान किया गया था कि बांध क्षेत्र में उपलब्ध 75 प्रतिशत जल की मात्रा निर्भरता 27.22 मिलियन एकड़ फीट (MFA) थी। जबकि वास्तविक प्रवाह के आकड़े दिखाते हैं कि इन आकड़ों की जब जाँच की गई तो पिछले 42 वर्षों की उपलब्ध सूचना के विरूद्ध क्योंकि यह आकड़ों 22.69 मिलियन एकड फीट के होना चाहिए, जो कि बताये गये स्तर से 17 प्रतिशत कम है, इसलिए सही नहीं बैठता है। सरदार सरोवर बांध की क्षमता का जो आकलन किया गया वह ऊपरी क्षेत्र के 3500 पुराने बांधों के आधार पर आंकलित किया गया था। इसलिए यह कहना उचित होगा कि यह बांध अपनी प्रस्तावित क्षमता के अनुसार काम करने में सक्षम नहीं होगा।

इस विषय पर हुए लेखन कार्य की छंटनी यह निश्चित करती है कि इस बांध से सृजित बिजली और सिंचाई का लाभ मध्य गुजरात के पूँजीपति किसानों की खेती को मिलेगा। सूखे क्षेत्र के लोगों को नहरों द्वारा सिंचाई का पानी पहुँचाने का कोई काम नहीं किया गया है और न ही अन्त तक कुछ होने की सम्भावना है। सूखे से प्रभावित जिलों में पेयजलापूर्ति का भी कोई वास्तविक योजना उपलब्ध नहीं है।

यह आंकलित किया गया है कि रिजर्व में रखा गया पानी अकेला 6 लाख हैक्टेयर जमीन को पानी देगा जो कि कुल जंगल जमीन के आधे से ज्यादा है। इस क्षेत्रों के जंगलों को 12 क्षेत्रों (Zones) में वर्गीकृत किया गया जो जैव विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है विशेषकर सूखे क्षेत्रों में। लगभग 2 लाख हैक्टेयर कृषि भूमि सम्भवत: डूब क्षेत्र में आ जायेगी। इसमें से ज्यादातर निमार (Nimar) से है जो देश की प्राचीन और सबसे उर्वर कृषि क्षेत्र है। नर्मदा सागर के निर्माण से मोटे तौर पर 91,000 एकड़ जमीन डूब में आयेगी जो अच्छी उर्वर जमीन का आधा हिस्सा है। घटनावश केवल 1.23 लाख एकड़ जमीन की ही सिंचाई होगी। अब दसो हजारों लोग इन जंगलों और कृषि भूमि पर रहते हैं। यह आकलन किया गया कि 1 लाख लोग 245 गांवों में रहते हैं जो डूब से प्रभावित होंगे। इनके अतिरिक्त लगभग 1,40,000 किसानों पर नहरों के निर्माण से प्रभावित होने की सम्भावना है क्योंकि 75,000 किमी. लम्बी नहर संजाल के लिए 73,000 हैक्टेयर जमीन की जरूरत होती है। कई हजारों मछुआरे जो बाँध के निचले तल में रहते हैं वे भी गम्भीर रूप से प्रभावित होंगे। यहाँ कोई सरकारी सर्वे या मूल्यांकन नहीं है जो यह बतायें कि डूब क्षेत्र के बाहर के कितने लोग प्रभावित होंगे।

ऐसी अस्थिरता से प्रभावित लोगों में ज्यादातर संख्या में किसान व खेतीहर श्रमिक शामिल हैं, हालांकि उनमें अप्रतिरोध्य बहुमत नृजातीय लोगों का है। इस 'आदिवासी' धारणा की व्याख्या करना कठिन है : प्रचालनात्मक बचाव के लिए हमें इस साधन को अपनाना होगा जिन समुदायों में आन्तरिक स्तरीकरण बहुत कम पाया जाता है। स्तरीकरण के ऐसे सीमित उच्चतर के लिए सबसे अधिक तार्किक आधार बहुत सीमित आरक्षित आधार है, जो कि बहुत कम संचेय योग्य अतिरेक की अनुमति देता है। उनमें से ज्यादातर आदिम कृषि पर निर्भर रहते हैं, वन्य उत्पाद इकट्ठा करते हैं और जंगल में जीवित पशुओं को चराते हैं। उनमें वाणिज्यीकरण का स्तर बहुत न्यून होता है। इन लोगों (ज्यादातर भील और भीलान्) ने सम्पूर्ण इतिहास में अपने जंगलों और पहाड़ियों पर अपना कब्जा जमाए रखने हेतु निरन्तर संघर्ष किया। यह संघर्ष उनकी पहचान और जमीन के प्रति उनके मजबूत लगाव दोनों को आकार प्रदान करता है। शायद ही कोई उनसे बेहतर जंगलों और जमीन के उपयोग के सम्भाव्य उपयोगों, उत्पादों व पद्धतियों को समझ सकेगा।

आदिवासी लोग अपना ज्यादातर समय अपने गाँव और जंगलों के चारों ओर ही बिताते हैं वे मौसमी आधार पर फसल करने और कुछ नकद प्राप्त करने के लिए पड़ोसी किसानी गाँवों में जाते हैं। वह जमीन जिस पर आदिवासी उनकी आदिम खेती करते हैं, सामान्यतया वन्य भूमियों के रूप में वर्गीकृत की जाती है, जो तकनीकी रूप से खेती के लिए उपलब्ध नहीं होती है लेकिन जो अनादिकाल से आदिवासियों द्वारा प्रयोग में ली जाती है। इन आदिवासियों को इन

जमीनों के लिए हक देने से इन्कार कर दिया गया है और घुसपैठियों द्वारा हथिया ली गई है और यह वन अधिकारियों द्वारा आवधिक अवैध आहरण के लिए विचाराधीन है। इन किसानों के गाँव, सामान्यतया ऊर्वर घाटियों में बसे हुए हैं, विविध पदसोपान क्रमित जातियों में वर्गीकृत है, कुछ को भूमिहीन अछूत जाति बहिष्कृत श्रेणी में धकेल दिया गया है। इन किसानों में कुछ बहुत धनी है जो बाजार के लिए उत्पादन करते हैं, जो आधुनिक मशीनों और मजदूरी पर लोगों से काम करवाते हैं। शेष किसान मध्यम और छोटे कृषक हैं। धनी किसानों के पास सम्भवतया बड़ी जोते हैं लेकिन बड़ी सामन्ती भूमि जोते दुर्लभ ही मिलती है। जैसा कि पूर्वोक्त में कहा गया है कि वे आदिवासियों और दलितों से बिना मजदूरी चुकाए काम करवाते हैं। सरकार द्वारा उनको देय क्षतिपूर्ति राशि बड़ी असमान है केवल जो पहले ही अपनी जमीन के मालिक हैं और अपना हक दिखा सकते हैं वे ही जमीन क्षतिपूर्ति पाने के हकदार हैं। इस प्रकार दलित श्रमिकों और आदिवासी घुसपैठिये किसी भी भूमि की क्षतिपूर्ति के हकदार नहीं थे (हालांकि गुजरात ने उन सभी को जमीन देने का वचन दिया है जो अपना हक नहीं भी दिखा सकते हैं)। उन लोगों में, जो डूब से भयभीत है, ज्यादातर आदिवासी हैं और इस प्रकार इस सम्पूर्ण मामले में आदिवासी केन्द्रीय मुद्दा है। इस बाँध से पहली चुनौती जंगल का डूबना है। यही (जंगल ही) आदिवासियों के घर है और जब यह अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँचेगा तब आगे के उच्च क्षेत्र की भूमि भी डूब क्षेत्र में आ जायेगी। यहाँ कुछ सुझाव दिये जा रहे हैं कि -बाँध की ऊँचाई कम की जाए ताकि डूब क्षेत्र को कम किया जा सके। लेकिन यह बहुत ही कम संभावना है कि केवल किसानों के गाँवों को बचाया जा सकेगा और चाहे जो भी ऊँचाई बाँध की हो, आदिवासी बस्तियाँ डूब जायेगी।

उद्योगों को बिजली तथा पूँजीपतियों के खेतों को जल उपलब्ध कराने के उद्देश्य से निर्मित बाँध से लोगों का विस्थानित होना कई संगत प्रश्न उठाता है। इन लोगों का जीवन व संस्कृति उन पहाड़ियों व जंगलों से अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है, जहाँ वे रहते हैं। जमीन द्वारा सौंपे गये संसाधनों का वे कुशलतापूर्वक और संपोषित तरीके से उपयोग करते हैं और वे अर्द्ध-बुजुर्वा जनता द्वारा अन्य कई सहन किये जा रहे उत्पीड़न के रूपों से बेखबर हैं। उनको इस वातावरण से हटाना जो कि उनके अस्तित्व के लिए जरूरी है, उनकी आजीविका के साधनों को नष्ट करने के समान है। बेशक उन्हें अन्यत्र कहीं जमीन दे दी जाएगी (यह भी ध्यान रहे कि ज्यादातर बेदखली आदिवासी भूमि क्षतिपूर्ति के हकदार नहीं हैं क्योंकि इस रूप में जिस जमीन को जोतते थे, वे उसके हकदार ही नहीं रहे हैं। लेकिन (क) यह उनके समुदायों को बिखेर देगा ताकि उनकी पहचानें और सामुदायिक जीवन भी चकनाचूर हो जायेगा। (ख) वे अपने को ऐसे समुदायों के बीच पायेंगे जो कि उनके प्रति शत्रु भाव रखते हैं और जो उनकी जमीन को हड़पने के तरीके अपनाते हैं। (ग) उनको कृषि क्षेत्रों में विस्थापन भी असहनीय है क्योंकि उनके पास उस जमीन को वन भूमि के समान उपजाऊ बनाने का कौशल ही नहीं होता है। अन्तत: वे उस जमीन को छोड़कर अपने आपको भूमिहीन श्रमिकों में रूपान्तरित कर लेंगे। अन्य शब्दों में वे उनकी धनी पैतृक भूमियों और संसाधनों को बेच देंगे और दिहाड़ी श्रमिकों में बदल जायेंगे। मूलत: यह पूँजी के आदिम संचयन का एक सबसे असभ्य तरीका है जिसका मार्क्स ने पूँजी के

तीसरे संस्करण में व्याख्या की। इस दौरान वे डूब में आने वाले गाँवों के आदिवासियों व उच्च जाति के किसानों के भाग्य में भागीदार होंगे। यहाँ लोगों के स्व-निर्धारण के अधिकार और उनकी सांस्कृतिक पहचान के अधिकार सम्बन्धी आदिवासी प्रश्नों के कई अतिरिक्त आयाम उठते हैं। पुनर्वासित लोगों सम्बन्धी कई अध्ययनों ने यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट किया है कि पुनर्वासित लोग उनके स्थान परिवर्तन के शीघ्र बाद ही कठोर वंचन की स्थितियों में रूपान्तरित हो जाते हैं। देश के आदिवासी लोग, समृद्धशाली भूमियों (जंगलों और खनिज समृद्ध भूमियों) के कुछ भाग के संरक्षक के रूप में है, पर अपनी भूमि को बिना पर्याप्त क्षतिपूर्ति के बँटवारे का या उनके संसाधनों के विदोहन के लाभों के बंटवारे का निरन्तर दबाव बना हुआ है। यह संघर्ष मध्य भारत को छोड़कर शेष भाग में प्राय: पूरा हो गया है जहाँ खनन निगमों और वन विभाग ने पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया है।

भविष्य की एक आशा लोगों द्वारा उनके अधिकारों के लिए प्रयास करने में तथा उनके संसाधनों के नियंत्रण करने में और शासित संभ्रान्तों द्वारा उनको हथिया लेने के विरूद्ध जीवित रहने में है। यह इस लक्ष्य की ओर झुका है कि बड़े बाँधों के विरूद्ध संघर्षो और नर्मदा तथा अन्य नदी घाटियों में प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के साथ स्व-आश्रित पुनर्निर्माण का जारी रखना।

6.6 सारांश

सम्पूर्ण संसार जल के लिए संघर्षरत है और तार्किक रूप से यह घोषित भी हो चुका है कि यदि 20वीं सदी तेल-संकट की रही थी तो अब 21वीं सदी जल-संकट की सदी बनना निश्चित है।

एनबीए वर्तमान समय के इसी सत्य की कतार का प्रतिनिधित्व करता है। नर्मदा बाँध की कहानी नर्मदा के जल के वितरण को लेकर अन्तर-राज्य मतभेदों से भड़का लेकिन शीघ्र ही यह विकास बनाम विनाश के मुद्दे की ओर रूपान्तरित हो गया अर्थात् क्या बाँधों का विकास स्थानीय व देशज लोगों के जीवन, आशाओं, अभिलाषाओं के विनाश की कीमत पर किया जा सकता है? यह नर्मदा परियोजना हजारों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली विश्व की सबसे बड़ी घटना बन गई तथा जब से उदारीकरण, निजीकरण व भूमण्डलीकरण विकासशील राष्ट्रों के लिए प्रासंगिक बन गये हैं तब से इसने अन्तर्राष्ट्रीय आयामों का रूप ले लिया है। एनबीए संघर्ष प्रतिरोध का विशेष प्रकार का उदाहरण बन गया जो नव-पूँजीवादी ताकतों के विकास प्रतिमान द्वारा निर्मित राक्षसी अभिकल्पनाओं को सीमान्ती शक्तियाँ चुनौती दे रही है। लेकिन सबसे ऊपर एनबीए संघर्ष गाँधीवादी अहिंसक संघर्ष निवारण तकनीकों की सफलता की कहानी को भी बयान करती है जो कि विकास के नव-पूँजीवादी मार्ग की बढ़ती पकड़ के साथ ज्यादा प्रासंगिक बनता जा रहा है।

आमरण अनशन, भूख हड़ताल, आमजन गिरफ्तारियाँ, न्यायालयों द्वारा बन्दी बनाना, (पोल-खोल) यात्राएँ, पदयात्राएँ, बड़ी-बड़ी रैलियों का आयोजन, भूमि अधिकार सत्याग्रह, लोगों की मोर्चाबन्दी आदि कुछ तकनीकों का प्रयोग एनबीए के स्वयंसेवकों (Volunteers) एवं कार्यकर्ताओं द्वारा सफलतापूर्वक किया गया। उनकी सफलता के ग्राफ को नर्मदा परियोजना को रोकने में

असफल रहने से आंकलित नहीं करना चाहिए बल्कि वास्तविकता यह है कि उन्होंने पद्दलितों और विस्थापितों के लिए उनका योगदान बड़ा जबरदस्त रहा जो इस प्रकार है :-

1. इसमें बिना किसी संदेह के यह सिद्ध किया कि सेंक्सेक्स आधारित विकास उपागम ढोंग (Farce) मात्र है।

2. इसने दिखाया कि बाँध भी जीवन को तबाह करते हैं, इस सम्बन्ध में सहायता और पुनर्वास सम्बन्धी उचित नीतियों व उनके क्रियान्वयन के अभाव में।

3. इसने अहिंसा और सत्याग्रह पर आधारित गाँधीवादी अहिंसक संघर्ष-निवारण तकनीकों की क्षमता को तथा उनकी गरीब और शोषितों के सशक्त हथियार के रूप में सम्भाव्यता को पूरी दुनिया को प्रदर्शित किया।

इस विचार से हम पूर्णतया सहमत हो सकते हैं कि "एनबीए ने सरदार सरोवर और नर्मदा पर अन्य परियोजनाओं के पर्यावरणीय, पुनर्वास तथा सहायता सम्बन्धी पहलुओं के बारे में उच्चस्तरीय जागरूकता सृजित कर देश को एक सम्राट के अंगरक्षक की तरह सेवा प्रस्तुत की है।"

6.7 अभ्यास प्रश्न

1. नर्मदा बचाओ आन्दोलन का विस्तार से वर्णन कीजिए। इसके कार्यक्रम, इतिहास, रणनीतियाँ, सफलताएँ व सीमाएँ क्या-क्या हैं?
2. नर्मदा बचाओ आन्दोलन के प्रकाश में भारत में नव-सामाजिक आन्दोलनों की स्थिति का मूल्यांकन कीजिए।
3. विकास रणनीतियों के बारे में आपके क्या विचार हैं, भूमण्डलीकरण के दौर, जो कि सम्पूर्ण दुनिया में फैल चुका है, जिसका विशेषकर विकासशील देश सामना कर रहे हैं, भारत को इस दौर में कौन सी रणनीति को अपनाना चाहिए?

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लेसली, जैक्स, "डीप वाटर : द एपिक स्ट्रग्ल ओवर डेम्स, डिसप्लेसड पिपल एण्ड द इनवायरन्मेंट", पिकाडोर, 2006.
2. सिंघवी, संजय, "द रिवर एण्ड लाइफ", अर्थकेयर बुक्स, 2002.
3. फिशर, विलियम, "टुवार्डसू सस्टेनेबिल डेवलपमेंट : स्ट्रगलिंग ओवर इण्डियाज नर्मदा रिवर", एम.ई. शार्प, अलबामा।
4. वर्ल्ड कमिशन ऑन डेम्स रिपोर्ट - 2000.

इकाई-7

अमेरिका में नागरिक आंदोलन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 आन्दोलन का इतिहास
7.3 नागरिक अधिकार आन्दोलन : विविध चरण
7.4 आन्दोलन की मुख्य घटनाऐं
 7.4.1 ब्राउन एण्ड बोर्ड ऑफ एजुकेशन, 1954
 7.4.2 रोजा पार्क्स एण्ड द मॉण्टगोमरी बस बायकॉट 1955-56
 7.4.3 धरने-प्रदर्शन
 7.4.4 फ्रीडम राईडर्स
 7.4.5 मिसीसिपी में नये संगठन का गठन
 7.4.6 अलबानी आन्दोलन, 1961 - 1967
 7.4.7 बर्मिंघम अभियान, 1963- 1964
 7.4.8 सेल्मा और मताधिकार अधिनियम, 1965
7.5 आन्दोलन के विविध चरणों की वास्तविक उपलब्धियाँ
7.6 सारांश
7.7 अभ्यास प्रश्न
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

यह इकाई ' संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आन्दोलन ' से सम्बन्धित है। इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

- गोरे लोगों द्वारा काले लोगों के प्रति भेदभाव के विभिन्न मुद्दों से अवगत होंगे.
- अमेरिका में अलग-अलग समयों पर अलग-अलग आन्दोलनों में भिन्न-भिन्न अहिंसक एवं व्यवस्थित उपगम के प्रयोग का अध्ययन कर सकेंगे, तथा
- अहिंसक तरीके से नागरिक अधिकार आन्दोलन का विश्लेषण कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी दक्षिणी राज्यों की परम्पराओं और राज्य के कानूनों द्वारा सम्मिलित रूप से काले लोगों (निग्रो) को गोरे लोगों से होटलों, रेस्टोरेन्टों, स्कूलों, आवास, मैदानों और उद्यानों के प्रयोग, रेलवे स्टेशनों के प्रतीक्षालयों, ट्रेनों में, बसों में, स्ट्रीट कारों एवं सार्वजनिक सुविधाओं के सभी रूपों के सम्बन्ध में अलग व्यवहार किया जाता था। इन

राज्यों में बहुत से स्थानों पर निग्रो को न तो मताधिकार प्राप्त था और न ही अभी तक है। जब तक भेदभाव समाप्त नहीं हुए तब तक निग्रो लोगों ने बिना इरादे के श्वेतों के विरूद्ध आन्दोलन किए। प्राय: निग्रो को गिरफ्तार किया जाता और उन्हें अवैध तरीके से दण्डित किया जाता। इस प्रयास के पीछे वास्तविक कारण गोरों का स्वयं को उत्तम स्थिति और शक्तिशाली समझने का दंभ था। यह सब इस तथ्य का परिणाम था कि निग्रो लोग उन राज्यों के कुछ हिस्सों में गोरे लोगों के लिए बंधुआ मजदूरों के रूप में पूर्व में दास रहे थे। गोरे लोगों की अपनी सर्वोच्चता का विचार इसी आधार पर टिका हुआ था।

7.2 आन्दोलन का इतिहास

गोरे लोगों द्वारा काले लोगों के साथ जो भेदभावपूर्ण व्यवहार किया उससे धीरे-धीरे निग्रो लोगों में अपने शोषण को लेकर चेतना उत्पन्न होने लगी। अच्छी शैक्षणिक सुविधाओं और सभी प्रकार के विकास के कारण विभिन्न क्षेत्रों में निग्रो धीरे-धीरे अपने अधिकारों के बारे में चिन्तित होने लगे। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान निग्रो रेजीमेंट ने बहुत अच्छा प्रयास किया था। वे गोरे लोगों की सभ्यता के लिए पीड़ा सहने और मरने के लिए तत्पर रहते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध में निग्रो लोगों को गोरे के साथ कुछ कम्पनियों व रेजीमेंटों में एकीकृत किया गया और वायु सेवा में पायलेटों के रूप में प्रवेश दिया गया तथा पुन: उन्होंने उम्दा प्रदर्शन का परिचय दिया। लेकिन युद्ध के पश्चात् जब वे आम जीवन में आये तो पुन: उनके साथ दूसरे दर्जे के नागरिक रूप में व्यवहार किया जाने लगा। स्वभावत: वे अपने को युद्ध बलि के रूप में पहचाने जाने की परवाह नहीं करते थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपने इस तरह के अपमानों का प्रखर रूप से विरोध किया लेकिन बहुसंख्यक निग्रो उनके अधिकारों के प्रयासों के लिए निरूत्साही और अनिच्छुक थे। हालांकि सन् 1954 में संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी स्कूलों में इस तरह के भेदभाव को असंवैधानिक ठहराया और उसे रोकने को कहा हालांकि इसके लिए बदलाव में बहुत समय लगा।

19वीं सदी के अन्तिम दशक में डमोक्रेटो के द्वारा नियंत्रित राज्यों, मुख्यत: दक्षिणी राज्यों में, प्रजातीय विभेदकारी कानूनों को पारित किया गया जैसे कि 1870 से 1915 के दौरान दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले भारतीयों के मामलों में किया गया था। दक्षिण में, लेकिन संयुक्त राज्य अमेरिका में तथा अन्य कहीं भी प्रजातीय हिंसा हुई। इस युग को कभी-कभी अमेरिकी प्रजाति सम्बन्धों का अधोबिन्दु (The nadir of American Race Relations)" के रूप में उल्लेख किया गया। निर्वाचित, नियुक्त या उत्तराधिकारी सरकारी अधिकारियों ने भेदभाव को चाहा या अनुमति दी विशेषकर - टेक्सास, लुसियाना मीसीसिपी अल्बामा, जार्जिया, फ्लोरिडा, साऊथ केरोलिना, नॉर्थ केरोलिना, वर्जिनिया, अटलांटा, टेनेसी, ऑक्लहोमा कैंसास राज्यों में। अफ्रीकी अमेरिकों के विरूद्ध भेदभाव की कार्यवाहियों को चार श्रेणियों के रूप में वर्गीकृत किया गया - प्रजातीय भेदभाव, मतदान का उत्पीड़न तथा हिंसा के निजी कार्य एवं आम प्रजातीय हिंसा, आर्थिक अवसरों को नकारना।

दक्षिणी राज्यों में खुले प्रजातीय कानूनों, भेदभाव के सार्वजनिक एवं निजी कार्यो, सीमान्त आर्थिक अवसर एवं प्रजातीय हिंसा के संयोजन को 'जिम क्रो' (Jim Crow) के नाम से जाना जाने लगा। यह दक्षिणी ' जिम क्रो' की कानूनी व्यवस्था 1950 के दशक के आरम्भ तक पूर्णरूपेण बनी रही और व्यापक उत्प्रवास को बढ़ावा दिया। हालांकि दक्षिणी राज्यों से उत्तरी अमेरिकी राज्यों की स्थिति सामान्यत: ठीक थी लेकिन वह भी प्रशंसनीय नहीं थी।

7.3 नागरिक अधिकार आन्दोलन : विविध चरण

1955 से पूर्व नागरिक अधिकार आन्दोलन ने अफ्रीकी-अमेरिकीयों के विरूद्ध भेदभाव का विविध रणनीतियों के साथ सामना किया। इनमें शामिल थे - याचनाऐं एवं लाबिंग के प्रयास जो परम्परागत संगठनों, जैसे - नेशनल एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ कलर्ड पिपल (NAACP), द्वारा किए गए थे। इन प्रयासों की सबसे बड़ी उपलब्धि ब्राउन बनाम बोर्ड ऑफ एजुकेशन (1954) के मामले में कानूनी विजय थी जिसने प्लेस्सी (Plessy) से उत्पन्न कानून मत " पृथक् लेकिन समान " (Separate but equal) को उलट दिया और पार्थक्यता (Segeregation) को कानूनी रूप से अनुज्ञेय बनाया लेकिन इसमें व्यावहारिक उपचार उपलब्ध नहीं करवाये। निजी नागरिक समानान्तर रूप से ब्राउन की विजय से अनुप्राणित हुए लेकिन वे इसकी तत्काल व्यावहारिक प्रभाव की कमी से असंतुष्ट हुए। धीरे-धीरे चढ़ाव क्रम और कानूनी उपागमों को प्रजातीय पार्थक्य और मतदाता उत्पीड़न के समर्थकों द्वारा संचालित व्यापक प्रतिरोध के सामने अपार्थक्यता (Desegeregation) के सम्पादन के प्राथमिक यंत्र के रूप में नकारा गया। इस चुनौती के सामने उन्होंने प्रत्यक्ष कार्यवाही और अहिंसक प्रतिरोध की सम्मिश्रित रणनीति को अपनाया जो सविनय अवज्ञा के रूप में जानी जाती है। सविनय अवज्ञा की कार्यवाहियों ने उसके कार्यकर्ताओं और सरकारी सत्ताओं के बीच संकटमयी स्थितियों को उत्पन्न कर दिया। प्राय: संघ, राज्य और स्थानीय सरकारों के इन पदाधिकारियों ने संकटकालीन परिस्थितियों से निपटने हेतु तात्कालिक कदम उठाये और इसके परिणाम प्राय: कार्यकर्ताओं के पक्ष में आये थे। इस आन्दोलन ने जिन विविध पद्धतियों को अपनाया था, वे हैं -

- सविनय अवज्ञा के रूप में नागरिक अधिकार आन्दोलन
- बायकॉट के रूप में नागरिक अधिकार आन्दोलन, जो मॉटगोमरी बस बायकॉट (1955-1956) के साथ सफलतापूर्वक अल्बामा से शुरू हुआ।
- धरनों (sit-ins) के रूप में नागरिक अधिकार आन्दोलन जो नॉथ केरोलिना में प्रभावी ग्रीनसबॉरो धरना (1960) के रूप में सामने आया।
- अभियानों (Marches) के रूप में नागरिक अधिकार आन्दोलन. जो सेलमा से अल्बामा के मॉटगोमरी अभियान (1965) के रूप में हुआ।

7.4 आन्दोलन की मुख्य घटनाऐं

7.4.1 ब्राउन बनाम बोर्ड ऑफ एजुकेशन, 1954

17 मई, 1954 को अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने ब्राउन बनान् बोर्ड ऑफ एजुकेशन ऑफ टोपेका ' (टोपेका केंसास का शहर है) के मामले में अपना निर्णय सुनाया जिसमें याची ने यह आरोप लगाया था कि सार्वजनिक स्कूलों में काले लोगों के बच्चों को गोरे लोगों के बच्चों से अलग शिक्षा देना असंवैधानिक है। इस पर न्यायालय ने सर्वसम्मति से निर्णय सुनाते हुए कहा कि " सार्वजनिक स्कूलों में काले और गोरे बच्चों के बीच पार्थक्यता अन्तत: काले बच्चों के ऊपर अधिक निर्धारक प्रभाव छोड़ता है। इसका प्रभाव तब और व्यापक हो जाता है जब इसे कानून द्वारा मान्यता प्राप्त हो। नीतिगत स्तर पर इस तरह का प्रजातीय भेदभाव निग्रो लोगों की निम्नतम स्थिति की ओर संकेत करता है। " न्यायालय का यह फैसला प्लेस्सी बनाम् फर्ग्यूसन (1896) " , जिसमें - ' पृथक् लेकिन समान' की नीति को अपनाया था, और क्यूमिंग बनाम् रिचमॉण्ड कॉउण्टी बोर्ड ऑफ एजुकेशन (1899) के मामले में स्कूलों के जिन प्रतिमानों को अपनाया गया उनको अवैध करार दिया। आगामी वर्षो में ब्राउन-II मामले में न्यायालय ने पार्थक्यता की नीति को चरणबद्ध तरीके से समाप्त करने पर जोर दिया।

7.4.2 रोजा पॉक्र्स एण्ड द मॉण्टगोमरी बस बायकॉट, 1955-56

अल्बामा के मॉण्टगोमरी में प्रजातीय पार्थक्य निरन्तर जारी था। बसों में आगे की सीटों की चार पंक्तियाँ गोरे लोगों के लिए तथा सैद्धान्तिक तौर पर पीछे की सीटों की तीन पंक्तियाँ काले लोगों के लिए आरक्षित होती थी लेकिन जब बस में गोरे व्यक्ति को सीट नहीं मिलती तो काले लोगों को बस चालक के निर्देश (कभी सादगी से लेकिन प्राय: भद्र तरीके से) पर खड़ा होना पड़ता था और वह तब तक खड़े रहते जब तक गोरा व्यक्ति उसकी सीट पर बैठा रहता था।

1 दिसम्बर, 1955 को जब श्रीमती रोजा पाक्र्स अपने कार्यालय से बस में सवार होकर घर लौट रही थी तब ही कुछ गोरे लोग उस बस में सवार हुए लेकिन बस भरी हुई थी, इसलिए बस चालक ने श्रीमती पाक्र्स सहित तीन अन्य निग्रो को गोरे लोगों को सीट देने का निर्देश दिया। इस पर तीन नीग्रो ने तो बस चालक का आदेश माना लेकिन रोजा ने इससे पूर्णतया इन्कार कर दिया। बस चालक ने पुलिस को बुलाया और उसे शहर के पार्थक्य अध्यादेश के उल्लंघन के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। वह बहुत ही सौम्य व सुशील तथा सहज स्वभाव वाली महिला थी। वह निग्रो समुदाय का बहुत सम्मान करती थी। उसे निग्रो के साथ अपमानजनक व्यवहार ज्यादा समय तक बर्दास्त नहीं हो सकता था। उसकी गिरफ्तारी ने निग्रो समुदाय में एक उत्प्रेरण का कार्य किया। निग्रो समुदाय के लोग उसकी गिरफ्तारी का प्रतिरोध करने को एकत्र हुए। ई.डी. निक्सन सहित कई निग्रो नेता तथा चर्च के पादरियों व सभी निग्रो ने अहिंसक तरीके से सभी बसों का बहिष्कार करने को सहमत हुए। इनकी एक बैठक आयोजित की गई जिसमें निर्णय हुआ कि मॉण्टगोमरी के सभी निग्रो समुदाय 5 दिसम्बर, सोमवार को कार्य स्थलों, कस्बों, स्कूलों व अन्य स्थलों पर जाने के लिए बस की सवारी नहीं करेंगे और

सोमवार को शाम 7 बजे बैठक में आये आगामी निर्देशों के लिए।" ये निग्रो पादरी उनकी बैठक रविवार को करने के लिए सहमत हुए। शुरूआत में इस आन्दोलन का नेतृत्व निग्रो पादरियों के हाथों में रहा। सभी समाचार पत्रों में यह खबर छपी और इससे यह खबर सम्पूर्ण निग्रो समुदाय में आग की तरह फैल गई।

यह बायकॉट पूर्णतया सफल रहा। उस दिन 50 हजार निग्रो में से एक ने भी बसों में यात्रा नहीं की। उसी दिन श्रीमती पॉर्क्स को न्यायालय में पेश किया गया और 10 डालर का जुर्माना किया गया। उसने उच्चतम न्यायालय में निर्णय के विरूद्ध अपील की। उस रात की बड़ी बैठक में चर्च ठसाठस भर गया तय समय से ढाई घंटे पूर्व ही सभी लोग आ गये। उनकी उपस्थिति में सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ कि बायकॉट तब तक जारी रहेगा जब तक कि -

- बस ऑपरेटरों द्वारा सादगीपूर्ण व्यवहार की गारन्टी नहीं दे दी जाती,
- यात्रियों को सीटों का बंटवारा 'पहले आओ पहले पाओ' के आधार पर नहीं कर दिया जाता,
- निग्रो बस मार्गो पर निग्रो बस ऑपरेटरों द्वारा निग्रो को ही काम पर लगाये।

उन्होंने प्रत्यक्ष कार्यवाही हेतु मॉण्टगोमरी इम्प्रुवमेंट एसोसिएशन (MIA) नाम प्रतिरोध संगठन का निर्माण किया। उन्होंने इसके अध्यक्ष के रूप में एक युवा, उच्च शिक्षा प्राप्त निग्रो पादरी - मार्टिन लुथर किंग (जुनियर) को चुना, जो सामाजिक समस्याओं को ईमानदारी से निपटाता था और थोरो, गाँधी आदि की शिक्षाओं से प्रभावित था। एम.आई.ए. के ज्यादातर नेता पादरी ही थे, वे भी सभी निग्रो, केवल राबर्ट ग्रेट्ज जो कि एक निग्रो चर्च का गोरा पादरी था, वही शहर में अकेला गोरा पादरी था, जिसने संगठित प्रतिरोध के प्रति सहानुभूति जतायी।

इसके अतिरिक्त नेताओं ने तेजी से यातायात, एवं रणनीति के लिए कई समितियों का गठन किया, आम बैठकों के लिए एक कार्यक्रम समिति का गठन किया गया और एक कार्यकारिणी समिति भी। यातायात समिति ने सबसे पहले एक निग्रो टैक्सी सर्विस का गठन किया, लेकिन कानूनी अड़चन के कारण बाद में एक कार-पूल का निर्माण किया और अन्त में उसमें स्टेशन वैगन्स को जोड़ा गया।

इससे भी ज्यादा, आम बैठकों में, जो निग्रो चर्चों में घुमते हुए क्रम सप्ताह में दो बार होती थी, हमेशा भीड़ रहती, उसमें लाउडस्पीकर का प्रयोग किया जाता ताकि सभी लोगों को चर्चा सुनाई दे सके। प्रार्थनाओं, धर्म ग्रंथों के अध्ययन जैसे कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता। लोगों में बहुत उत्साह था। डॉ. किंग और अन्य नेताओं ने रात-रात भर लोगों को आन्दोलन के दर्शन व पद्धतियों के बारे में समझाते थे। यह ईसामसीह के प्रेम के नीतिशास्त्र और गाँधी के अहिंसक प्रतिरोध का एक सम्मिश्रण था। डॉ. किंग ने इसकी प्रभावशीलता, क्षमता और अनुप्रयोगों को विस्तार से बताया प्रेम और अहिंसा की मौलिक महत्ता पर जोर दिया। पद्धति को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने असम्भव स्थितियों में भी काम करने को कहा जहाँ चाहे जितनी भी हिंसा उनके विरूद्ध क्यों न प्रयुक्त हो और ऐसी स्थितियों में कैसा व्यवहार करना है, यह भी बताया।

यह बहिष्कार प्रभावी, पूर्ण तथा सहासी सिद्ध हुआ। द सिटी काऊंसिल ने इस बहिष्कार को तोड़ने के लिए निग्रो कार चालकों को सभी प्रकार के बहानों द्वारा गिरफ्तार किया गया। बीमा कम्पनियों पर निग्रो कारों के बीमा को निरस्त करने का दबाव डाला गया। समाचार पत्रों के माध्यम से निग्रो समुदाय के नेताओं के विरूद्ध दुष्प्रचार को बढ़ावा दिया गया। निग्रो नेता डॉ. किंग को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। निग्रो नेताओं को टेलीफोन कर धमकाया गया। 30 जनवरी, 1956 को डॉ. किंग के घर पर बम डाला गया। भाग्यवश सम्पत्ति व जानमाल की कोई खास हानि नहीं हुई। एक बड़ी हिंसक व गुस्सेल भीड़ निग्रो लोगों की तेजी से एकत्र हुई। लेकिन डॉ. किंग ने उन्हें शान्त रहने को कहा और आगे यह भी कहा कि "प्रति हिंसा द्वारा समस्याओं का समाधान नहीं कर सकतेकृ हमें घृणा को प्रेम के साथ मिला देना चाहिए हम दुश्मनों से भी प्रेम करना चाहते हैं और वे बिना भय, प्रतिशोध व आक्रमण के संकेत के उनके आदेश की पालना करें। ई.डी. निक्सन के घर पर भी बम फैंका गया।"

ये सभी घटनाऐं बड़ी नाटकीय थी और प्रतिशोध असाधारण था विशेषकर दक्षिण में और विशेषकर इसलिए कि यह निग्रो की पूर्णतया विचार-विमर्शी, अनुशासित, धार्मिक रूप से प्रेरित अहिंसा के कारण हो रहा था। इसका समाचार पूरी दुनिया में फैल गया। हालांकि इस आन्दोलन के लिए धन की कोई मांग नहीं की गई थी फिर भी काफी आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इसी दौरान अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने एक फैसला सुनाया कि "बसों में पार्थक्य की नीति व कानून को अपनाना असंवैधानिक था।" मॉण्टगोमरी इम्प्रुवमेंट एसोसिएशन की कार्यकारिणी समिति ने काउन्सेल की सलाह पर सरकारी प्रतिरोध को तत्काल समाप्त करने का निर्णय लिया लेकिन बसों के लौटने में देरी हुई जब तक कि सरकारी बाध्यकारी आदेश - सर्वोच्च न्यायालय से प्राप्त नहीं हो गया।

उसी रात 8 हजार निग्रो की एक बड़ी भारी उत्साही बैठक का आयोजन किया गया। बाद में शाम को कु. कुलुक्स कलान ने शहर के निग्रो बस्तियों में बैठक का आयोजन किया। लेकिन उस समय निग्रो को सूचित नहीं किया गया था। आगामी बैठकों में निग्रो को पुन: बसों में सवारी करने पर अहिंसक और सहयोगी तरीके से कार्यवाही के निर्देश दिए गए थे। जब पुन: बसों में सवारी करने की शुरुआत हुई तब जहाँ तक सम्भव हुआ दो निग्रो पादरियों ने प्रत्येक सिटी बस में सुबह और शाम को ज्यादा भीड़ के समय सवारी की ताकि निग्रो लोगों में उनकी उपस्थिति से साहस उत्पन्न हो और उन्हें अपमान के मामले में प्रतिकार की सम्भावना को कम किया जाए।

मार्टिन लुथर किंग (जुनियर) ने भी सुबह की पहली बस में यात्रा की। बस चालक व लोगों ने उसका बहुत स्वागत किया और उसकी प्रशंसा की। हालांकि कुछ समय पश्चात् ही शहर में पुन: निग्रो पर आक्रमण हुए, कई चर्चों को नुकसान पहुँचाया गया। भाग्यवश किसी को कोई चोट नहीं पहुँची। इस हिंसा ने गोरे लोगों को यह जता दिया कि ऐसी अव्यवस्था एवं हिंसा से प्रत्येक व्यक्ति के लिए शहर असुरक्षित बन गये थे और इससे देश की बदनामी भी होती है। स्थानीय समाचार पत्रों ने इसके विरूद्ध कटु सम्पादकीय प्रकाशित किए। गोरे लोगों के व्यावसायिक संगठनों ने भी इस कानूनविहीन हिंसा का सार्वजनिक रूप से विरोध किया। इस

स्थिति में कई गोरे लोगों की गिरफ्तारियाँ भी हुई। धीरे-धीरे हिंसा थमी और बसों में पार्थक्यता के व्यवहारों में कमी आयी।

इसलिए अहिंसा, एकता, माफी एवं प्रेम शत्रुओं के लिए शक्तिशाली सिद्ध हुआ। मॉण्टगोमरी की प्रजातीय समस्या का समाधान तो एक शुरुआत मात्र थी लेकिन डॉ. किंग ने "स्वतन्त्रता की ओर कदम" (Stride towards Freedom) निश्चित रूप से रख दिए थे। तदनुसार अहिंसक प्रतिरोध के आधारों ने भविष्य की सफलताओं की मजबूत नींव रखी।

7.4.3 धरने-प्रदर्शन

अगले शक्तिशाली कदम के रूप में प्रतिरोधकों ने 'धरने' को अपनाया। उनको इनसे अत्यधिक उत्साह प्राप्त हुआ। जब छात्रों ने ग्रीनसबारों नॉर्थ केरोलिना, नेशविले, टेनिसी, एटलांटा, जार्जिया आदि जगहों पर धरने-प्रदर्शन शुरू किए अपार्थक्य से मना करने के विरोध रूप में। प्रतिरोधकों ने साज-सज्जा को बढ़ाया, शान्तिपूर्वक बैठे रहे और अन्यों को भी जोड़ा जो उनके प्रति सहानुभूति रखते थे। इन कई धरनों के परिणामत: सरकार ने उनको कई सुविधाएँ उपलब्ध करायी। यह निश्चित रूप से सत्याग्रह की गाँधीवादी तकनीक के जैसी दिखाई दी। प्रतिरोधकों को पता था कि यह तकनीक नई नहीं थी। द कॉंग्रेस ऑफ रेसीयल इक्वेलिटी ने 1940 के दशक के मध्य पार्थक्य के प्रतिरोध में इसे प्रयुक्त कर चुका था लेकिन इस समय 1960 में इसने आन्दोलन की ओर पूरे राष्ट्र का ध्यान खींचा। ग्रीनसबारो धरने की सफलता ने सम्पूर्ण दक्षिण में काफी छात्र अभियानों को नेतृत्व प्रदान किया। सम्भवतया सबसे अधिक संगठित और अनुशासित और तत्काल रूप में प्रभावी धरना नेसविले टेनेसी का रहा था। 1960 के अन्त में पूरे दक्षिण में धरने-प्रदर्शन फैल गये यहाँ तक कि नेवादा, इलिनोईस और ओहियो राज्यों की सीमाओं तक भी। प्रदर्शनकारियों ने अपना केन्द्र लंच काउन्टर्स को ही नहीं बनाया बल्कि उद्यानों, समुद्री तटों (beaches), पुस्तकालयों, रंगमंचों, संग्रहालयों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों को भी बनाया। जब उन्हें गिरफ्तार किया गया तब छात्रों ने 'जेल-नो-बेल' के नारे लगाये ताकि उनके कार्यों के प्रति ध्यानाकर्षण किया जाए और जेल प्रशासन पर वित्तीय भार डाला जाए।

7.4.4 फ्रीडम राईड्स

जिन कार्यकर्ताओं ने 1960 में धरनों के नेतृत्व हेतु जो छात्र अहिंसक समन्वयक समिति का गठन किया था उन्होंने आगे अहिंसक संघर्ष की युक्तियों को अपनाया। इस क्रम में उनका पहला अभियान 1961 का था जिसने फ्रीडम राईड्स का संचालन किया जिसमें कार्यकर्ताओं ने दक्षिण में अन्दर तक बसों में यात्रा की। फ्रीडम राईड्स का प्रमुख नेता जेमन फार्मर था जिसने इसको समर्थन दिया, लेकिन अन्तिम क्षणों में समर्थन वापिस ले लिया। इसने सिद्ध कर दिया कि यह व्यापक रूप में खतरनाक मिशन है। एन्निस्टॉन में (अलबामा) एक बस पर बम डाला गया उसके यात्रियों को जान बचाने के लिए भागने को बाध्य किया। बर्मिंघम में जहाँ एक एफबीआई खबरची की सूचना अनुसार - पब्लिक सेफ्टी कमिश्नर 'यूज़ेन 'बुल' कॉनर ने

कु कुलुक्स कलान को फ्रीडम राईड्स के आने वाले समूह पर हमले के लिए उकसाया था। राईडर्स को बुरी तरह पीटा गया। मॉण्टगोमरी में एक भीड ने राइडर्स की एक दूसरी बस पर हमला बोला। 'लाइफ' फोटोग्राफर डॉन उर्बिक के चेहरे पर चोट पहुँचायी गयी। उसके कैमरे को तोड़ डाला। एक दर्जन लोगों ने एक गोरे छात्र, जो फिस्क यूनिवर्सिटी से था, को घेरे हुए थे और उसे सुटकेस से पीटा गया उसके दांतों पर भी चौंटे पहुंचाई वह बेहोश हो गया।

इन फ्रीडम राईडर्स को जेल में खाना नहीं दिया गया वहाँ पर उन्हें छोटी व गन्दी कोठरी में ठुस-ठुस कर भर दिया गया और बारी-बारी से मारा गया। जेक्सन में (मिसीसिपी) कुछ पुरूष बन्दियों को 100 डिग्री तापमान पर कठोर श्रम करने को मजबूर किया गया। अन्यों को मिसीसिपी स्टेट पेनीटेन्सियरी (पार्चमन) में हस्तान्तरित किया गया जहाँ खाने में नमक ज्यादा रखा जाता था और उनकी चटाईयाँ हटा ली गई, कभी-कभी बन्दी दिवार से मार-मार कर अपनी कोहनी को तोड़ लेते। यहाँ की कोठरिया बन्द और मैली थी जिनमें श्वांस लेना बहुत कठिन था। इस छात्र आन्दोलन में जीन लेविस, एकल-मनस कार्यकर्ता, जो स्वयं को आन्दोलन से जोड़े रखा जबकि उसे पीटा गया और प्रताड़ित किया गया था, जेम्स लॉसन जो कि अहिंसक सिद्वान्त एवं पद्धतियों के श्रद्धेय गुरू थे, डायने नेश, बॉब मोसेज, जेम्स बेवेल आदि प्रसिद्ध लोग शामिल हुए, साथ में अन्य प्रमुख छात्र कार्यकर्ता भी जिनमें - चार्ल्स मेक्डेव, बर्नार्ड लफाएटे, चार्ल्स जोन्स, लोनिए किंग, जुलियन बॉण्ड, होसिए बिलियम्स और स्टॉम्ले कारमिचेल बाद में क्वामेट्यूर के नाम से जाने जाने लगे, आदि शामिल हुए।

7.4.5 मिसीसिपी में नये संगठन का गठन

1962 में राबर्ट मोसेज जो एक एनसीसीज का प्रतिनिधि था, ने राज्यों के नागरिक अधिकार संगठनों एसएनसीसी; द एनएएसीपी तथा सीओआरई को साथ लाकर सीओएफओ (Council of Federated organisations) का गठन किया गया। मिसीसिपी सभी दक्षिणी राज्यों में सबसे ज्यादा खतरनाक राज्य था, फिर भी मोसेज,एनएएसीपी के मेडगार एवर्स तथा अन्य स्थानीय कार्यकर्ताओं ने ग्रामीण मिसीसिपी में घर-घर जाकर मतदाता शिक्षा परियोजनाओं को जारी रखा। इसी दौरान उन्होंने अपने कार्यो को अच्छे से अन्जाम देने हेतु और छात्रों की भर्ती करने की कोशिश की। बाद में एवर्स की हत्या कर दी गई।

7.4.6 अल्बानी आन्दोलन 1961-1967

एससीएलसी की मुख्यधारा के अन्य नागरिक अधिकार संगठनों के साथ कुछ छात्र कार्यकर्ताओं द्वारा आलोचना की गई। क्योंकि यह फ्रीडम राईडर्स को ज्यादा मात्रा में सहभागी बनाने में असफल रहा जो कि इसकी हैसियत और संसाधनों से ज्यादा अच्छे से प्रतिबद्ध थे। 1961 के अलबेनी (जार्जिया) के अपार्थक्य अभियान में। किंग जो कि कुछ एसएनसीपी कार्यकर्ताओं द्वारा व्यक्तिगत रूप से आलोचना के शिकार हुए क्योंकि वे स्थानीय कार्यकर्ताओं द्वारा सामना किए जा रहे खतरों से दूरी बनाए रखे। उन्हें डीलाड (Delawd) उपनाम दिया

गया। परिणामत: उन्हें व्यक्तिगत रूप से एसएनसीसी संगठनकर्ताओं और स्थानीय नेताओं दोनों के अभियानों को नेतृत्व और सहायता देने के लिए हस्तक्षेप करना पड़ा।

7.4.7 दी बर्मिंघम अभियान 1963-1964

वास्तव में, अल्बेनी आन्दोलन एससीएलसी के लिए एक महत्वपूर्ण शिक्षा सिद्ध हुआ, हालांकि जब तक इसने 1963 में बर्मिंघम अभियान की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। इस अभियान का एक मात्र मूर्त लक्ष्य था - बर्मिंघम के पददलित व्यापारियों का अपार्थक्य की बजाय अल्बेनी की तरह पूर्ण अपार्थक्य। यह स्थानीय पदाधिकारियों की कार्यवाही की सहायता की गई, विशेषकर युजेन 'बुल' कॉनर द्वारा, जो कि जब सुरक्षा आयुक्त थे जिन्होंने मेयर का चुनाव हारा था जो कि पार्थक्यवादी प्रतिनिधि थे लेकिन नये मेयर ने सत्ता ग्रहण करने से मना कर दिया।

इस अभियान में संघर्षों के विविध अहिंसक पद्धतियों का प्रयोग किया गया जिनमें धरने, स्थानीय चर्चों में घुटने के बल बैठना, काउन्टी बिल्डिंग की ओर प्रदर्शन, पंजीकृत मतदाताओं की पहचान करना आदि। हालांकि इस शहर ने ऐसे सभी प्रतिरोधों को स्वीकार किया। यह मान लिया गया कि आदेश असंवैधानिक था, इस अभियान ने कई समर्थकों को आम गिरफ्तारी के लिए तैयार किया। उनमें किंग भी एक थे जिनको 21 अप्रेल, 1963 को गिरफ्तार किया गया। किंग ने बर्मिंघम जेल से समर्थकों को एक पत्र लिखा। उसके समर्थकों ने कैनेडी प्रशासन पर उन्हें मुक्त करने और अच्छी दशा में रखने का दबाव बनाया। बाद में उन्हें अपने चौथे बच्चे के जन्म पर 19 अप्रेल, 1963 को रिहा कर दिया गया। अन्त में व्यवसायी कर्मियों और एससीएलसी के बीच समझौता हो गया।

7.4.8 सेल्मा और मताधिकार अधिनियम - 1965

1965 में एसएनसीसी ने सेल्मा, अल्बामा में एक महत्वाकांक्षी मतदाता पंजीकरण कार्यक्रम की जिम्मेदारी ली लेकिन सेल्मा के शासनाधिकारी 'जिम क्लॉर्क' की ओर से विरोध के कारण इसमें कोई प्रगति नहीं हो सकी। बाद में स्थानीय निवासियों ने एससीएलसी से सहायता के लिए कहा तब किंग, सेल्मा में आये और कई अभियानों का नेतृत्व किया, हालांकि 10 दिसम्बर, 1964 को मार्टिन लुथर किंग (जुनियर) को, जिनको शान्ति कार्यों के लिए नोबेल शान्ति पुरस्कार मिल चुका था, यहाँ पर वह 250 कार्यकर्ताओं के साथ बन्दी बना लिए गए। अभियानकर्ताओं ने पुलिस से निरन्तर हिंसक प्रतिरोध जारी रखा एक सेल्मा निवासी जिम्मी ली जेक्सन फरवरी में पुलिस द्वारा मारा गया।

7 मार्च, 1965 को एससीएलसी के होरी विलियम्स और एसएनसीसी के जॉन लेविस ने 600 लोगों का नेतृत्व करते हुए एक अभियान निकाला जिन्होंने सेल्मा से मॉण्टेगोमरी तक 54 मील का सफर तय किया। हालांकि इस अभियान में केवल 6 ब्लॉकों में, एडमाड पिट्स ब्रिज, स्टेट ट्रूपर्स एण्ड लॉकल लॉ एन्फोर्समेंट, सम माउण्टेड ऑन हॉर्सबैक, शान्तिपूर्ण प्रदर्शनकारियों पर - आंसू गैस के गोले छोड़े गये, रबड़ ट्यूब्स में फंसाने का प्रयास किया और उन्हें जबर्दस्ती

सेल्मा धकेलने की कार्यवाही की। जीन लेविस को बेहोश कर दिया गया और इलाज के लिए भेज दिया गया, इसी दौरान 16 अन्य अभियानकर्ताओं को भी हॉस्पिटल में भर्ती कराया गया। इनके बीच में एमिलिया बॉयन्टॉन रोबिन्सन था जिसे घसीटा गया और पीटा गया, यह उस समय नागरिक अधिकार गतिविधियों का केन्द्र बिन्दु था।

इस घटना के वीडियो फुटेज पूरे देश में दिखाये गये कि मताधिकार मांगने वाले अप्रतिरोधी अभियानकर्ताओ पर पुलिस द्वारा हमला बोला गया इससे दो वर्ष पूर्व बर्मिंघम में मिले राष्ट्रीय समर्थन के समान राष्ट्रीय समर्थन मिला। इसी दौरान अभियानकर्ताओं को दो सप्ताह बाद न्यायालय से अभियान चलाने की अनुमति के आदेश प्राप्त हो गये। स्थानीय गोरों ने एक प्रसिद्ध जेम्स रीब, जो एक मताधिकार समर्थक था, की हत्या कर दी। 9 मार्च को खूनी रविवार के हुए अभियान के बाद में। वह 11 मार्च को बर्मिंघम अस्पताल में मर गया।

जॉनसन ने प्रथम अभियान के आठ दिन बाद में टीवी के माध्यम से कांग्रेस को सम्बोधित किया। मताधिकार बिल के समर्थन में जो शीघ्र ही कांग्रेस में लाया गया था। जिसमें उन्होंने कहा था कि हालांकि यदि हम यह अधिनियम पास कर देते हैं फिर भी लड़ाई समाप्त नहीं होगी, सेल्मा जो कि आन्दोलन का एक बड़ा भाग है, उसमें जो घटित हुआ है,, यह आन्दोलन अमेरिका के प्रत्येक वर्ग और राज्य मै पहुँच चुका है। यह अमेरिकी निग्रो को अपने आपको सुरक्षित करने का एक प्रयास है। उनका कार्य अवश्य हमारा कार्य होना चाहिए क्योंकि वे केवल निग्रो ही नहीं हैं बल्कि वास्तव में वे ही हुमारे सब कुछ हैं। इस अन्याय और कट्टरपन की अशक्त विरासत को कौन कम करेगा, इसे अवश्य हमें ही कम करना होगा।"

6 अगस्त, 1965 को जॉनसन ने मताधिकार अधिनियम पर हस्ताक्षर किये। इस 1965 के अधिनियम में मताधिकार का उपयोग करने, साक्षरता परीक्षण और अन्य मतदाता परीक्षणों को स्थगित किया तथा राज्यों में और मतदाता जिलों में जहाँ ऐसे परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ मतदाता पंजीकरण के पर्यवेक्षण हेतु संघीय पर्यवेक्षण को अधिकृत किया। जो लोग मत के पंजीकरण से रोक दिए गए थे उनको अन्त में न्यायालयों में जाने का विकल्प दिया गया था। यदि मतदान में भेदभाव हुआ तो 1965 के अधिनियम के तहत अमेरिकों के महान्यायवादी को स्थानीय रजिस्ट्रारों के स्थान पर संघीय परीक्षक भेजने का अधिकार दिया गया। जॉनसन ने अपने सहयोगियों को बताया कि इस बिल पर हस्ताक्षर ने आगामी भविष्य के लिए डमोक्रेटिक पार्टी के लिए दक्षिण खो दिया है।

हालांकि इस अधिनियम ने अफ्रीकी-अमेरिकीयों के लिए तत्काल और सकारात्मक प्रभाव छोड़ा। इसके पारित होते ही लगभग एक चौथाई मिलियन काले लोगों ने अपने मत का पंजीकरण करवाया और एक तिहाई संघीय परीक्षकों ने। 4 वर्षो के अन्दर दक्षिण में मतदाता पंजीकरण दुगुना हो गया। 1965 में मिसीसिपी में सबसे ज्यादा मतदान 74 प्रतिशत हुआ और इसने कई काले लोगों को सरकारी पदों पर निर्वाचित करने में योगदान दिया। 1969 में टिनेसी में 92 प्रतिशत मतदान, अरकांसस में 77.9 प्रतिशत तथा टैक्सास में 73.1 प्रतिशत मतदान हुआ।

कई गोरे लोग जिन्होंने इस मताधिकार अधिनियम का विरोध किया था तत्काल कीमत चुकानी पड़ी। अल्बामा के शासनाधिकारी जिम क्लॉर्क, जो आणविक अधिकार अभियानकर्ताओ के घरों को जलाने व पशुओं को भगाने के लिए कुख्यात थे, 1966 के पुन: निर्वाचित खड़े हुए थे। लेकिन बड़े नाटकीय ढंग से मैदान से हट गये क्योंकि काले लोगों के मतों को हासिल करना उनके लिए कठिन था। वह असफल रहा। अपने पद को बचाने के सभी सम्भव साधनों के प्रयोग से भी वह काले मतों को हासिल नहीं कर पाया।

काले लोगों ने दक्षिण के राजनीतिक परिदृश्य को हमेशा-हमेशा के लिए बदलने हेतु मताधिकार को जीता। जब कांग्रेस ने मताधिकार अधिनियम पारित किया तब मात्र 100 अफ्रीकी-अमेरिकी, अमेरिका में निर्वाचित होकर आये। 1989 तक यह संख्या बढ़कर 7,200 हो गई जिनमें 4,800 से ज्यादा अमेरिका के दक्षिणी राज्यों से थे। लगभग अल्बामा के सभी काले लोगों के घरों में काले विशेषाधिकारी का चुनाव हुआ। दक्षिण के काले लोग इनमें शिखर पर थे। अटलांटा में काले मेयर का चुनाव हुआ। इस प्रकार धीरे-धीरे काले लोगों का राजनीतिक से पार्थक्य कम हुआ और सरकारी पदों को अधिग्रहण करना शुरू किया। यह काले लोगों की सबसे बड़ी व महानतम विजय थी, जिसको शुद्धत्तम स्वरूप बराक ओबामा के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति बनने के रूप में सामने आया।

7.5 आन्दोलन के विविध चरणों की वास्तविक उपलब्धियाँ

इस आन्दोलन के दौरान कुछ उल्लेखनीय विधायी उपलब्धियाँ हासिल हुई, जिनमें पहला 'सिविल राइट्स एक्ट ऑफ व 1957' था, जो अपने प्रभावों में बहुत कम था, लेकिन यह पुनर्निर्माण से ही प्रथम विभेद विरोधी संघीय कानून था। दूसरा- ' सिविल राइट्स एक्ट ऑफ 1964 ' था, जिसने रोजगार के मामलों में और सार्वजनिक सुविधाओं में भेदभाव को प्रतिबन्धित किया। तीसरा - ' वोटिंग राइट्स एक्ट ऑफ 1965' था, जिसने मताधिकार को पुन: हासिल करवाया। चौथा 'इमिग्रेशन एवं नेशनलिटी सर्विसेज एक्ट ऑफ 1965' था जिसने अमेरिका की उत्प्रवास नीति को बदला और अन्तिम 'सिविल राइट्स एक्ट ऑफ 1967 ' था जिसने आवासों की बिक्री और किराये सम्बन्धी भेदभावों को प्रतिबन्धित किया।

7.6 सारांश

संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक अधिकार आन्दोलन दुनिया के बड़े मानवाधिकार आन्दोलनों में शुमार होता है। यह आन्दोलन काले (निग्रो) और गोरे लोगों के बीच प्रजातीय भेदभाव को लेकर संचालित हुआ था। यह भेदभाव बसों, ट्रेनों. स्कूलों, अस्पतालों, आवासों, सरकारी पदों, उच्च शिक्षा, होटलों व रेस्टोरेन्टों आदि सभी जगहों पर विद्यमान था। यह भेदभाव निग्रो की मानवीय गरिमा को ठेस पहुंचाता था इसलिए मार्टिन लुथर किंग जुनियर के नेतृत्व में यह आन्दोलन चला। सर्वप्रथम स्कूली शिक्षा, फिर बस बहिष्कार कई राजनीतिक संगठनों के निर्माण तथा मताधिकार अधिनियम के निर्माण की मांग को लेकर निरन्तर आगे बढ़ता रहा। जिसमें किंग को काफी सफलता मिली। जिसकी सिद्धि उनको 1969 में मिले नोबेल शान्ति पुरस्कार से होती है। किंग ने अमेरिका में यह आन्दोलन गाँधीजी से प्रभावित होकर

अहिंसक आधार पर ही चलाया था जिसकी वास्तविक उपलब्धि सन् 2009 में अमेरिका के प्रथम अश्वेत राष्ट्रपति बराक हुसैन ओबामा के निर्वाचन के साथ ही हुई।

7.7 अभ्यास प्रश्न

1. संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आन्दोलन के शुरू करने की आवश्यकता क्यों हुई?
2. संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकार आन्दोलन की मुख्य-मुख्य घटनाओं की सूची बनाइये।
3. अमेरिका के नागरिक अधिकार आन्दोलन के मुख्य नेता कौन-कौन थे?
4. अमेरिका के नागरिक अधिकार आन्दोलन की मुख्य उपलब्धियों को सूचीबद्ध कीजिए।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- एडमण्ड, टी., किंग (जुनियर), मार्टिन लुथर, "द ब्लैक अमेरिकन्स प्रोटेस्ट मुवमेंट इन द यू.एस.ए.", न्यू हाईट्स, नई दिल्ली, 1976
- किंग (जुनियर), मार्टिन लुथर, "स्ट्राइड टुवार्ड्स फ्रीडम : द मोंटगोमरी स्टोरी", हार्पर एण्ड रो, न्यूयार्क, 1958
- एजकेल, निस्सिम (सम्पा.), "ए मार्टिन लुथर किंग रीडर", पॉपुलर प्रकाशन, बम्बई, 1969
- किंग, मेरी, महात्मा गाँधी एण्ड किंग (जुनियर), मार्टिन लुथर, "द पॉवर ऑफ नॉन वायलेंट एक्शन", यूनेस्को पब्लिशिंग, फ्रांस, 1999
- किंग, कॉरेट्टा स्कॉल, "माई लाइफ विथ मार्टिन लुथर किंग (जुनियर)", हॉल्ट राईनहार्ट एण्ड विन्सटन, न्यूयार्क, 1969

इकाई - 8

किंग की अहिंसा

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर की मौलिक चिन्ताऐं

8.3 डॉ. किंग की उपलब्धियां

8.4 किंग का अहिंसा दर्शन

8.5 सिद्धान्त एवं चरण

8.5.1 छः सिद्धान्त

8.5.2 छः चरण

8.6 डॉ. बर्नार्ड लफाएट्टे, जुनियर और कप्तान चार्ल्स एल. एल्फिन सीनियर

8.7 किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग

8.8 द लफाएट्टे एसोसिएट्स

8.9 अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्त

8.10 पुलिस कार्यो में किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग सम्बन्धी कुछ टिप्पणियाँ

8.11 निष्कर्ष

8.12 अभ्यास प्रश्न

8.13 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य

यह अध्याय किंग की अहिंसा सम्बन्धी विचारों से सम्बन्धित है, जिसके अध्ययन के उपरान्त आप -

- किंग की अहिंसा सम्बन्धी धारणा को समझ पाएंगे,
- डॉ. किंग की उपलब्धियों को जान पाएंगे,
- किंग के अहिंसा दर्शन को समझ पाएंगे,
- किंग के अहिंसा सम्बन्धी सिद्धान्तों तथा चरणों को समझ पाएंगे, तथा
- किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग को भी समझ पाएंगे।

8.1 प्रस्तावना

नॉबेल पुरस्कार समिति के अध्यक्ष डॉ. गुन्नार जॉन ने डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर की उपलब्धियों को संक्षेप में बताते हुए कहा कि "डॉ. किंग पाश्चात्य जगत का पहला ऐसा व्यक्ति है जिसने यह दिखाया हिंसा के बिना भी संघर्ष लड़ा जा सकता है।"

उन दिनों बहुत कम ही लोग थे जिनका इस बात में भी विश्वास हो कि गाँधी द्वारा भारत में प्रयुक्त पद्धतियों और रणनीतियों का प्रयोग कर करोड़ों अमेरिकी निग्रो लोगों के लिए न्याय और आजादी सुनिश्चित की जा सकती है। डॉ. किंग ने एक बार अपने दर्शन की व्याख्या करते हुए कहा था कि "मेरा उग्र अहिंसा की धारणा में विश्वास है जिसमें एक व्यक्ति धरना, कानूनी कार्यवाही, बॉयकाट, मतदान तथा अन्य किसी भी माध्यम का, केवल हिंसा या घृणा को छोड़कर, प्रयोग करते हुए अन्याय की व्यवस्था के विरूद्ध खड़ा होता है।"

यह देखा जा सकता है कि डॉ. किंग के सार्वजनिक अभियान इस बात पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित करते थे कि राज्य कानून में क्या लिखा हुआ था। डॉ. किंग का विश्वास था कि 'मैंने मेरी पृष्ठभूमि से मेरे को संचालित करने वाले इसाई आदर्श प्राप्त किये और गाँधीजी से मैंने मेरी क्रियात्मक तकनीक सीखी।" उन्होंने महात्मा गाँधी के प्रति अपने ऋण को स्वीकार करते हुए मोन्टगोमरी बस बहिष्कार के समय कहा कि "यह एक निष्क्रिय प्रतिरोध का विरोध है जो नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति पर आधारित है। ईसा मसीह ने हमें रास्ता दिखाया और महात्मा गाँधी ने काम करना सिखाया।"

डॉ. किंग के मोन्टगोमरी बस बहिष्कार ने यह सिद्ध कर दिया कि अहिंसा उनके विरोधियों का हृदय जीतने का एक प्रभावी माध्यम है और यह आन्दोलनकर्ताओं को जोड़ने का धागा भी है। इस बस बहिष्कार ने एक ओर तो पूर्णरूपेण श्वेत लोगों को कटुता से रहित कर दिया। दूसरी और हृदय को स्पर्श करने वाली विशेषता यह थी कि कई श्वेत अमेरिकियों ने इस आन्दोलन को नैतिक समर्थन प्रदान किया।

अन्तर्राष्ट्रीय विकास के अध्येताओं और पर्यवेक्षकों दोनों ने ही यह इंगित किया है कि गांधी अहिंसक प्रतिरोध के प्रयोग करने की शुरुआत को एक सामाजिक संघर्ष की तकनीक के रूप में किया जिसको डॉ. किंग ने सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ाया। वह काले लोगों की पवित्र आवाज के रूप में उभरे थे वहीं साथ में महत्वपूर्ण लोगों का समर्थन एवं प्रशंसा भी प्राप्त की। वे अधिक सामंजस्यकारी एवं संतुलनकारी व्यवस्था की खोज में मानवता के मित्र बन गये। गाँधी ने उन्हें महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया। डॉ. किंग का कहना है-

"गाँधी संभवत: इतिहास में प्रथम आदमी था जिसने ईसा मसीह के नैतिक प्रेम को साधारण लोगों में प्रचलित व्याख्याओं से ऊपर उठाते हुए बड़े स्तर पर एक शक्तिशाली और प्रभावी सामाजिक शक्ति बना दिया। गाँधी के लिए प्यार सामाजिक रूपांतरण का एक संभाव्य साधन था। यह गाँधी के प्रेम और अहिंसा पर बल में ही था जिसे मैंने सामाजिक सुधार के लिए पद्धति के रूप में खोजा जिसके लिए मैं कई महीनों तक प्रयास करता रहा।"

8.2 डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर की मौलिक चिंताऐं

डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर की मौलिक चिताऐं आरंभिक तौर पर - एक पादरी की थी। वह न केवल अमेरिकी आदर्शों में विश्वास करता था बल्कि वह यह भी मान चुका था कि अहिंसक साधनों के माध्यम से वह देश में विद्यमान नस्लीय तनाव के वातावरण को सुधार सकता था। उन्होंने आर्थिक शोषण की समाप्ति के लिए, जो कि बहुत जरूरी था, पद्दलित लोगों की गरीबी और भूख को हटाने पर बल दिया। यह भी स्मरणीय है कि वह अपने आपको काले

लोगों तक ही सीमित नहीं रखता था बल्कि उसकी दृष्टि में श्वेत और काले दोनों ही लोग समान थे।

उन्होंने कई रैलियों का नेतृत्व बड़ी सफलता के साथ जिसमें सबसे महत्वपूर्ण थी- मोन्टगोमरी बस बहिष्कार (1955-56) जो आज भी मानव इतिहास में न्याय के लिए किए गए प्रयासों में सबसे भव्य मानी जाती है। उन्होंने कहा कि इस स्थिति में इतिहास ने मेरे पर विश्वास किया है। यह अनैतिक और किसी अन्य को कृपापात्र बनाने का चिह्न होता यदि मैं मेरी नैतिक जिम्मेदारी को स्वीकार नहीं करता कि मैं इस संघर्ष के लिए क्या कर सकता हूँ। वह इतना विनम्र था कि वह यह विश्वास करता था कि वह तो एक साधन मात्र है वह एक विचार का व्यक्तिकीकरण था बजाय एक व्यक्ति के। नोबेल शांति पुरस्कार चयन समिति ने उनके मानवता को दिए अद्भुत योगदान को मान्यता दी और डॉ. किंग के "मनुष्य के भ्रातृत्व" के विचार के लिए सर्वोच्च त्याग को रिकॉर्ड किया।

उसने 1963 में वाशिंगटन में एक विशाल रैली का नेतृत्व सफलतापूर्वक किया, सदरन् क्रिश्चियन लीडरशिप कॉन्फ्रेन्स के अध्यक्ष और संस्थापक के रूप में और उनका 'आई-हेव-ए-ड्रीम नामक भाषण दिया जो उनके कुशल वक्ता और पवित्र भावनाओं का शास्त्रीय उदाहरण माना जाता है।

जब डॉ. किंग की 1969 में हत्या की गई, तब वह मानव के भ्रातृत्व के पहरेदार बन गये और आशा के नये युग के पैगम्बर बन गये और यह कि अहिंसा कमजोर का हथियार नहीं है, बल्कि यह साहसी का हथियार है जैसा कि गाँधीजी ने प्रदर्शित किया। डॉ. किंग ने इस सत्य को बड़ी मानने योग्य स्पष्टता, अद्भुत साहस और मनोभाव के साथ प्रदर्शित किया।

8.3 डॉ. किंग की उपलब्धियाँ

1. डॉ. किंग ने सन् 1954 से 1968 तक कई प्रमुख आंदोलनों का नेतृत्व किया जो उसके नेतृत्व गुणों एवं उसके अहिंसा के प्रतिबद्धता को दिखाते है। इसके अतिरिक्त वह न केवल अमेरिकी निग्रो का ही नेता नहीं था बल्कि एक ऐसे नेता थे जिसने सत्ता में बैठे लोगों को सभी पद्दलित लोगों के प्रति सभी प्रकार अन्यायों का उपचार करने की दिशा भी दिखायी थी। डॉ. किंग ने सम्पूर्ण विश्व के सभी पद्दलित लोगों को संगठित आवाज प्रदान की। जिसके प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित है-

1955 मोन्टगोमरी - सार्वजनिक यातायात में पष्थक व्यवस्था के विरूद्ध

1962 अलबाने - अपृथक सार्वजनिक ठहरने की व्यवस्था और मताधिकार के लिए

1963 बर्मिंघम - अपृथक सार्वजनिक ठहरने के स्थान और सकारात्मक कार्यवाही के लिए

1964 सेंट आगसलाइन - अपृथक सार्वजनिक ठहरने के स्थान के लिए

1965 सेलमा - मताधिकारों के गारंटेड सुरक्षा के लिए

1966 शिकागो - खुले मकान, बस्तियों की समाप्ति के लिए

1967 क्लिवलैण्ड - बस्तियों की समाप्ति, रोजगारों के लिए

1968 चार्ल्सटन - अस्पताल के श्रमिकों के अधिकारों की मान्यता के लिए

1968 - अमेरिका में गरीबी समाप्ति के लिए देश के कई भागों में गरीब लोगों के लिए अभियान

2. डॉ. किंग द्वारा गाँधी की अहिंसक कार्यवाही की तकनीकों की स्वीकारोक्ति से पूर्व अहिंसा को एक सामान्य अवधारणा के रूप में देखा व व्याख्या की जाती थी, जिसका प्रयोग कुछ थोड़े से धार्मिक समुदायों व लोगों के लिए, जो गाँधी के साथ भारत में काम करते थे, प्रयुक्त होता था। जहां धर्म को इसकी सफलता का श्रेय दिया जाता था। डॉ. किंग ने दिखाया कि अहिंसा अपने प्रभावी एवं बिना हिंसा व घृणा के प्रयोग के द्वारा यह एक लोकतांत्रिक समाज के बनने में महत्वपूर्ण अंग बन सकती थी।
3. हमने देखा कि अब वैश्विक अहिंसक जागरूकता व्यापक रूप से लोकप्रिय हो रही है जिसके लिए गाँधी और डॉ. किंग के अगुवा बनकर कार्य करने के प्रयास जिम्मेदार हैं। आज भी अहिंसा अन्य दर्शनों की तुलना में छोटा ही है।
4. गाँधी और डॉ. किंग दोनों ने ही अपने-अपने संबंधित धर्मों से उसकी प्रेरणा ली और इससे यह सिद्ध होता है कि उनका धर्म में अटूट विश्वास व प्रतिबद्धता थी।

8.4 किंग का अहिंसा दर्शन

डॉ. किंग के अनुसार "अहिंसा एक शक्तिशाली और न्यायपूर्ण हथियार है। यह इतिहास का अनोखा हथियार है जो बिना काटे घाव करता है और यह जगंलियों को कुलीन वर्ग का सदस्य बना देती है। यह एक ऐसी तलवार है जो घाव करती है।”"

किंग ने अपनी अहिंसा का दर्शन अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "स्ट्राइड टुअर्डस् फ्रीडम” के चौथे अध्याय 'पिलग्रिमेज टू नॉन वायलेंस' में प्रस्तुत किया। उसने विस्तार से अहिंसा के छः सिद्धान्तों की व्याख्या की है -

पहला सिद्धान्त	–	अहिंसा साहसी लोगों की जीवन शैली है।
दूसरा सिद्धान्त	–	इसका उद्देश्य प्रेमी समुदाय का निर्माण करना है।
तीसरा सिद्धान्त	–	बुराई पर आक्रमण करो, बुराई कर्ता पर नहीं।
चौथा सिद्धान्त	–	बिना विरोध के पीड़ा को स्वीकारना ताकि लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।
पाँचवा सिद्धान्त	–	बाह्य शारीरिक हिंसा के साथ-साथ आंतरिक हिंसा की भावना को भी नकारना।
छठा सिद्धान्त	–	ब्रह्माण्ड हमेशा न्याय का पक्षधर रहता है।

'लैटर फ्रॉम ए बर्मिंघम जेल' में डॉ. किंग ने अपनी अहिंसा की रणनीति के छः चरण बताए हैं -

पहला चरण	–	सूचना संग्रहण
दूसरा चरण	–	शिक्षा
तीसरा चरण	–	व्यक्तिगत प्रतिबद्धता

चौथा चरण	–	समझौता वार्ता
पाँचवा चरण	–	प्रत्यक्ष कार्यवाही
छठा चरण	–	समझौता

8.5 सिद्धान्त एवं चरण

उनके पुलिस प्रशिक्षण में उन्होंने 'इच्छा' के रूप में छः सिद्धान्तों तथा 'कौशल' के रूप छः चरणों का उल्लेख किया। डॉ. बर्नाड लफाएट्टे जूनियर, डेविज जॉनसन और चार्ल्स एलफिन द्वारा रचित पुस्तक 'द लॉ एनफॉर्समेंट वर्कबुक' किंग की अहिंसा में पुलिस प्रशिक्षण देने वाले सभी संस्थानों द्वारा प्रयोग में ली जाती है। इन छः सिद्धान्तों एवं छः चरणों को पुलिस की शब्दावली में निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

8.5.1 छः सिद्धान्त

पहला सिद्धान्त : दैनिक आधार पर पुलिस अधिकारी साहसी कार्यों को प्रदर्शित करते हैं। अहिंसा चाहती है कि प्रत्येक पुलिस अधिकारी संघर्ष में उसकी सहभागिता का स्वयं विश्लेशण करें।

दूसरा सिद्धान्त : पुलिस अधिकारी सामान्यत: समुदाय की सेवा और लोगों की सहायता के वास्ते कानून के क्रियान्वयन के व्यवसाय को चुनता है कानून प्रवर्तन नीति एवं व्यवसायवाद हमेशा सम्पूर्ण समुदाय के उत्थान का समर्थन करती है।

तीसरा सिद्धान्त : संघर्षों के निपटारे में यह महत्वपूर्ण है कि लोगों के कार्यों और संघर्षों के मुद्दों के बीच अंतर की पहचान हो तथा अपनी ऊर्जा को वास्तविक समस्या की ओर लगाया जाए। अहिंसा के लिए जरूरी है कि हमें सम्पूर्ण मानवता का सम्मान करना है और उनके कार्यों को व्यक्तिश: लेना है।

चौथा सिद्धान्त : महत्वपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए त्याग करना जरूरी है। अहिंसा उद्देश्य चाहती है, बिना उद्देश्य के त्याग उत्पीड़ित होगा।

पाँचवां सिद्धान्त : अहिंसा एक भावनात्मक शिक्षा है इसलिए प्रत्येक को उसके/उसकी भावनाओं की शिक्षा देने की जरूरत है। लोगों या एक समुह के लिए नकारात्मक भावनाऐं अपने आपको आंतरिक हिंसा को जन्म दे सकती है।

छठा सिद्धान्त : ब्रह्माण्ड में संतुलन और व्यवस्था की अन्तर्निहित आवश्यकता है। ज्यादातर लोग गलत और अन्यायपूर्ण व्यवहार का विरोध करते हैं।

8.5.2 छः चरण

पहला चरण : संघर्ष के दोनों ओर के तथ्य पुलिस अधिकारियों की प्रभावी समाधान की क्षमता को बढ़ा सकते हैं और गुणात्मक सूचना पुलिस अधिकारियों के लिए शक्तिशाली स्त्रोत हो सकती है।

दूसरा चरण : अहिंसा संघर्षों की अच्छी समझ पैदा करती है। यह समाधानों को कारगर और न्यायप्रिय बना सकने में सहायता करती है।

तीसरा चरण	:	अहिंसा को चाहिए कि पुलिस अधिकारियों को संघर्षों में उनके संवेगात्मक जुड़ाव की स्पष्ट समझ को विकसित करें। पुलिस अधिकारी दूसरों के सांस्कृतिक अनुभेदों को समझते हैं ताकि संघर्षों के निपटारों में विभिन्नताओं को समझा जा सके।
चौथा चरण	:	अहिंसा संघर्षों से संबद्ध सभी दलों पर आंशिक विजय चाहती है। बिना किसी समझौते के पुलिस अधिकारी प्राय: समझौतों में उलझे रहते हैं लेकिन जब इनका अहिंसक रूप से समाधान किया जाता है तो ज्यादा प्रभावी होती है।
पांचवां चरण	:	अहिंसा हस्तक्षेप एकध्रुवीय संघर्ष को रोक सकता है। रचनात्मक हस्तक्षेप समझौतों के नये विकल्पों का सृजन कर सकती है।
छठा चरण	:	समस्याओं में संलग्न व्यक्तियों को समाधान में संलग्न होना आवश्यक है। अहिंसा पुलिस अधिकारियों को पुरानी समस्याओं के साथ नई संभावनाओं की ओर ध्यान खिंचने में सहायता करती है।

8.6 डॉ. बर्नाड लफाएट्टे जूनियर और कैप्टिन चार्ल्स एल. एलफिन सीनियर

डॉ. मार्टिन लूथर किंग जूनियर के शिक्षण एवं अभ्यास पर आधारित समग्र अहिंसक प्रशिक्षण कार्यक्रम डॉ. बर्नाड लफाएट्टे जूनियर और कैप्टिन चार्ल्स एल. एलपिन सीनियर ने मिलकर विकसित किया था। जहां डॉ. बर्नाड लफाएट्टे जूनियर डॉ. किंग के विभिन्न अभियानों के निकट के साथी रहे थे वहीं कैप्टिन चार्ल्स एल. एलफिन सेंट लुईस पुलिस विभाग, मिसुरी, का जासूस था। कैप्टिन चार्ल्स एलपिन एक सबसे अधिक प्रसिद्ध अहिंसक प्रशिक्षक था, जिसने पुलिस अधिकारी से अहिंसक प्रशिक्षण के रूप में उसके रूपांतरण पर लफाएट्टे की छत्रछाया में लिखा -

मैंने मेरी अनियमित कल्पनाओं में कभी नहीं सोचा होगा कि मैं डॉ. किंग की अहिंसा के दर्शन को स्वीकार करूँगा और पुलिस के प्रभावी रास्ते में इसको शामिल करूँगा। मैं न तो समझता था नहीं समर्थन करता था कि अहिंसा बदलते समाधानों या व्यक्तियों में प्रभावी थी। मैं सोचा था यह एक निष्क्रिय और बिना रणनीति के भगवान द्वारा चीजों के बदलने की प्रतीक्षा और इंतजार के अलावा कुछ नहीं है। मैं बहुत गलत था। मैंने 30 वर्षों के जीवनकाल में लोकतांत्रिक समाज में पुलिस के सभी स्तरों पर किंग के दर्शन को परीक्षण किया होगा। मैंने तीन सरकारों के साथ पुलिस में किंग के दर्शन के अनुप्रयोग के संबंध में संवाद किया और पढ़ाया।

1. साम्यवादी सरकारें - सोवियत संघ मॉस्को, लिनिग्राड, ताषकन्द, सेन्डमाकान और लिथुआनिया - 1990 और 1991
2. सैन्य तानाशाही सरकारें - हैती, जनरल केडारास 1993
3. अधिनायकवादी सरकारें - दक्षिण अफ्रिका - 1993, 94, 95, 96, 97

मेरा इन सरकारों के साथ आरम्भिक संबंध बने थे उस दौरान ये बदलाव की प्रक्रियाओं से गुजर रही थी, हालांकि वे तब तक बहुत ग्रहणकारी और संवाद उनके साथ निरन्तर जारी था। हालांकि किंग का दर्शन संभवत: अधिनायवादी परिस्थितियों और सरकारों में लागू हो सकता है, लेकिन यहां हम लोकतांत्रिक समाज के पुलिस कार्यों पर ही ध्यान केन्द्रित करेंगे। मेरा पुलिस कार्यों संबंधी अनुभव 21 जुलाई 1965 में शुरू हुआ था जब मैं सेंट लुईस पुलिस विभाग में एक पुलिस अधिकारी के रूप में शपथ ग्रहण की थी। एक पुलिस अधिकारी के रूप में 25 वर्षो के दौरान मेरी तीन बार पदोन्नति हुई, सार्जेन्ट से लैफ्टिनेंट और लैफ्टिनेंट से कैप्टिन के स्तर पर। अंतिम 10 वर्षा में मैंने कैप्टिन के स्तर पर सेवा की -

– जिला कमाण्डर के रूप में,
– कमाण्डर ऑफ होमी साईड/रेप और बाल दुरूपयोग के कमाण्डर के रूप में, तथा
– कमाण्डर ऑफ वायस नारकोटिक्स के रूप में।

सेन्ट लुईस में मेरे शैक्षणिक अनुभव केवल काले लोगों के साथ सहयोग के बने थे, हालांकि मेरे धार्मिक संस्कार सभी संस्कृतियों और नस्लों के साथ सहयोग से बने थे। मेरे दादाजी एक पादरी थे और हम सेटिनेल क्रिश्चियन चर्च के सदस्य थे। मेरी युवावस्था अत्यधिक हिंसा के साथ गुजरी, मैं एक 'गुट' से संबंध रखता था और कई सारी लड़ाईयों में भाग लिया, मेरे वातावरण ने मुझे सिखाया कि संघर्ष लड़ाई से सुलझाए जाते हैं।

अप्रेल, 1968 में जब डी किंग की हत्या हुई थी, चार्ल्स एल्फिन सेंट लुईस पुलिस विभाग, मिसौरी, का जासूस था जिसे तीन वर्षो का अनुभव था उसने जुलाई, 1965 को इस विभाग में कार्यभार ग्रहण किया था वह सापेक्ष रूप से कानून क्रियान्वयन में नया था।

एल्फिन ने लिखा कि -

“जब मैं सर्जेन्ट था, मेरी पत्नी और मैं हाई स्कूल के साथ, जहाँ मेरे दोनों बच्चे पढ़ते थे, एक शैक्षणिक संघर्ष में उलझ गए थे। यह संघर्ष एकेडमिक और खेलों से सम्बन्धित था। मेरे दोनों बच्चे हाई स्कूल के लिए तीन खेल खेलते थे - फुटबाल, बेसबाल और बॉस्केटबाल। मेरे परिवार का नियम था कि यदि हमारे बच्चे एकेडमिक्स में अच्छा नहीं करते थे, वे खेलों में भाग नहीं ले सकते थे। एक दिन दोपहर बाद मैंने एक डाक सूचना प्राप्ति की कि मेरे सबसे बड़ा बच्चा एक विषय में अनुत्तीर्ण रहा। हमने उसे फुटबाल टीम से हटा लिया और कई स्कूल कर्मचारियों ने हमें हमारे निर्णय पर पुनर्विचार के लिए याचना की। और यह कहा गया कि आने वाले खेल बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे और उसकी अत्यधिक आवश्यकता थी। पुनर्विचार से मना करने के बाद मैं और मेरी पत्नी लगभग 60 माता-पिताओं की, जो कि गुस्सेबाज थे, बैठक में उपस्थित हुए, सभी ने स्कूल की व्यवस्था में अफ्रीकी-अमेरिकी छात्रों के बीच एकेडमिक्स के बारे में शिकायत की। ”

इस बैठक के दौरान मैं डॉ. बर्नार्ड लफाएट्टे जुनियर से मिला था जिनका एक बच्चा हाई स्कूल में पढ़ता था और वह होली कम्यूनियन के बाप्टिस्ट चर्च का सहयोगी पादरी था। डॉ. लफाएट्टे कमरे में पिछले हिस्से में बैठ गये और गुस्सेल माता-पिताओं को सुना और फिर प्रश्न पूछना शुरू किया। उनके प्रश्नों के आधार पर हम एक रणनीति पर पहुँच गए जिससे स्कूल तंत्र

की समस्याओं का समाधान हो गया। आगामी बैठकों में उसने निरन्तर रूप से उस समूह का, प्रश्न पूछते हुए और सुझाव देते हुए, नेतृत्व किया जब उसे लगता कि सुझाव उपयुक्त होंगे। यह याद करना रूचिकर है कि उस समय उसने उस समूह के लोगों और मुझे कभी भी डॉक्ट्रेट की उपाधि, हार्वर्ड विश्वविद्यालय से प्राप्त करने का जिक्र नहीं किया, न ही उसने डॉ. किंग और नागरिक अधिकार आन्दोलन के असाधारण अनुभवों का जिक्र किया।

बाद में मैंने अध्ययन में उसका नाम पाया कि नागरिक अधिकार आन्दोलन उनके कारण ही महत्त्वपूर्ण बना था।

8.7 किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग

स्कूल के मसले के समाधान के बाद डॉ. लफाएट्टे और चार्ल्स एलपिन निरन्तर कई वर्षो तक समुदाय के मसलों पर साथ-साथ कार्य करते रहे। सन् 1981 में लफाएट्टे ने "फ्रीडम राईड" नामक एक कार्यक्रम का आयोजन किया जो 1961 के मूल "फ्रीडम राईड" के 20 वर्षों के स्मरणोत्सव के रूप में था। इस फ्रीडम राईड के समय ही एलपिन को पता चला कि जो कई वर्षो से उसका मित्र था वह डॉ. बनार्ड लफाएट्टे ही था। जब वहाँ के राजनीतिक नेतृत्व ने शहर का महत्त्वपूर्ण व्यक्ति घोषित किया और एल्फिन ने सुना यह बदल जो कि घट रहे हैं वह अहिंसक रणनीति का ही परिणाम थे। उसने अत्यधिक प्रेरणा का सब कुछ समझने - लड़ाई की पद्धति के बारे में एल्फिन ने बाद में लिखा कि क्या घटित हुआ - "फ्रीडम राईड" के दौरान मैंने डॉ. लफाएट्टे के मित्रों जेम्स फार्मर, सम्माननीय एन्ड्रयू यंग, डोरोथी कॉटन, सी.टी. विवियन, डेविड जोनसन, जॉन लेविस, डॉ. गेविन पैटान, श्रीमती क्रिस्टिन किंग फेरिस, श्रीमती कॉरेट्टा स्कॉट किंग, ब्रेन्डा और लेस चार्टर आदि से प्रश्न पूछे। जब मैं 9 दिनों बाद अटलांटा, (जार्जिया) आ पहुँचा, तब मेरा मन अहिंसा की ओर आकर्षित हो रहा था। हालांकि मेरी इस दर्शन में पर्याप्त समझ नहीं थी। "फ्रीडम राईड" पर मेरे अनुभवों के बाद मैं प्रेरित हुआ और असमंजस में भी पड़ा कि कैसे किंग की अहिंसा का प्रयोग लड़ने में किया जाए।

डॉ. लफाएट्टे जुनियर और मैं काफी करीबी मित्र बन गये और हम निरन्तर समुदाय के मुद्दों पर काम करते रहे। वह, ग्रीष्मकालीन कार्यशाला, के प्रमुख (डीन) थी थे, जो कि वार्षिक रूप से सेन्टर फॉर नानवायलेंट सोशल चेंज, इंक, अटलांटा (जार्जिया) में आयोजित की जाती थी। उसने मुझे प्रोत्साहित किया कि वह एक सप्ताह लम्बी कार्यशाला में पंजीकृत हो और मैंने इन कार्यशालाओं में भाग लेने के लिए पुलिस विभाग से छुट्टियाँ ले ली। आठ वर्षो तक यह चलता रहा। बाद में डॉ. किंग, महात्मा गाँधी और अन्य अहिंसक दार्शनिकों के बारे में व्यापक अध्ययन व किंग सेन्टर की वार्षिक कार्यशालाओं में भाग लेने के पश्चात् यह दर्शन स्पष्ट हो गया।

मेरी परिकल्पना थी कि किंग की अहिंसा का दर्शन और रणनीति पुलिस कार्यो में प्रभावी कौशल बन सकता है। मैंने इस दर्शन को संघर्षो के समाधान में परीक्षण करना शुरू कर दिया। जिनका पुलिस अधिकारी के रूप में कर्तव्य निष्पादन में प्रतिदिन सामना करना पड़ता था। मैंने इसे अधिकारियों के आपसी व पर्यवेक्षकों के साथ अन्त:व्यक्तिक संघर्षो के समाधान में भी इसे लागू करना शुरू किया। मैं डॉ. किंग की अहिंसक प्रतिरोध के बारे में समझ से प्रभावित

था, जहाँ वे अपने आप को संघर्षों में अपनी सहभागिता दिखा कर अपना स्वयं परीक्षण करते रहते थे। इस दर्शन सम्बन्धी बौद्धिक समझ का प्रयोग मैंने वास्तविक व्यक्तिगत संघर्षों में किया और इससे ज्यादा इसका प्रयोग मेरे द्वारा प्रयोग करने से तथा डॉ किंग के लेखन को निरन्तर पढ़ने से इस दर्शन के बारे में हमारी समझ और स्पष्ट होती गई। अहिंसा के मेरे अनुप्रयोगों द्वारा मैं समझ गया था कि " विरोधी के ऊपर जीत हासिल करना संभव है, लेकिन विरोधी की इस पर जीत हासिल करना असंभव है। जो कि किंग की अहिंसा का अंतिम लक्ष्य है।"

मैंने संघर्षों के सभी स्तरों पर इस अवधारणा की निरन्तर परीक्षण किया और वैसे ही मेरे अध्ययन और पुलिस के कार्यों में अहिंसा का प्रयोग किया और जिला कमाण्डर से कमाण्डर ऑफ होमीसाइड एण्ड चाईल्ड अब्यूज टू कमाण्डर टू नारकोटिक्स में मेरा कार्य बदले जाने पर भी किया। मैंने निरन्तर अध्ययन और ज्ञानवर्धन किया। डॉ. लफाएट्टे और डेविड जानसन के संरक्षण में मैंने प्रभावी रूप से निरन्तर इस दर्शन का सम्भावित अपराधियों की पूछताछ में, हिंसा और नारकोटिक्स के मामलों में, संगठित समुदाय को सम्बोधन में, समुदायों की समस्याओं की पहचान और उन पर कार्य करके समुदायों को सशक्तिकरण करने में किया।

जिस रूप में समुदाय के पुलिस कार्य और समुदायोन्मुखी पुलिस कार्य, पुलिस कार्यों में गुंज उठा है। मैंने महसूस किया है कि किंग की अहिंसा ने इस अवधारणा को पूरा किया और संवर्द्धित किया।

8.8 द लफाएट्टे एसोसिएट्स

लफाएट्टे एसोसिएट्स, की स्थापना डॉ. लफाएट्टे और डॉ. एल्फिन ने पुलिस एजेन्सियों को आन्तरिक प्रशिक्षण देकर उनकी क्षमता को बढ़ावा देने हेतु की थी। इस प्रकार प्रशिक्षकों का प्रषिक्षण दृष्टिकोण नामक प्रशिक्षण कार्यक्रम, जो 150 घंटों का था, का निर्माण किया गया इसके प्रमाणीकृत होने के बाद इसे अधिकारियों को प्रस्तुत किया गया। यह उनको दो दिवसीय किंग की अहिंसा के मूल पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए अर्हता देता था। इस उपागम को पुलिस एजेन्सियों ने बहुत अच्छे से लिया और यह इस दर्शन को संस्थागत रूप देने का प्रथम चरण था।

पुलिस अधिकारियों को किंग की अहिंसा का प्रशिक्षण/शिक्षा मूलतः डॉ. लफाएट्टे, डेविड जॉनसन और चार्ल्स एल्फिन ने दी थी। उन्होंने दूसरे अधिकारियों को प्रोत्साहित किया जिन्होंने हमारे साथ सह-प्रशिक्षक के रूप में कार्य करने हेतु प्रशिक्षण प्राप्त किया। प्रत्येक पुलिस प्रशिक्षण में प्रथमदृष्टया इस दर्शन का विरोध किया। उन्होंने कई प्रश्न उठाये और कहा कि अधिकारियों को डॉ. किंग के दर्शन की व्याख्या को पढ़ने की जरूरत है। इस दो दिवसीय मूल पाठ्यक्रम के बाद ज्यादातर अधिकारी वापिस लौट आए। एल्पिन ने विरोध के मुख्य कारणों को इस रूप में संक्षिप्त किया है-

1. 'अहिंसा' शब्द की सही समझ का नहीं होना।
2. वे सोचते हैं, कि यह उनके द्वारा किये गये कार्यों की आलोचना का दूसरा प्रशिक्षण है।

3. वे सोचते हैं कि डॉ. किंग ने श्वेतों को पराजित किया।

सन् 1990 में लगभग 30 पुलिस अधिकारी अलबाने, न्यूयार्क में एकत्रित हुए, वे सार्जेन्ट्स और ऊपर के दर्ज के लोग थे जो अपने संबंधित पुलिस विभाग में प्रशिक्षण देते थे। इस अनुभव के साथ डॉ. लफाएट्टे जूनियर, डेविड जॉनसन और एल्फिन ने एक विषेश रूप की " लॉ एन्फोर्समेन्ट वर्कबुक" विकसित की, जो किंग की अहिंसा में पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु तैयार की गयी थी।

इस प्रशिक्षण पद्धति ने लोगों का ज्यादा ध्यान खींचा - द लफाएट्टे एसोसिएट्स ने अपनी नई पद्धतियों के लिए अमेरिका और अन्य स्थानों पर लोगों का ज्यादा ध्यान खींचा। फ्लोरिडा और मिशिगन राज्यों के अपने ज्यादातर पुलिस अधिकारियों को जिन्हें अब दो घण्टे के किंग की अहिंसा का मूल पाठ्यक्रम को पढ़ाने हेतु प्रमाणित किया।

चार्ल्स एल्फिन ने लिखा - फ्लोरिडा में, द फ्लोरिडा मार्टिन लुथर किंग जूनियर इंस्टीट्यूट ने पुलिस प्रशिक्षण में नेतृत्व ग्रहण किया वहाँ पर वे मैट्रो डाडे पुलिस विभाग के 3000 से ज्यादा पुलिस अधिकारियों ने किंग की अहिंसा में 8 घण्टे का प्रशिक्षण कार्यक्रम सम्पन्न किया। इस मैट्रो डाडे पुलिस विभाग लगभग 25 निष्ठावान अधिकारी रखता है जो दो दिवसीय किंग की अहिंसा पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए प्राधिकृत है, 5 अधिकारी मियामी शहर के पुलिस विभाग में और 4 अधिकारी तल्लाहसे (Tallahassee) पुलिस विभाग में भी थे। मिशीगन राज्य में द न्यू डेटरोइट (Detroit) इंक ने पुलिस प्रशिक्षण का नेतृत्व किया, जहाँ लगभग 70 अधिकारी किंग की अहिंसा में दो दिवसीय पाठ्यक्रम में प्रशिक्षण हेतु प्राधिकृत हैं। यहाँ रोडे आइलैण्ड और साउथ केरोलिना की क्रिमिनल जस्टिस एकेडमी, में भी पुलिस प्रशिक्षकों को प्राधिकृत किया गया है। इस प्रकार कुल लगभग 150 पुलिस अधिकारी सम्पूर्ण संयुक्त राज्य अमेरिका में पुलिस अधिकारियों को किंग की अहिंसा पढ़ाने हेतु प्राधिकृत हैं।

8.9 अहिंसा के मूलभूत सिद्धान्त

डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर ने "स्ट्राइड टुवर्डस फ्रीडम" (हार्पर एण्ड रॉ, 1958) के चौथे अध्याय "पिलाग्रिमेन टू नॉनवायलेंस" में अहिंसा के छः मूलभूत सिद्धान्त बताए हैं जो निम्नलिखित प्रकार से है -

पहला सिद्धान्त : अहिंसा साहसी लोगों की जीवन शैली है।

- यह अशुभ के प्रति सक्रिय अहिंसक प्रतिरोध है।
- यह उद्यमी आध्यात्मिकता, मानसिकता एवं भावुकता है।
- यह हमेशा विरोधी को उसकी न्यायपरायणता के लिए समझाती रहती है।
- यह अनाक्रमण की स्थिति में ही उसके शत्रु के प्रति निष्क्रिय होती है।

दूसरा सिद्धान्त : अहिंसा मित्रता और बोध को जीतना चाहती है।

- अहिंसा का अन्तिम परिणाम मुक्ति और समाधान है।
- अहिंसा का उद्देश्य बहुत प्रेमी समुदाय का सृजन करना है।

तीसरा सिद्धान्त : अहिंसा लोगों को नहीं अन्याय को परास्त करती है।

– अहिंसा मानती है कि अशुभ कर्ता भी उससे पीड़ित होते हैं।
– अहिंसक प्रतिरोधक लोगों को नहीं अन्याय को परास्त करता है।

चौथा सिद्धान्त : अहिंसा की धारणा है कि दुःख या पीड़ा ही सिखा सकती है तथा बदलाव ला सकती है।

– अहिंसा बिना प्रतिकार के पीड़ा को स्वीकारती है।
– अहिंसा हिंसा को भी स्वीकारती है यदि आवश्यक हुआ तो, लेकिन यह कभी भी पीड़ा नहीं पहुँचायेगी।
– अहिंसा सुखीपूर्वक इसके कृत्यों के परिणामों को स्वीकारती है।
– अनुपार्जित पीड़ा मुक्ति है और यह व्यापक शैक्षणिक एवं बदलाव की संभावना रखती है।
– पीड़ा शत्रु के रूपान्तरण की शक्ति रखती है जब विवेक असफल हो जाए।

पाँचवां सिद्धान्त - अहिंसा घृणा के बजाय प्रेम का चुनाव करती है।

– अहिंसा शारीरिक और मानसिक हिंसा का प्रतिरोध करती है।
– अहिंसा एक स्वतः प्रवर्तित, अप्रेरित निस्वार्थ तथा सृजनात्मक प्रेम है।
– अहिंसक प्रेम एक अच्छी जानकारी देती है कि उसके बदले में सम्भवतः, हालांकि कम ही संभावना है, वैर या युद्ध का प्रतिफल मिलेगा।
– अहिंसक प्रेम सक्रिय होता है, निष्क्रिय नहीं।
– अहिंसक प्रेम समुदाय जीर्णोद्धार के क्रम में माफ करने की कभी न समाप्त होने वाली योग्यता का नाम है।
– अहिंसक प्रेम घृणाकर्ता के स्तर में डूबता नहीं है।
– शत्रु के प्रति प्रेम का प्रदर्शन अपने-आप के प्रति प्रेम के प्रदर्शन जितना ही होता है।
– प्रेम समुदायों का जीर्णोद्धार करता है और अन्याय का प्रतिरोध करता है।
– अहिंसा इस तथ्य को भी मान्यता प्रदान करती है कि सम्पूर्ण जीवन अन्तर्सम्बन्धित है।

छठा सिद्धान्त : अहिंसा का विश्वास है कि ब्रह्माण्ड न्याय की ओर रहता है1

– अहिंसक प्रतिरोधक का यह पक्का विश्वास होता है कि अन्ततः न्याय की ही जीत होगी।
– अहिंसा का विश्वास है कि ईश्वर न्याय का देवता है।

8.10 पुलिस कार्यों में किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग सम्बन्धी कुछ टिप्पणियाँ

सेंट लुईस, मिसौरी, के पुलिस प्रमुख रोनाल्ड हेन्डरसर का कहना है कि "मैंने कैप्टिन एल्फिन के साथ सेंट लुईस पुलिस विभाग में काम किया और समुदाय के संचालन और संघर्षों के प्रबन्धन में इस दर्शन के प्रभावी प्रयोग को भी देखा। मैंने इस दर्शन के प्रयोग को मान्यता प्रदान की है। यह दर्शन दिवारें नहीं खींचता बल्कि जोड़ने का काम करता है। मुझे कैप्टिन

एल्फिन का यह कहना याद है कि "हमें उन पर विजय हासिल करनी है न कि उन्हें हम पर विजय हासिल करनी है। मैं आजकल इस दर्शन का अभ्यास कर रहा हूँ और कार्य भी।"

डेट्रोरईट, मिशीगन के पुलिस विभाग के लेफ्टिनेंट टोरी क्विन्न का कहना है कि "मैं पिछले 3 वर्षों से किंग की अहिंसा में प्रमाणित प्रशिक्षक हूँ और इस दर्शन को समुदायों के संघर्षों के समाधान में तथा पुलिस अधिकारियों के मेरे प्रबन्धन में अनुप्रयुक्त किया। मैं किंग के दर्शन के प्रति प्रतिबद्ध हूँ और मेरे आगामी पुलिस अधिकारियों को निरन्तर इसे पढ़ाने का इरादा है।"

रोड़े आइलैण्ड के प्रोविडेन्स पुलिस डिपार्टमेंट के सर्जेन्ट टोन्या किंग कहते हैं कि "मैं इस दर्शन के प्रति बढ़ा संशयवादी था। जब मैंने इसके बारे में पहली बार सुना और ऐसे ही मेरी कक्षा के ज्यादातर अधिकारी भी, जिनको यह प्रस्तुत की गई थी। जिस प्रकार मैंने इसके बारे में सुना था, उसी रूप में मैंने यह भी देखना शुरू कर दिया कि यह पुलिस कार्यों के सभी स्तरों पर कैसे लागू की जा सकती है। मेरे को प्रमाणित किए जाने के बाद समुदायों के संघर्षों तथा पुलिस के सभी स्तरों पर इस दर्शन का प्रयोग किया। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि 21वीं सदी की पुलिस के लिए यह जरूरी है।"

फ्लोरिडा की मेट्रो-डाडे ट्रेनिंग एकेडमी के सार्जेन्ट ग्लेण्डा टी. वाईनगार्ड का कहना है - "किंग की अहिंसा में प्रमाण-पत्र हासिल करने के बाद से, इस दर्शन ने मेरे व्यवसाय और निजी जीवन को संवर्द्धित व समृद्ध किया है। मेरे समक्ष ऐसे कई अवसर आए थे, जब मैंने नाजुक संघर्षों के दौर में पुलिस अधिकारियों और समुदाय के साथ इस दर्शन का अनुप्रयोग किया। ट्रेनिंग एकेडमी का काम स्व-निर्दिष्ट होने के बाद मेरे को ट्रेनिंग प्राप्त करने के लिए आने वाले अधिकारियों को देखने-समझने का अवसर मिला, मैंने सभी संस्कृतियों के अधिकारियों पर इसका असर अनुभव किया।"

साउथ केरोलिना क्रिमिनल जस्टिस एकेडमी के अधिकारी लाइन्ने केन का कहना है कि "मैं किंग की अहिंसा में प्रशिक्षण या प्रशिक्षक के रूप में नहीं जाना जाता था। मैंने शुरू के कुछ दिनों तक बहुत प्रतिरोध किया। बाद में मैंने इस दर्शन को सुनना और समझना शुरू किया, मैंने यह भी देखना शुरू किया कि इसको पुलिस में कैसे लागू किया जा सकता था। सभी पुलिस अधिकारियों को इस दर्शन में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, यह हमें भी सभी संघर्षों के समाधान में सहायता करती है एक पद्धति के साथ जो कि मेरे लिए सफल रही है।

हम 21वीं सदी की ओर बढ़ रहे हैं। क्या हम वही गलती नहीं करने जा रहे हैं जो 20वीं सदी में की थी? पुलिस में अहिंसा के भावी प्रभाव सामने आएंगे? क्या हम अहिंसक सरकार के सृजन के बिना एक अहिंसक पुलिस का सृजन कर सकते हैं? क्या हम ऐसी अहिंसक पुलिस का सृजन कर सकते हैं जो शिक्षण तन्त्र मैं अहिंसा का पाठ पढ़े बिना, प्रभावी होगी? टेलीविजन, कार्टूनर्स, मुवीज, समाचार, व्यक्ति एवं घटना प्रधान हास्य नाटिकाऐं आदि पर दिखाए जाने वाली हिंसा लोगों के व्यवहार और मानसिक वृत्ति को कितनी मात्रा में प्रभावित करती है?

किंग की अहिंसा भविष्य के लिए काफी संभावनाऐं रखती हैं, विशेषकर पुलिस में। हालांकि पुलिस ही अकेला क्षेत्र नहीं होगा बल्कि स्कूलों, घरों, गलियों एवं जीवन के प्रत्येक स्तर पर अहिंसा का अस्तित्व हो, जो कि डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर का सपना था।

8.11 निष्कर्ष

गाँधी के समान ही मार्टिन लुथर किंग जुनियर ने अहिंसा को ' वीरता की पहचान माना बजाय कायरता की श्वेत विशेषता के। ' किंग ने इस तर्क को इंगित किया कि अहिंसा कायरता को नकारना है, वीरता इसकी शक्ति है। प्राय: यह खतरनाक या संकटपूर्ण कार्य हैं यह उसके शब्दाडम्बर मात्र है। जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण - मोटगोमरी बस बहिष्कार, धरने, फ्रीडम राइट्स और अंतिम बर्मिंघम है। अहिंसक प्रत्यक्ष कार्यवाही के सिद्धान्त की विजय एक वास्तविकता थी। इस सिद्धान्त या पद्धति में विश्वास बर्मिंघम में परिपक्व हु आ। परिणामस्वरूप नागरिक-अधिकार के संघर्ष के सम्पूर्ण प्रतिबिम्ब ने ही मूलभूत बदलाव कराए होंगे। अहिंसा इसके परीक्षण में सफल हु ई। दक्षिण के वियोजन की एकीकृत शक्ति ही वह हथौड़ा थी। बर्मिंघम अहरू था।

किंग का प्रशिक्षण कार्यक्रम जो कि अब डॉ. बर्नार्ड लफाएट्टे और कैप्टिन चार्ल्स एल्फिन द्वारा विश्व स्तर पर विकसित व संगठित किया गया। यह उनकी उनके नेता डॉ. मार्टिन लुथर किंग जुनियर के प्रति भावपूर्ण श्रद्धांजलि का प्रमाण है।

8.12 अभ्यास प्रश्न

1. किंग की अहिंसा से आप क्या समझते हैं?
2. डॉ. किंग की प्रमुख उपलब्धियां क्या रही थी?
3. किंग की अहिंसा के दर्शन का वर्णन कीजिए।
4. किंग की अहिंसा के विभिन्न सिद्धान्त व चरण कौन-कौन से हैं?
5. किंग की अहिंसा के अनुप्रयोग का वर्णन कीजिए।

8.13 संदर्भ ग्रन्थ

- वेबर, थॉमस, " गाँधी : एज डिसिप्लिन एण्ड मेंन्टॉर, " केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 2007.
- फिशर, लुईस, " द लाईफ ऑफ महात्मा गाँधीं", द हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006.
- हार्डिमेन, डेविड, " गाँधी : इन हिज टाइम एण्ड वन्स", परमानेन्ट्स ब्लेक, नई दिल्ली, 2005.

इकाई - 9

ग्रीन पीस आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 अभियान के आधार स्तम्भ
9.3 ग्रीनपीस आन्दोलन का लक्ष्य
9.4 ग्रीनपीस आन्दोलन की प्राथमिकताएं
9.5 1971 से 2007 तक के विभिन्न अभियान व परिणाम
9.6 औपचारिक वैश्विक संगठन का निर्माण
9.7 सारांश
9.8 अभ्यास प्रश्न
9.9 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे :-

– ग्रीन पीस आन्दोलन के बारे में
– ग्रीन पीस आन्दोलन की प्राथमिकताओं के बारे में
– विभिन्न ग्रीन पीस अभियान एवं उसके परिणामों के बारे में
– ग्रीन पीस आन्दोलन के महत्व के बारे में

9.1 प्रस्तावना

हरित शान्ति (ग्रीनपीस) अभियान का जन्म शान्ति आन्दोलन और परमाणविक निशस्त्रीकरण अभियान के फलस्वरूप हुआ। इसका नामकरण सन् 1969 में अमेरिका द्वारा किये गये परमाणु परीक्षण के विरोध में उपयोग में लाए गए एक नारे से हुआ। ग्रीनपीस आन्दोलन ने अमेरिका द्वारा प्रस्तावित परमाणु परीक्षण का एक जुटता से विरोध किया।

ग्रीनपीस आन्दोलन के अधिकतर प्रारंभिक सदस्य "सोसायटी ऑफ फेन्डस" नाम की संस्था के सदस्य थे। यह संस्था सियरा क्लब से सम्बन्धित थी किन्तु इसमें जिम बोहलेन जो कि संस्था के सदस्य थे, उनके द्वारा बिना किसी अधिकार के पत्रकारों को यह कहने कि 'परमाणु परीक्षण का विरोध करने के लिए एक बोट एम चिटका जाएगी के फलस्वरूप अपना समर्थन वापस ले लिया।

ग्रीनपीस अभियान के फ्लेशिंग का नाम ' द रेनबो वारियर ' एक नार्थ अमेरिका कथा से लिया गया जिसमें मानवता के लालच के कारण पृथ्वी बीमार हो गई थी। उस समय लोगों का एक दल जो वारियस आफ द रेनबो कहलाता था, ने पृथ्वी की रक्षा की। हरित और शान्तिपूर्ण

विश्व का स्वप्न ले कर कार्यकर्त्ताओं का एक दल सन् 1971 में वेन्क्रुबर कनाडा से एक बोट में रवाना हुआ। ये कार्यकर्त्ता जो ग्रीनपीस के संस्थापक थे, वे विश्वास करते थे कि कुछ व्यक्ति भी प्रयास करने पर परिवर्तन ला सकते हैं। उनका मिशन था - अमेरिका द्वारा किये गये भूमिगत परमाणु परीक्षण का गवहा बनाना, यह परमाणु परीक्षण एमचिटका में किया गया था जो तीन हजार से अधिक प्रजातियों का निवास स्थान था। इन सभी प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में था। यद्यपि एमचिटका पहुँचने से पहले इस बोट (नाव) को रोक लिया गया, इस यात्रा ने बहुत अधिक जनरूचि उत्पन्न कर दी। अमेरिका ने फिर भी परमाणु परीक्षण किया किन्तु बुद्धिमत्ता पूर्ण बात सुनी गई। एमचिटका में परमाणु परीक्षण उसी वर्ष रोक दिये गये और इस स्थान को पक्षी अभ्यारण्य घोषित कर दिया गया। आज ग्रीनपीस एक अन्तर्राष्ट्रिय संगठन है जिसकी प्राथमिकता विश्व के पर्यावरण की सुरक्षा है।

संगठन का ध्यान बाद में अन्य पर्यावरणीय मुद्दों पर भी गया जैसे व्हेल मछली का शिकार, गहरे समुद्रों में समुद्री जीवों अस्तित्व इसलिए है क्योंकि पृथ्वी के पर्यावरण की रक्षा में इसका योगदान महत्त्वपूर्ण है। पृथ्वी को अपनी समस्याओं के समाधान चाहिए। उसे परिवर्तन और अपने हित में किये गये कार्यो की आवश्यकता है। ग्रीनपीस आन्दोलन ग्रीनपार्टी (जो जर्मन गणराज्य का एक राजनैतिक दल था) से भी सम्बन्धित माना जाता है। दल की भूमिका वैश्विक पर्यावरणीय आन्दोलन जो 1950 में पर्यावरणीय प्रदूषण के विरूद्ध उभरा एक जनान्दोलन था में काफी महत्त्वपूर्ण थी। अमेरिकी वैज्ञानिकों ने इस आन्दोलन का सर्मथन किया। 1980 तक इसके दृष्टिकोण में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये और इसकी गतिविधियों महिला आन्दोलनों, धार्मिक आन्दोलनों व्यापारिक संगठनों, सामाजिक प्रजातन्त्र वादियों और साम्यवादियों के आन्दोलनों तक विस्तृत हो गई।

ग्रीनपीस फाउन्डेशन के प्रथम अध्यक्ष बेन मेटकेपन बने और उनकी पत्नी डोरीथी ने कई वर्षो तक पत्रकारों से सामंजस्य स्थापित किया। डॉ. पेट्रिक मूर जो एक ख्याति प्राप्त पर्यावरणविद् थे, नौ वर्षों तक कनाडा ग्रीनपीस के अध्यक्ष रहे और सात वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय ग्रीनपीस के निदेशक रहे। केप्टन पॉल वाटसन प्रारम्भिक दिनों में प्रथम निदेशक रहे, उन्होंने समुद्री जीवों को बचाने के लिए विश्व में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

9.2 अभियान के आधार स्तम्भ

यह अभियान विचार, पर्यावरण की रक्षा, सामाजिक प्रजातन्त्र की स्थापना और अंहिसा के चार स्तम्भों पर आधारित है। यह न केवल अभियान के स्तम्भों का सापेक्षिक महत्व बताते हैं बल्कि उसके विकास के विभिन्न चरणों को भी प्रदर्शित करते हैं

यह एक महत्त्वपूर्ण शान्ति अभियान है जिसका अस्त्रों का विरोध करना ही नहीं है बल्कि इसके कुछ अन्य विचारणीय बिन्दु भी हैं, जो पृथ्वी पर शान्ति की स्थापना पर्यावरणीय विनाश से मुक्ति और वैश्विक समाज की स्थापना में सहयोगी है -

1. नि:शस्त्रीकरण की दिशा में पहला कदम।
2. नयी हथियार प्रणालियों का उपयोग न होने देना।

3. निशस्त्रीकरण के लिए सम्पूर्ण विश्व में वार्ताएँ करना।

4. नाटो की मध्यम दूरी की मिसाईलों का उत्पादन और उपयोग बन्द करना। वारसा संधि के अनुसार मध्यम दूरी के राकेट नष्ट करना।

5. पूर्वी व पश्चिमी यूरोप में हथियार रहित क्षेत्र का निर्माण करना।

6. विभिन्न देशों से विदेशी सेना हटाना।

7. परमाणु प्रौद्योगिकी और परमाणु इकाईयों का निर्यात बन्द करना।

8. जर्मन गणराज्य में हथियार उद्योग नष्ट करना।

9. अहिंसक कार्यवाही के लिए शिक्षा योजनाएँ बनाना।

ग्रीनपीस के विभिन्न देशों में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय केन्द्र हैं। इसके अलावा अन्तर्राष्ट्रीय ग्रीनपीस का सम्पूर्ण विश्व में अस्तित्व एवं महत्व है। इस वैदिक संगठन को विभिन्न व्यक्तिगत योगदानों से एवं विभिन्न जनहित संस्थाओं से लगभग 2.8 मिलियन डालर की आय हो जाती है। ग्रीनपीस एक स्वतंत्र वैश्विक संगठन है जो दृष्टिकोण और व्यवहार में परिवर्तन लाने का, पर्यावरण की सुरक्षा करने का और शान्ति को बढ़ावा देने का कार्य करता है।

9.3 ग्रीनपीस आन्दोलन का लक्ष्य

1. ग्रीनपीस परिवर्तन, पर्यावरण की सुरक्षा और शान्ति को बढ़ावा देने का कार्य करता है।

2. ऊर्जा के क्षेत्र में क्रान्ति लाना ताकि जलवायु परिवर्तन से बचा जा सके।

3. जलीय जन्तुओं का अनुचित शिकार रोककर और सम्पूर्ण विश्व में उनके लिए सुरक्षित क्षेत्रों का निर्माण कर समुद्रों की रक्षा करना।

4. बचे हुए जंगलों और पशुओं, पौधों और उन पर निर्भर मनुष्यों की रक्षा करना।

5. नि:शस्त्रीकरण व शान्ति स्थापना के लिए कार्य करना।

6. जहरीले पदार्थों से मुक्त भविष्य के लिए घातक रसायनों का उचित और सुरक्षित निपटारा करना।

7. सामाजिक एवं पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित कृषि विधियों का उपयोग कर कृषि का विकास करना।

ग्रीनपीस एक वैश्विक पर्यावरणीय संगठन है जिसमें ग्रीनपीस इन्टरनेशनल एम्सटर्डम में स्थित है इसके अलावा दुनिया के 40 से अधिक देशों में 28 राष्ट्रीय व क्षेत्रीय केन्द्र हैं। यह राष्ट्रीय व क्षेत्रीय केन्द्र विभिन्न वैश्विक अभियानों को चलाने के लिए स्वायत्तता प्राप्त है। यह स्थानीय स्तर पर दानदाताओं से आर्थिक सहयोग प्राप्त करते हैं। राष्ट्रीय व क्षेत्रीय केन्द्र स्वयं सेवकों द्वारा संचालित स्थानीय समूहों की मदद करते हैं। स्थानीय समूह अपने क्षेत्र में विभिन्न अभियानों में भाग लेते है और अन्यत्र बड़े प्रदर्शनों व गतिविधियों के लिए जागृति उत्पन्न करते हैं। लाखों ऐसे समर्थक जो स्थानीय समूहों से नहीं जुड़े हैं वे आर्थिक मदद देकर और नागरिकों के रूप में विभिन्न अभियानों में हिस्सा लेकर ग्रीनपीस का समर्थन करते हैं। अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने के लिए ग्रीनपीस सरकारों या अन्य बड़े उद्योगों से दान नहीं लेती है बल्कि व्यक्तिगत समर्थकों और फाउंडेशन द्वारा दिये गये अनुदान पर उसकी निर्भरता है।

9.4 ग्रीनपीस आन्दोलन की प्राथमिकताएं

वर्तमान में संगठन कई पर्यावरणीय मुद्दों पर कार्य कर रहा है वर्तमान में उसका ध्यान वैश्विक उष्णता और समुद्रों एवं वनों की सुरक्षा पर है। पारम्परिक पर्यावरणीय संगठन तरीकों के अलावा ग्रीनपीस अपने कई अभियानों में अहिंसक प्रत्यक्ष कार्यवाही भी करती है। मछलियों का अधिक शिकार, पर्यावरणीय ऊर्जा के खतरों जैसे हानिकारक विकिरण और परमाणविक विस्तार के अलावा ग्रीनपीस वैकल्पिक समाधानों जैसे - सुरक्षित जलीय क्षेत्रों और नवीनीकरण योग्य ऊर्जा जैसे अभियानों को भी चलाती है।

ग्रीनपीस किन्हीं विशेष पर्यावरणीय, समस्याओं की और ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रत्यक्ष कार्यवाही भी करता है। उदाहरण के लिए रेडियोधर्मी कचरे का रूप धारण कर परमाणवीय केन्द्रों को नष्ट करने के लिए प्रार्थना करते हैं। वर्तमान में ग्रीनपीस एक अभियान प्रोजेक्ट हाट सीट, चला रही है जिसका उद्देश्य अमेरिका पर वैश्विक उष्णता को रोकने के लिए दबाव बनाता है। इसकी दूसरी पहलों में कम ईधन खर्च करने वाली कार स्माईल बनाता है।

वर्तमान प्राथमिकताएं

1 जलवायु परिवर्तन (वैश्विक उष्णता को रोकना)

2 समुद्रों को सुरक्षित रखना।

3 प्राचीन जंगलों को बचाना।

4 शान्ति और परमाणु नि:शस्त्रीकरण।

5 कृषि का विकास।

6 जहरीले रसायनों को समाप्त करना।

9.5 सन् 1971 से 2007 तक के विभिन्न अभियान व उनके परिणाम

सन् 1971 से 2007 के बीच आन्दोलनों व विभिन्न अभियान केवल पर्यावरणीय मुद्दों से ही सम्बन्धित नहीं ये बल्कि मानवता व पशुओं के उचित विकास के लिए भी थे। समय-समय पर विभिन्न मुद्दे उठाकर आन्दोलन ने विश्व को बताया कि अहिंसक और शांतिपूर्ण तरीकों से भी अपेक्षित परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं।

1972 - प्रथम ग्रीनपीस कार्यवाही के बाद अमेरिका ने एमचीटका द्‌वीप पर परमाणु परीक्षण बन्द किये।

1975 - परीक्षण स्थल पर ग्रीनपीस विरोध के बाद फ्रांस ने दक्षिण प्रशांत क्षेत्र में परीक्षण बन्द किये।

1978 - ग्रीनपीस कार्यवाही के परिणाम स्वरूप ओरकनी आरलैण्ड (स्काटलैण्ड) में ग्रेसील मछलियों के शिकार पर रोक लगी।

1982 - कनाडा में ग्रीनपीस विरोध के बाद सील मछली की खाल के आयात पर रोक लगा दी गई।

1983 - लंदन सम्मेलन में समुद्र में रेडियोधर्मी कचरा फैंकने पर पाबन्दी लगा दी गई।

1985 - दक्षिण प्रशान्त में पुन: फ्रांस द्वारा परमाणु परीक्षण अन्तर्राष्ट्रीय विवाद का कारण बना।

1988 - ग्रीनपीस के प्रयासों के फलस्वरूप लंदन सम्मेलन में ओरगेनों क्लोरिक कचरे को समुद्र में डालने पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

1989 - संयुक्त राष्ट्र ने गहरे समुद्र में मछली पकड़ने पर ग्रीनपीस के प्रयासों के फलस्वरूप रोक लगा दी।

1991 - ग्रीनपीस ने डर सपीगेल के क्लोरिन मुक्त संस्करण का उत्पादन करके क्लोरिन बिलचिंग का विरोध किया।

1991 - अंटार्कटिक संधि पर हस्ताक्षर करने वाले 39 देशों ने महाद्वीप में खनन पर रोक लगा दी। और महाद्वीप को शान्तिपूर्ण वैज्ञानिक उद्देश्यों के लिए उपयोग में लेने का निर्णय लिया।

1992 - गहरे समुद्र में मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध शुरू हुआ।

1992 - फ्रांस में मसरोआ अटोल में उस वर्ष के परमाणु परीक्षणों का निरस्त कर दिया।

1993 - लंदन सम्मेलन में समुद्र में रेडियोधर्मी व औद्योगिक कचरा डालने पर हमेशा के लिए पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

1994 - आर्थिक सहयोग और विकास संगठन से गैर सदस्य देशों का जहरीले कचरे का व्यापार ग्रीनपीस विश्व के सामने लाया गया, जिसके परिणामस्वरूप इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

1994 - अंटार्कटिक व्हेल अभ्यारण्य जो फ्रांस द्वारा प्रस्तावित एवं ग्रीनपीस द्वारा समर्थित था उसे अन्तर्राष्ट्रीय व्हेलींग कमीशन की मान्यता प्राप्त हुई।

1995 - ग्रीनपीस के समर्थन से यूनेस्को ने रूस के कोमी जंगल को विश्व विरासत घोषित किया।

1995 - फ्रांस द्वारा परमाणु परीक्षण पर ग्रीनपीस द्वारा की गई कार्यवाही ने अन्तर्राष्ट्रीय ध्यान आकृष्ट किया। 7 मिलियन से ज्यादा लोगों ने फ्रांस को परमाणु परीक्षण करने से रोकने के लिए हस्ताक्षर किये। फ्रांस, इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस और चीन में सीटीबीटी परमाणु परीक्षण निषेध संधि पर हस्ताक्षर करने का वचन दिया।

1996 - परमाणु परीक्षण निषेध संधि (सीटीबीटी) को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मान्यता प्राप्त।

1997 - ग्रीनपीस को ग्रीनफ्रीज नामक ओजोन मुक्त घरेलु फ्रीज बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा विशेष पुरस्कार दिया गया।

1997 - क्योटो संधि द्वारा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने का प्रयास किया गया।

1988 - तेल कंपनी शैल अपनी इकाई द ब्रेन्ट स्पार को समुद्र से जमीन पर लाने के लिए तैयार हो गई। ग्रीनपीस इसके लिए तैयार हो गई।

1998 - अन्टार्कटिक संधि का पर्यावरण संबंधी नियम लागू हुआ।

1999 - जापान को दक्षिणी ब्लुफीन टुना में प्रायोगिक रूप से मछली पकड़ने से रोका गया।

1999 - नौ देशों ने बच्चों के खिलौने बनाने के काम आने वाले पॉलीविनाइन क्लोराइड में खतरनाक रसायनों के उपयोग पर रोक लगा दी और यूरोपीय यूनियन ने पीवीसी के खिलौनों पर आवश्यक प्रतिबन्ध लगा दिया।

2000 - मोंट्रियल में मान्यता प्राप्त जैव सुरक्षा नियम जिसका उद्देश्य पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य की सैनेटिक रूप से तैयार जीवों से रक्षा करना है, को पूर्ण रूप स्वीकार किया गया।

2000 - टकी योजना थी कि वह 2020 तक 10 परमाणु रियेक्टर बना लेगा। यह योजना ग्रीनपीस के आठ साल लम्बे अभियान के फलस्वरूप निरस्त हो गई। पश्चिम की परमाणु कम्पनीयों के लिए चीन एकमात्र बाजार बचा है।

2000-2001 - यूरोपीय व्यापारियों, खाद्य उत्पादकों और बहुराष्ट्रीय ईकाईयों ने जेनेटिक रूप में संशोधित वस्तुओं का उत्पादन बन्द कर दिया। ग्रीनपीस उत्पादों का परीक्षण करता है, भोज्य पदार्थो के बारे में जानकारी व नीतियाँ इकट्ठा करता है, और उनमें प्रदूषण के प्रकरणों को सामने लाता है।

2001 - कई वर्षों की वार्ता और ग्रीनपीस के दबाव के बाद जहरीले रसायनों को नष्ट करने के लिए एक वैश्विक समझौता हुआ यह मई 2001 में अस्तित्व में आया जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

2001 - सितम्बर में ग्रीनपीस आन्दोलन 30 वर्ष का हो गया यह पर्यावरणीय समूह स्वयं सेवकों के एक छोटे से संगठन से बढ़कर एक अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय संगठन के रूप ले चुका है जिसके 30 देशों में केन्द्र हैं। हमेशा की तरह ग्रीनपीस प्रतिबद्ध सेवा और विस्तृत जनसमर्थन के कारण आगे बढ़ रहा है।

2002 - जापान के बाद यूरोपीयन यूनियन ने जलवायु परिवर्तन पर क्योटो प्रोटोकॉल में विश्वास जताया।

2002 - ब्राजील ने महोगनी के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया। यह अवैधानिक लकडी का व्यापार था।

7 जनवरी 2003 - डेनमार्क में मेकडोनल्ड को झुकना पड़ा और उसने पहला रेस्टोरेन्ट खोला जिसमें प्रशीतन के लिए जलवायु को नुकसान पहुँचाने वाले रसायनों का प्रयोग नहीं किया गया। तीन वर्ष पहले इसी प्रकार के एक निर्णय ने कोकाकोला को HFC और HCFC के प्रयोग को धीरे धीरे बन्द करने को कहा गया।

15 फरवरी 2003 - दुनिया भर के 30 मिलियन लोगों ने युद्ध विरोधी प्रदर्शन किया। मानवता के इतिहास में यह पहला विशाल विरोध प्रदर्शन था।

मई 2003 - ग्रीनपीस के प्रयासों से लाइबेरिया में अवैध वृक्षों की कटाई पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रतिबन्ध लगाया।

अगस्त 2003 - अमेजन के लोगों ने अपने 18 वर्ष पुराने अभियान के फलस्वरूप अपने क्षेत्र को वृक्षों की कटाई से मुक्त क्षेत्र घोषित किया।

18 फरवरी 2004 - ग्रीनपीस और अन्य पर्यावरणीय संगठनों के प्रयासों के फलस्वरूप स्टाकहोम संधि अस्तित्व में आई, जिसका मुख्य बिन्दु था समस्त जैविक प्रदूषण कारको को नष्ट करना।

31 मार्च 2004 - इंग्लैण्ड सरकार के जेनेटिक रूप से संशोधित मक्का के उत्पादन की अनुमति देने से उत्पन्न विवाद के फलस्वरूप जेनेटिक रूप में संशोधित मक्का का उत्पादन करने वाली एकमात्र कंपनी ने अपना प्रार्थना पत्र वापस ले लिया।

2 अप्रैल 2004 - संयुक्त राष्ट्र की इन्टनेशनल मेरीटाईम आर्गनाइजेशन (IMO) ने बाल्टिक सागर को " विशेष रूप से संवेदनशील समुद्री क्षेत्र घोषित किया। ग्रीनपीस ने इसके लिए कई वर्षो तक वकालत की। इसके फलस्वरूप तेल के टैंकरों और खतरनाक समान के लदे जहाजों का आवाजाही पर कठोर प्रतिबन्ध लग गए।

1 जून 2004 - आइसलेण्ड ने अपनी 500 मिंक, सेई और फिन व्हेल मछलियों को मारने की योजना वापस ले ली।

10 जून 2004 - ग्रीनपीस की पहल कनाडा की उपपत्रिकाओं के प्रकाशकों ने वृक्षों से बने कागज का इस्तेमाल न करने की शपथ ली।

17 जून 2004 - इलेक्ट्रॉनिक समान के बड़े उत्पादक सेमसंग ने अपने उत्पादों में हानिकारक रसायनों का उपयोग बन्द करने की घोषणा की।

22 जून 2004 - यूनीलिवर, कोकाकोला मेकडोनल्ड ने जलवायु को क्षति पहुँचाने वाले रसायनों को अपने प्रशीतक उपकरणों में प्रयोग बन्द करने का वादा किया। इसके परिणामस्वरूप ग्रीनपीस के ग्रीनफ्रीज का व्यापक उपयोग शुरू हुआ। यूरोप, चीन, जापान व भारत के सभी बड़े उत्पादक ग्रीन फ्रीज का निर्माण करने लगे।

20 जुलाई 2004 - क्वींसलेण्ड एनर्जी रिर्सोस में आस्ट्रेलिया में शेल तेल परियोजना को समाप्त करने का निर्णय लिया। यह ग्रीनहाऊस प्रभाव पैदा कर रहा था जो पर्यावरण के लिए नुकसान दायक है।

1 सितम्बर 2004 - यूरोप की फोर्ड कम्पनी ने अपनी ईधन बचाने व बिजली से चलने वाली थींक सिटी कारों को बन्द करने का निर्णय वापस लिया। बिजली से चलने वाली कारें प्रदूषणविहिन होती हैं।

30 सितम्बर 2004 - पुर्नचक्रीकरण के लिए अयोग्य प्लास्टिक बोतलों के प्रयोग को रोक दिया गया।

22 अक्टूबर 2004 - रूस ने क्योटा प्रोटोकॉल मान कर वैश्विक उष्णता कम करने में सहयोग किया यह ग्रीनपीस और अन्य पर्यावरणीय समूहों की बड़ी सफलता थी।

29 अक्टूबर 2004 - जहाजों को नष्ट करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय समझौता किया गया। जिसके अनुसार जहाजों के कचरे का हानि रहित निष्पादन किया जा सके।

29 अक्टूबर 2004 - इंग्लैण्ड का MO प्रकाशन पहला ऐसा प्रकाशन बना जिसने ग्रीनपीस पुस्तक अभियान का हिस्सा बनना स्वीकार किया। वे अपनी पुस्तकें पुनर्चक्रीकृत कागज पर ही मुद्रित करेगें।

4 नवम्बर 2004 - बेयर ने ग्रीनपीस इण्डिया को विश्वास दिलाया कि जेनेटिक रूप में संशोधित फसलों की सारी परियोजनाएँ बन्द कर दी हैं। यह ग्रीनपीस के प्रयासों से ही सम्भव हो सका।

11 नवम्बर 2004 - ब्राजील सरकार ने वृक्षों की अवैध कटाई करने वाले और सोयाबीन और मांस का व्यापार करने वाले विरोध के बावजूद दो बड़े सुरक्षित अभ्यारण्य क्षेत्र घोषित किये।

22 मार्च 2005 - फोटोकॉपी उद्योग जेरोक्स ने स्टोरोएन्सो से लकड़ी का लुगदी खरीदना बन्द किया क्योंकि यह कम्पनी पेड़ों को काटती थी।

29 अप्रेल 2005 - सोनी एरिक्सन ने घोषणा की कि वह अपने उत्पादों में जहरीले रसायनों का प्रयोग धीरे- धीरे बन्द कर देगा। सोनी एरिक्सन ने सेमसंग, नोकिया और सोनी जैसी इलेक्ट्रॉनिक कम्पनियों की तरह जहरीले रसायनों से मुक्त उत्पाद का निर्णय किया।

5 जुलाई 2005 - बार्बी डॉल और टेली प्बीज जैसे जहरीले रसायनों एवं घटिया रबार के बने खिलौने ने छोटे बच्चे तक काफी जहरीले रसायन पहुंचाये। ये सुन्दर दिखने वाले खिलौने वास्तव में बच्चों के आन्तरिक अंगों के लिए बड़े खतरनाक होते हैं। किन्तु यूरोपीय संसद ने छः जहरीले रसायनों पर प्रतिबन्ध लगाकर यूरोप को कई जहरीले खिलौनों से मुक्ति दिलाई।

17 अगस्त 2005 - इलेक्ट्रोनिक समान के बड़े उत्पादक एल.जी. ने घोषणा की कि वह अपने उत्पादों में जहरीले रसायनों का प्रयोग बिलकुल बन्द कर देगा।

4 अक्टूबर 2005 - इलेक्ट्रोनिक उत्पाद बनाने वाली कम्पनी मोटोरोला एवं सौंदर्य प्रसाधन बनाने वाली कम्पनियों ने अपने उत्पादों में जहरीले रसायनों का प्रयोग बन्द करने का निर्णय लिया।

27 अक्टूबर 2005 - ग्रीनपीस कार्यकर्त्ताओं के लम्बे संघर्ष के फलस्वरूप पूर्वी अर्जेन्टीना के जंगलों की सुरक्षा करने का निर्णय लिया गया।

24 नवम्बर 2005 - ब्यूनस आयर्स शहर ने घोषणा की कि उनके शहर में कोई कचरा उत्पन्न नही होगा। वर्तमान में वहाँ 4000 से 5000 टन कचरा प्रतिदिन निकलता है।

7 फरवरी 2006 - अत्यधिक कठिनाइयाँ सहन करने व लम्बे संघर्ष के बाद ग्रीन पीस को विश्व सम्पदा माने जाने वाले ग्रेट गीयर रेन फोरेस्ट को विनाश से बचाने में सफलता मिली।

14 फरवरी 2006 - अमेजन में बेल्जियम के आकार के दुगने क्षेत्र को राष्ट्रपति के आदेश से सुरक्षित क्षेत्र घोषित किया गया।

16 फरवरी 2006 - फ्रांस के राष्ट्रपति शिराक ने अपने ऐसबेसटॉस से लदे जहाज क्लीमंच को वापस फ्रांस बुला लिया। यह जहाज अपने कचरे को भारत में फैंकना चाहता था।

9 मार्च 2006 - हयूलेट पेकार्ड नामक इलेक्ट्रॉनिक कम्पनी ने अपने उत्पादों में जहरीले रसायनों का उपयोग बन्द करने का निर्णय लिया।

31 मई 2006 - परमाणु शक्ति उद्योग के विरोध के बावजूद स्पेन ने निर्णय लिया कि वह देश की आठ इकाईयों को बन्द कर देगा। स्वीडन, जर्मनी, इटली, बेल्लियम की तरह स्पेन यूरोप का पांचवां ऐसा देश है जिसमें परमाणु शक्ति का उपयोग बन्द करने का निर्णय लिया।

22 जून 2006 - मेकडोनाल्ड ने अमेजन के जंगलों का विनाश करके वहाँ पर उगाए गए सोयाबीन पर पली मुर्गियों माँस को बेचना बन्द कर दिया।

25 जुलाई 2006 - एच पी की तरह डेल कम्पनी ने भी अपने सभी उत्पादों में जहरीले रसायनों का उपयोग बन्द करने का निर्णय लिया।

2 मई 2007 - ग्रीनपीस आन्दोलन के फलस्वरूप इलेक्ट्रोनिक उत्पाद निर्माता एप्पल ने अपने उत्पादों में जहरीले रसायनों का उपयोग बन्द करने का निर्णय लिया।

नवम्बर 2007 - दूसरे पर्यावरणीय समूहों के साथ ग्रीनपीस ने अर्जेन्टीना में जंगलों की सुरक्षा के लिए कानून बनवाया इसके फलस्वरूप जंगलों को काटने पर रोक लगी और पर्यावरण सुरक्षित रहा।

दिसम्बर 2007 - आईरिश सरकार ने घोषणा की कि वह ऊर्जा का अपव्यय करने वाली ट्यूब लाईटों का इस्तेमाल जनवरी 2007 तक बन्द कर देगा। यह ग्रीनपीस के प्रयासों से ही संभव हो सका।

9.6 औपचारिक वैश्विक संगठन का निर्माण

सन् 1974 में वैंकुअर स्थित ग्रीनपीस फाउन्डेशन को कई आर्थिक कठिनाईयों का समाना करना पड़ा। विभिन्न केन्द्रों में धन को लेकर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई और इस वैश्विक आन्दोलन के टुकड़े हो गये। डेविड मेकटैगार्ड ने कनाडा की ग्रीनपीस फाउण्डेशन का समर्थन किया और एक बिखरे हुए केन्द्र एक वैश्विक संगठन के अन्तर्गत आ गए। 14 अक्टूबर 1979 को ग्रीनपीस इन्टरनेशनल का उदय हुआ। नई संरचना में, स्थानीय केन्द्र अपनी आय का कुछ प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को भेजेगे जो इस आन्दोलन की गति और दिशा निर्धारित करेगा।

एक ढीले अन्तर्राष्ट्रीय संजाल से एक वैश्विक संगठन के रूप में परिवर्तित होने से अब वह पूरी शान्ति से विश्व के लिए महत्त्वपूर्ण पर्यावरणीय मुद्दों के समाधान ढूँढने का प्रयास कर सकता है।

ग्रीनपीस को एक सुव्यवस्थित केन्द्रीयकृत आकार देने के लिए मेकटेगार्ड दूसरे पर्यावरणीय संगठनों के सिद्धान्तों के विपरित कार्य कर रहे थे। इसके फलस्वरूप ग्रीनपीस अधिक शक्तिशाली हुआ और विभिन्न उद्योगों और सरकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

छोटे कार्यों व लगातार स्थानीय उन्नति के फलस्वरूप ग्रीनपीस के पास सक्रिय कार्यकर्ताओं का एक बड़ा समूह है जो राष्ट्रीय केन्द्र द्वारा संचालित होता है। इग्लैण्ड में ही लगभग छः हजार ग्रीनपीस कार्यकर्ता हैं।

9.7 सारांश

ग्रीनपीस की काफी आलोचना भी हुई। उस पर आरोप लगा कि वह पर्यावरणीय आतंकवाद फैला रही है। और उसने स्वयं भी पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँचाया है। इसके अलावा उस पर मानव हित की अनदेखी करने का आरोप भी लगे। ये अन्य पर्यावरणीय समूहों ने की। ग्रीनपीस के सह-संस्थापक पेट्रीक मूर ने 1986 में यह संगठन छोड दिया जब उसने क्लोरिन के उपयोग पर वैश्विक प्रतिबन्ध का समर्थन किया। मूर ने इसे जनस्वास्थ्य की दिशा

में एक ऐतिहासिक कदम बताया। मूर ने आरोप लगाया कि आज ग्रीनपीस राजनीतिज्ञों के इशारों पर चल रही है।

ग्रीनपीस सन् 1971 से पर्यावरण विनाश के विरूद्ध अभियान चला रही है। आज भी परम्परा है कि वह बड़ी घटनाओं की गवाह बने और इस प्रकार की कई समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयत्न करे। ग्रीनपीस आन्दोलन का लक्ष्य है कि वे पर्यावरण के अपराधियों को उजागर करे एवं संस्कारों व उद्योगों पर हमारे पर्यावरण और भविष्य की रक्षा के लिए दबाव डाले। अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ग्रीनपीस का कोई स्थाई मित्र या शत्रु नही है। ग्रीनपीस आन्दोलन समाज के पर्यावरणीय विकल्पों पर खुली चर्चा का समर्थन है। वे शोध, राजनीति और कूटनीति का प्रयोग अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर अहिंसक संघर्ष का सहारा लेते हैं। वे विश्वास करते हैं कि भविष्य और धरती को नहीं, बल्कि यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति का संघर्ष है। आज ग्रीनपीस के सम्पूर्ण विश्व में 2.8 मिलियन समर्थक हैं। अन्य व्यक्तियों को अपने आन्दोलन से जुड़ने की प्रेरणा देता है।

9.8 अभ्यास प्रश्न

- ग्रीन पीस आन्दोलन के बारे में आप क्या जानते हैं?
- ग्रीन पीस आन्दोलन की प्राथमिकताओं की विवेचना कीजिए।
- ग्रीन पीस आन्दोलन के विभिन्न अभियानों का उल्लेख कीजिये।

9.9 संदर्भ ग्रन्थ

- ब्रेन डोहर्टी : आइडियाज एण्ड एक्शन्स इन दी ग्रीन मूवमेन्ट, रूटलेज, 2005
- क्रीकयेट्रीक सेल एण्ड ऐरिक फोनर : दी ग्रीन रिवोलुशन : दी अमेरिकन एनवाइरेंटल मुवमेन्ट, 1962-1992, हारपर, 1993
- रोबर्ट हण्टर : दी ग्रीन पीस, वेन्कुवर, 2004
- मार्क वारफोर्ड : (सम्पादित) ग्रीन पीस विटनेश, 2004

इकाई-10

शान्ति शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 आधुनिक शांति शिक्षा की अभिधारणा

10.3 शांति शिक्षा की ऐतिहासिक जड़ें

10.3.1 बीसवीं शताब्दी

10.3.2 समृद्ध विविधता

10.4 शांति शिक्षा के लिये विभिन्न तरीके

10.4.1 मानव अधिकार शिक्षा

10.4.2 पर्यावरण शिक्षा

10.4.3 अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा

10.4.4 संघर्ष समाधान शिक्षा

10.4.5 विकास शिक्षा

10.5 सारांश

10.6 अभ्यास प्रश्न

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

10.0 उद्देश्य

- इस इकाई में आप शांति शिक्षा का परिचय प्राप्त करेंगे।
- इस इकाई को पठनोपरान्त आप समर्थ होंगे:-
- शांति शिक्षा के सिद्धान्त समझने में।

10.1 प्रस्तावना

शांति अनुसंधानकर्ता जानतें है कि सकारात्मक शांति हेतु हिंसा को समाप्त करने का प्रयास पर्याप्त नहीं है। शांतिप्रद संसार बनाने के लिये मनुष्य को करने होंगे सकारात्मक शांति हेतु प्रयास, वह स्थिति जो न्याय के प्रतिमानों की स्थापना द्वारा मानव अधिकारों, तथा समुदायों में सतत् विकास के नियामक प्रतिष्ठान स्थापित करके किया जा सकता है। शिक्षा प्रबोधको के लिये केवल सकारात्मक/विधायक कक्षा शिक्षण का वातावरण बनाना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि छात्रों के मस्तिष्क में शांति के सिद्धान्तों के प्रति वचनबद्धता स्थापित करना भी सन्निहित है।

शिक्षा का एक लक्ष्य शांति स्थापित करने योग्य वातावरण का सृजन करना भी है अर्थात् एक ऐसा समाज जहाँ नागरिक अपने सारोकारों चिन्ताओं को स्वतंत्र रूप से बांट सके,

रचनात्मक बने, समय का रचनात्मक उपयोग करे, मानवाधिकारों का भोग करे तथा संघर्षों का समाधान बिना हिंसा के प्रयोग से करें। सभ्यता की सम्पूर्ण अवधारणा शांतिरूपी धुरी के चारों ओर घूमती है। भविष्य के नागरिकों को शांतिप्रद बनने के कौशल सिखाने जैसे महत्वपूर्ण विषय पर ध्यान देने के बजाय संयुक्त राज्य के स्कूलों में जो वहीं की शिक्षा प्रणाली का अहम् हिस्सा है शिक्षा के लक्ष्यों में "शांति" शब्द का प्रयोग तक नहीं करने की लापरवाही की गई है।

1918 में सैकण्डरी शिक्षा के पुनर्गठन आयोग द्वारा अंगीकृत सैकण्डरी शिक्षा के मूलभूत/प्रधान सिद्धान्त में जो लक्ष्य रखे गये वे हैं:- स्वास्थ्य, मूलभूत प्रक्रियाओं पर अधिकार, समुचित गृह सदस्यता, पेशा/व्यवसाय, नागरिक शिक्षा, खाली समय का समुचित उपयोग तथा नैतिक चरित्र/सदाचार। इनकी उपेक्षा वे जिन लक्ष्यों को प्रोत्साहित करते हैं:- नागरिक शिक्षा तथा नैतिक व्यवहार ज्यों नागरिक गुणों को प्रोन्नत/प्रोत्साहित करे।

यू.एस. कांग्रेस द्वारा 1994 में राष्ट्रीय शिक्षा के जो लक्ष्य अंगीकार किये गये हैं उनमें लक्ष्य सात में सुरक्षित अनुशासित तथा शराब व नशीले पदार्थो से सुरक्षित स्कूल अभिकथित है। यहाँ भी सुरक्षित स्कूल बनाने का आग्रह है ताकि शांतिप्रद समाज बने। संयुक्त राज्य के समस्त शैक्षणिक प्रयासों में शांति किस प्रकार स्थापित करें, इस विषय पर स्पष्ट अभाव देखा जा सकता है। शांति शिक्षा तथा उसका महत्वपूर्ण, परिणाम, शांति सीखना, नागरिक समाज के विभिन्न तत्वों पर छोड दिया गया है। यथा परिवार व चर्च, ये दोनों ही आदर्श रूप में तो सहिष्णुता प्रेम व दया के गुणों का पोषण करते प्रतीत होते हैं किन्तु यथार्थ में अनसुलझे विवादों एवं विरोधाभासों से परिपूर्ण आच्छादित है। समकालीन समाजों में शांति के समस्त तरीकों का बलात हरन राष्ट्रीय सुरक्षा राज्य द्वारा कर लिया गया है जिसका बल शक्ति द्वारा शांति पर अधिक है।

(willain Bennet 1993), जो रोनाल्ड रीगन के मातहत शिक्षा सचिव रहे जैसे अरूढ़िवादी सचिव ने तेजी से बदतर/विनष्ट होते नागरिक समाज में हिंसा के तेजी से बढते स्वर को देख संत्रस्त होकर स्कूली बच्चों में जिम्मेदारी, सम्मान करना, ईमानदारी, सहानभूति तथा न्यायप्रियता जैसे गुणो को प्रोत्साहन देने की वकालात की। शांति शिक्षा प्रबोधक अहिंसा के प्रतिबद्धता को प्रोत्साहित करते हैं जिसके पीछे यह विचार/अभिकल्पना है कि यदि बच्चे इन गुणों को अंगीकार करते हैं तो व्यस्क होकर वे एक सभ्य तथा शांतिप्रिय समाज की रचना में योगदान दे सकेंगे। शांति शिक्षा की रणनीति यह मानती है कि संघर्ष/द्वन्द्व व्यक्तियों द्वारा घटित होते हैं न कि सामाजिक, आर्थिक, शक्तियों द्वारा/शांति शिक्षा के इस उपागम को चारित्रिक शिक्षा के रूप में कुछ सहमति शैक्षणिक परिवृतों में प्राप्त हुई है। (लैसली-1994) जो हो, उच्च, श्रेष्ठ अकादमिक श्रेणी के अति महत्व के कारण ऐसे गुणों की शिक्षा स्कूल में प्राप्त करने के अवसर नगण्य हैं।

शिक्षक जो पहले ही अपने शिक्षण क्षमता का विवरण देने के कारण दबाव में रहते हैं क्योंकि उन्हें अपने छात्रों द्वारा स्तरीय परीक्षाओं में अच्छे स्कोर दिखाने होते हैं, शायद ऐसे 'तुच्छ' गुणों की शिक्षा का विकास न करवाना चाहें या अपने छात्रों को उनके जीवन में अव्यस्थित विभिन्न हिंसा के स्त्रोतों का सामना करने हेतु तैयार नहीं करना चाहें। स्कूलो की

व्यवस्था जैसे पाठ्चर्या में प्रतिबद्ध हैं जो विज्ञान व गणित विषयों से पूर्णतया भरा पड़ा है और बालकों को स्कूल काल में सम्भवत: ऐसे बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं कि वे इस तथ्य पर विचार करने का स्वप्न:/परिकल्पना भी कर सकें कि वे किस प्रकार के समाज में रहना चाहेंगे तथा वहां तक पहुँचने के लिये उन्हें क्या करना चाहिये। परिष्कृत शांति सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का परीक्षण बच्चों को देने के बजाय जो उन्हें इतना समर्थ बना दे जैसा कि मार्टिन लूथर किंग जूनियर ने कहा " पूँजीवादी बाजारों में प्रिय तथा उन बाजारों में उत्पादित माल का उपभोक्ता बना सके।

विगत शताब्दी में हिंसा के भयानक स्वरूपों यथा पर्यावरण, संहार,जाति संहार, आधुनिक युद्ध, राष्ट्रवादी/जातिवादी घृणा, रंगभेद, लिंगभेद, सैक्स आधारित, अपराध, घरेलू हिंसा, व समाजिक सारोकारों के प्रति चेतना जागृत हुई है साथ ही साथ शांति शिक्षा के क्षेत्र में भी अभिवृद्धि हुई है। जहां सभी संकायों के शिक्षाविद पहले दिन सही अपने सम्पूर्ण व्यावसायिक कौशल का प्रयोग अपने साथी नागरिकों को निकटस्थ खतरों के प्रति सावचत एवं शांति पथगामी बनाने हेतु करते हैं।

इस पेपर में/लेख में इन नवीन शैक्षणिक सुधारों की जडों जाँच/विश्लेषण किया जाना अभिप्रेत है, जो स्कूल तथा स्कूल के बाहर हिंसा के विभिन्न स्वरूपों से सम्बद्ध है। इस महत्वपूर्ण विवेच्य विषय में स्कूल की उपलब्धियों में गुणात्मक सुधार करने की प्रबल क्षमता है। विभिन्न शोधो से पता चला है कि हिंसा ग्रस्त बालकों में नकारात्मक भावनाऐं आक्रामक व्यवहार तथा अनुरक्ति संबंधी विषमताऐं विकसित हो जाती है। (oshofsky1995) अति गंभीर रूप से हिंसक बालकों में समस्याओं को सुलझा पाने तथा सामान्य स्वाभिमान संबंधी कठिनाईयां देखी गई। उतर मानसिक आघातों के तनाव की विषमताओं से पीड़ित बालकों को अपने पाठ्य विषयों पर पाठों पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अरस्तु हिंसा से ग्रस्त/पीडित बालकों तथा उनके अकादमिक कार्य निष्पादन में विपर्यस्त/विलोम संबंध है। स्कूलों में छात्र खतरे में हैं क्योंकि हिंसा उनकी शैक्षणिक क्षमताओं का हास कर रही है। मूल्यांकन/परिगणना से यह पाया गया कि शांति शिक्षा से स्कूली बच्चों में दादागिरी और हिंसा में कमी आती है। अत: स्कूलों में शांति शिक्षा के प्रयासों ने शिष्यों पर सकारात्मक प्रभाव का सफल प्रदर्शन देखा गया। इन सबके उपरान्त भी अधिकांश स्कूल शांति शिक्षा के सुधार प्रयासों की शिक्षा की क्षमताओं की अवहेलना करते है जिसमें छात्रों की स्कूलों में असफलता के कारणों पर ध्यान दिया जाता है।

10.2 आधुनिक शान्ति शिक्षा की अभिधारणा

शांति शिक्षा में जैसा कि इस पेपर/लोक में प्रयुक्त किया गया है, वे शिक्षक अभिप्रेत हैं जो शांति की शिक्षा देते है- शांति क्या है, इसका अस्तित्व क्यूँ नहीं है, इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है उस शैक्षणिक विषय वस्तु की जो अधिकांश स्कूलों में भुला दी जाती है। इसके अन्तर्गत शांति प्राप्ति में चुनौतियां का सामना करना, अहिंसक कौशल विकसित करना, तथा शांतिप्रद व्यवहार, दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करना आदि सम्मिलित है। शांति शिक्षा के पांच आधार तत्व हैं। अभिधारणाऐं है:-

1. यह हिंसा के मूल (जड़) की व्याख्या करती है।
2. यह हिंसा के विकल्पों की शिक्षा प्रदान करती है।
3. यह हिंसा के विभिन्न स्वरूपों में समन्वयक कर लेती हैं।
4. शांति स्वयं में ही एक प्रक्रिया है, जो संदर्भ के अनुरूप परिवर्तित होती है।
5. संघर्ष सर्वव्यापक है।

प्रथम अभिधारणा की भूमिका चेतावनी का बिगुल बजाकर हिंसा के खतरों के प्रति सावचेत करता है। इस अभिधारणा के अन्तर्गत शांति-शिक्षा की कक्षा का छात्र अन्य के बारे में जान पाता है जिससे कि शत्रु छवि की धारणा विखंडित हो। द्वितीय अभिधारणा शांति की विभिन्न रणनीतियों का निरूपण करती है, जिससे हिंसा की उन समस्याओं को संबोधित किया जा सके जो प्रथम अभिधारणा में निरूपित की गई। तृतीय अभिधारणा शांति शिक्षा की गतिशील प्रकृति की व्याख्या करती है। जिस प्रकार वह अपना महत्व, बल हिंसा के उन अनेकानेक बदलते स्वरूपों/प्रकारों के अनुरूप परिवर्तित करती है जिनसे वह संबंधित है। चतुर्थ अभिधारणा में शांति शिक्षा के सिद्धान्त एवं व्यवहार, विशिष्ट सांस्कृतिक प्रतिमानों के अनुरूप स्थित है, गूंथे गये है। पंचम अभिधारणा यह प्रतिपादित करती है कि शांति शिक्षक संघर्ष को समाप्त तो नहीं कर सकते किन्तु वे छात्रों को ऐसे मूल्यवान कला-कौशल उपलब्ध करवा सकते हैं। जिनसे वे संघर्ष का नियंत्रित/संयमित कर सकें। पर्यावरण विद् ऐसे टिकाउ/वहनीय पोषनीय व्यवहारों तथा रीतियों की और इंगित करेंगे जो हजारों वर्षो से मूल संस्कृतियों द्वारा व्यवहहृत होती जा रही है।

प्रथम व द्वितीय अभिधारणायें शांति शिक्षा हेतु एकीकृत मिशन निर्मित करती है। जबकि तृतीय एवं चतुर्थ अभिधारणाऐं शांति शिक्षा की मूल अभिधारणाओं को विविधता प्रदान करती है। उदाहरणार्थ- संयुक्त राज्य शांति शिक्षा प्रबोधकों ने अपने 20वें केन्द्र को प्रारंभ करते समय आधुनिक युद्धों के खतरों को अपनी कक्षाओं में दिग्दर्शित किया तथा इस विनाश को टालने हेतु लीग ऑफ नेशन्स जैसी समर्राष्ट्रीय संस्थाओं का गठन करने के पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये। 20 वीं सदी के अन्त में शांति प्रबोधक/शिक्षक हिंसा को रोकने के पाठ पढ़ा रहे थे जिससे बच्चों के नशीले/मादक पदार्थो का सेवन, लैंगिक, उत्पीड़न, तथा घरेलू एवं नागरिक हिंसा जैसे खतरों से बचने में सहायता प्राप्त हो सके। इन प्रयासों के साथ-साथ प्रबोधक ऐसे शांतिमय विश्व की परिकल्पना प्रस्तुत करते हैं। जो छात्रों को ऐसा संसार प्राप्त करने की प्रेरणा/अभिप्रेरणा दे।

शांति शिक्षा की कक्षाओं में विषय-वस्तु हिंसा के विभिन्न स्वरूपों के अनुरूप विविधता पूर्ण होती है जो उन कक्षों में संबोधित किये जाते हैं। शांति से विभिन्न संस्कृतियों में विभिन्न अर्थ अभिप्रेत हैं। तथा अलग-अलग आशय/लक्ष्यार्थ वहाँ होते हैं जहाँ ये शांति प्रक्रियाऐं प्रयुक्त होती हैं। उदाहरणार्थ आंतरिक शांति तथा बाह्य शांति मे भेद है। आन्तरिक शांति का संबंध ऐसी अवस्था से है जब व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के बारे में सोचता है, रहता है, उदाहरण के लिये उनमे श्रद्धा/सम्मान बनाये रखना, जबकि बाह्य शांति प्रक्रिया प्राकृतिक पर्यावरण, सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, नागरिक समुदाय परिवार एवं व्यक्ति विशेष के संदर्भ में मानी जाती है। इनमें से भी प्रत्येक क्षेत्र में शांति के अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में

इसका तात्पर्य अक्सर शक्ति संतुलन से लिया जाता है। समाजशास्त्रीय सांस्कृतिक शांति का अध्ययन कर सकते हैं जो अहिंसा को वैधानिकता प्रदान करता है तथा हिंसा का तिरस्कार करता है। अन्तर सांस्कृतिक शांति का निहितार्थ धर्म विरोधी तथा पारस्परिक आस्था का संवाद बहु सांस्कृतिक संवाद/संप्रेषण व शिक्षा आदि हो सकता है। नागरिक समाजों में शांति रहने से पूर्ण रोजगार, समृद्ध सुलभता, शीघ्र स्वास्थ्य प्राप्ति, गुणात्मक शिक्षा जैसे अवसरों को बढावा मिलेगा। मनौवैज्ञानिक जो व्यक्तियों के पारस्परिक संघर्षो से आशंकित है, उन्हें सकारात्मक परस्पर संवाद के विषय में शिक्षित करेंगे जिससे उनके मतभेद दूर हो सके। पर्यावरणविद् ऐसे पोषणीय/प्रासंगिक टिकाऊ व्यवहारों तथा रीतियों की ओर इंगित करेंगे जो हजारों वर्षो से वहाँ के मूल निवासियों द्वारा व्यवहृत होती रही है।

पंचम अभिधारणा हमारे जीवन की जटिल भूमिका संबंधी कुंठाओं का स्मरण कराती है। ये कुंठाये व्यक्तिगत तथा सामाजिक दोनों ही स्तरों पर पायी जाती हैं। वस्तुत: समाजशास्त्रियों ने यह संकेत दिया है कि सामाजिक परिवर्तन हेतु संघर्ष एक आवश्यक उपकरण है। कुछ समाज सिद्धान्तवादी जैसे यह मानते हैं कि संघर्षों से उबरना एक मिथकीय परिकल्पना है क्योंकि सामाजिक संघर्ष/विरोध किसी भी सामाजिक संगठन एवं संरचना की प्रकृति में ही अन्तर्निहित होते हैं। शांति प्रबोधक इस संघर्ष के गुणों तथा खतरों दोनों से ही अवगत कराते हैं। संघर्ष/युद्ध/विरोध की ओर ध्यान नहीं देने से विध्वंसक हो सकते हैं जैसा कि 1994 में रूवान्डा में हुआ, जबकि यदि संघर्ष को अहिंसक उपायों से नियंत्रित कर लिया जावे तो वह प्रगति एवं विधायक परिवर्तन का स्त्रोत बन सकता है जैसा कि गाँधी जी के नमक सत्याग्रह आन्दोलन में हुआ।

10.3 शांति शिक्षा की ऐतिहासिक जड़ें

सम्पूर्ण इतिहास में मनुष्यों ने एक दूसरे को संघर्षो का प्रबंधन/नियंत्रण करना सिखाया है ताकि वे हिंसा के रूप में फट पड़े। संसार के धर्मों, ग्रन्थों के मसिहाओं की शिक्षाओं का अनुकरण करते हुये जैसे बुद्ध जिनका संदेश दया, करूणा का था, बहादा उल्लाह बहाई धर्म के संस्थापकों में से एक मे मनुष्य को भाई-भाई होने का संदेश दिया, ईसा मसीह ने लोगों को दयावान/दानवान बनने तथा शत्रु के सामने दूसरा गाल भी करने का आग्रह किया। मोहम्मद साहब जिनके मुसलमानों क जिहाद के प्रमुख संदेश में हृदय में स्थित नफरत व क्रोध (जो अब भी बाहर की ओर प्रवृत होता है तो अत्यधिक हिंसा ओर पीडा का कारण बनता है।) पर विजय प्राप्त करना शामिल है तथा लताओं से जिनका ताओवाद विरोधियों मैं जैसे येग और यांग में समन्वय। सामन्जस्य को बढावा देता है जो साथ मिलकर व्यापक विस्तृत पूर्णत निर्मित कराते है- विशेष धार्मिक ग्रन्थ है जो शांति को बढावा देते हैं। ऐसी शिक्षा शांति के विचारों को बढाती है जिससे व्यक्ति में परिवर्तन आता है कि यदि वह शांति के उन मूल्यों को अंगीकृत कर लेवे जो कि अहिंसा तथा करूणा पर आधारित है, तो वे विनाशकारी संघर्षों की गर्त में गिरने से बच सकेंगे।

चैक शिक्षाविद् उन प्रथम यूरोपियों में से एक था जिसने शांति शिक्षा के पक्ष में लिखित समर्थन दिया 1642/1969 उसने 17वीं शताब्दी में ही यह देख लिया गया था कि शांति का

पथ सार्वभौमिक ज्ञान को परस्पर कटने से मिलता है। शांति का यह उपागम यह मानता है कि शांति ही शिक्षा की चाबी है। उदाहरणार्थ दूसरों को समझना तथा उनके गुणों/मूल्यों का आदान-प्रदान करने बांटने से उस शत्रुता पूर्ण व्यवहारों पर विजय प्राप्त करना संभव होगा। जो शांति की ओर ले जाते है। (Kant 1795-1970) ने अपनी पुस्तक 'पर पेचुअल पीस' यह उदार धारणा प्रतिपादित की कि मनुष्य नागरिक हिंसा में ऐसी विधि समस्त व्यवस्था द्वारा कभी कर सकता है। जिसे ऐसे न्यायालयों, कानूनी कार्यवाही तथा जेलों पर आधारित नियंत्रण एवं संतुलन कायम रहे।

शांति का यह उपागम न्याय द्वारा संगठित प्राप्ति के रूप में जाना जाता है तथा इस विचार पर आधारित है कि मनुष्यों में विवेकशील दिमाग है जो जैसे कानून बना सकता है जिसमें सभी मनुष्यों के प्रति उचित व सम व्यवहार संभव हो।

10.3.1 बीसवीं शताब्दी

पिछली शताब्दी में शांति शिक्षा के प्रयासों एवं सिद्धान्तों में पर्याप्त वृद्धि पायी गई है। सदी के प्रारंभ में ही शांति शिक्षा प्रबोधकों ने आधुनिक विश्व के विध्वंसात्मक स्वरूप के खतरों के प्रति सावचेत कर दिया गया था। शताब्दी के अन्त तक उन्होंने नागरिक तथा घरेलू हिंसा के प्रति ध्यान आकर्षित करना प्रारंभ कर दिया था। अमरीका तथा यूरोपवासियों ने 20 वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही शांति समितियों का गठन प्रारंभ कर दिया। अपनी सरकारों की लॉविंग कलुषित बवाता के विरूद्ध की जिसकी परिणती अन्ततः प्रथम विश्वयुद्ध में हुई। 1912 में स्कूल शांति लीग के चेप्टर शाखा लगभग प्रत्येक राज्य में थी जो स्कूल के माध्यम से न्याय एवं मातृत्व के अन्तर्राष्ट्रीय हितों को बढावा दे रहे थे।

प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्धों के विनाशकारी काल में सामाजिक ज्ञान के शिक्षकों ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध पढ़ाना प्रारंभ किया जिससे कि उनके छात्र विदेशियों के विरूद्ध युद्ध करने की कामना नहीं करे। यहाँ पर जोर/बता एक निश्चित विषय-वस्तु/पाठ्यक्रम की शिक्षा प्रदान करने पर था यानि कि संसार के उन व्यक्तियों को समझना जो अपने नागरिकों क मस्तिष्क के सहिष्णुता का दृष्टिकोण विकसित कर सकता हैं जिनसे शांति बहाल/पुनः स्थापना करने में योगदान प्राप्त हो सके। शिक्षा प्रदाताओं में अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययनों का उपयोग एक अधिक/सहकारी सहयोगी विश्व बनाने में योगदान करने हेतु किया। अनेकों की यह मान्यता थी कि स्कूलों ने ही नौजवान पीटी को सत्य की कीमत पर राष्ट्रवाद की घुट्टी पिलाकर युद्ध को प्रोत्साहित कर संभव व समर्थ बनाया। शांति प्रबोधकों ने प्रगतिशील शिक्षा सुधारों को लागू करने में योगदान दिया जहां स्कूलों को छात्रों को समस्या-समाधान शिक्षा प्रदान करने तथा सामाजिक प्रगति को बढावा वाले माध्यम के रूप में देखा जाता था।

इसी काल में मारिया मौन्टेरसी (1946/1974) यूरोप का भ्रमण करती हुई, शिक्षकों से पुरानी सत्तात्मक शिक्षा प्रणालियों का परित्याग करने तथा उनके स्थान पर नये गतिमान पाठ्य चर्चा संचालित करने का आग्रह करना चाहिये ताकि छात्र उसमें से यह चुनाव कर सकें कि उन्हें क्या पढ़ना है।

उनका तर्क था कि जो शिष्य सम्भवत: स्वत: कह सत्रावधी शिक्षकों को अनुकरण नहीं करते वे उन शासकों का जो उन्हें युद्ध हेतु बाध्य करते हों अनुकरण करें यह आवश्यक नहीं। उसने देखा कि शांति की स्थापना ऐसी शिक्षा पर निर्भर करती है कि जो बच्चों की आत्मा को स्वतंत्र करे दूसरो के प्रति प्रेम को बढावा दे तथा अनिवार्य मुक्तिबंधो का वातावरण दूर करें। उसने इटली की कच्ची बस्ती में एक स्कूल खोला जहाँ शिक्षकों से अपेक्षा थी कि वे अपने प्रेम की सामर्थ्य क्षमता का प्रयोग करें जिससे अत्यधिक गरीबी के बीच छात्रों को सम्पन्न होने में दम मिल सके। अन्य शांति शिक्षकों के विपरीत जो इस बात पर बल देते थे कि शांति शिक्षा कक्षाओं में क्या पढाया जावे, डॉ. मौन्टेरसी का जोर शिक्षकों द्वारा ऐसी शिक्षा की प्रणाली/तकनीकी/पद्धति प्रयुक्त करने पर था जो शांतिप्रद संसार के निर्माण में सहायक सिद्ध हो। एक सम्पूर्ण स्कूल है। एक स्वरूप परिवार की विशेषताओं का पोषण करने वाली संस्था का प्रतिबिंब होना चाहिये।

द्वितीय विश्व युद्ध की विभिषका ने विश्व नागरिकता के लिये शिक्षा के लिये एक नवीन रूचि जागृत की। पचास वर्ष पूर्व रोड कला एवं शांति शिक्षा का संयुक्त करने का तर्क दिया ताकि छवि प्रतिरूप लोगों को शांति को बढावा/क्रमोन्नत करने की प्रेरणा देने में सहायक अपने समकालीन मौन्टेरसी की भांति उनका तर्क था कि मनुष्य अपनी रचनात्मक क्षमताओं का उपयोग विध्वंसनात्मक हिंसा के गर्त में गिरने से बचने के लिये कर सकता था।

महाविद्यालय स्तर पर शांति-शिक्षा का प्रथम अकादमिक प्रयोग 1948 में इण्डियाना को उत्तरी मैनचेस्टर में, मैन चेस्ट कॉलेज में प्रारंभ हुआ। वियतनाम युद्ध ने और अधिक विश्वविद्यालय एवं कॉलेज प्रोग्राम (कार्यक्रम) लागू करने हेतु उत्पेरित किया जो विशेषत: उपनिवेशवाद उन केन्द्रित/फोकस थे। 1980 के दशक में आण्विक युद्ध की धमकियों/खतरों ने सम्पूर्ण विश्व के शिक्षाविदों को निकट ही मंडाराते विनाश के प्रति चेतावनी देने हेतु प्रेरित किया। आणविक विनाश से उत्पन्न चिन्ताओं ने शांति अध्ययन पाठ्यचर्या कॉलेजों में भी संचालित करने तथा सम्पूर्ण औद्योगिक उत्तर में, प्राईमिरी व सैकण्डरी स्तर तक ऐसी पाठ्यसामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध कराने का मार्ग प्रशस्त किया जो शांतिप्रद तरीकों से संघर्ष निवारक/समाधान कौशलों व तकनीकों की शिक्षा देने के प्रति समर्पित था। साथ ही साथ दक्षिण के अविकसित देशों के प्रति चिन्ता ने भी विविध प्रकार की शांति शिक्षा प्रदान करने की दिशा दिखाई जिसमें अधिक ध्यान वहां के संरचनात्मक तत्वों पर था जो मानवाधिकारों की सुरक्षा को तथा सम्पूर्ण आर्थिक विकास को बाधित करते हैं।

शांति पर गंभीरता पूर्वक बौद्धिक जांच एवं विश्लेषण द्वारा शोध कार्य 1960 के दशकों में नार्वे के (John Galtung 1969) जोकि अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगठन के प्रणेताओं में से एक थे के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ। निषेधात्मक नकारात्मक शांति सकारात्मक/विधायक शांति के बीच एक महत्वपूर्ण विभेद किया। निषेधात्मक शांति में प्रत्यक्ष व्यक्तिगत हिंसा की अनुपस्थिति में निहित है। युद्ध से ध्यान विकसित करना या हिंसा को रोक कर विधायक शांति जैसी स्थिति है जहाँ अहिंसा, पर्यावरण पोष्यता तथा सामाजिक न्याय द्वारा के कारणों को हटा दिया जावे। विधायक शांति में प्रत्येक व्यक्ति द्वारा कुछ आस्थाओं को अंगीकृत किया तथा ऐसी सामाजिक संस्थाओं का शांतिपूर्वक निवारण कर सके, दोनों की आवश्यकता है। Galtung ने संकेत दिया

है कि किस प्रकार संरचनात्मक हिंसा संसाधनों का समान बंटवारा नहीं करना हिंसा का कारण बन जाता है। उसने शांति शिक्षा के क्षेत्र को अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था क अध्ययन से भी आगे निस्त्रीकरण मानवाधिकार एवं विकासात्मक विस्तृत कर दिया।

इसी समय ब्राजील के शिक्षाविद् (paule Friere, 1970) ने ऐसी प्रणाली विकसित की जिससे व्यक्ति अपने स्वयं के उत्पीड़न स्त्रोतों को संबोधित करने में सहायक बन सके। उनकी मान्यता थी कि पूर्ण स्वतंत्र होने के लिये मनुष्य को यह जानना आवश्यक है कि उत्पीडक अवस्थाओं में/स्थितियों से कैसे उबरा जाये/काबू पाया जाये। कर्तव्य निष्ठा या समझ पाने की यह प्रक्रिया दैनिक जीवन में हिंसा के स्त्रोतों का विश्लेषण करने तथा हिंसा के स्तरों में कमी दूर करने के कदमों/उपायों, हिंसा के स्वरूपों के निवारणार्थ अहिंसक तरीकों और नीतियों का अध्ययन करने की ओर ले जाती है। यद्यपि Friere मूलत: शांति शिक्षाविद् के रूप में नहीं जाने जाते वे मनुष्य की उस प्रेम करने की क्षमता का सम्मान करते थे जो मनुष्य के लिये न्यायिक तथा प्रजातांत्रिक समाज में स्वतंत्र प्राप्ति में सहायक हो सके। उन्होंने देखा कि सही किस्म की शिक्षा व्यक्तियों को सरंचनात्मक हिंसा से मुक्ति दिलवा सकती है।

1974 में सामुदायिक संघर्ष पर क्वेकर प्रोजेक्ट न्यूयार्क में 'द फ्रेण्डली क्लास फॉर ए स्माल प्लेनेट' (Prutzman, Stern, Burger and Boden Hammer) छोटे बच्चों को पढ़ाने वाले शिक्षकों के लिये पाठ्यक्रम प्रकाशित किया जो अपने छात्रों में वह सामर्थ्य देना चाहते थे जिससे उनमें वह स्व योग्यता/स्वाभिमान की भावना, समुदाय निर्माण तथा संघर्ष निवारण हेतु संरचनात्मक कौशल विकसित हो सके। तब से इस पाठ्यचर्या के संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं एवं साथ ही अलग-अलग भाषाओं में अनुदित् हो चुके हैं। एल सेल्वोडोर के स्कूलों तथा कुछ अन्य देशों में इसका व्यापक उपयोग किया जा रहा है। इसके पश्चात संस्करण क प्राक्कथन में इसके दर्शन का सार तथा प्राईमरी स्कूलों में अनेक आधुनिक शांति-शिक्षा कार्यक्रमों के लक्ष्य बताये गये है।

हमारे विशेष प्रोग्राम में कक्षा में प्रयुक्त किये जा सकने वाले तीन प्रमुख लक्ष्य उद्वेश्य हैं:-

1. ऐसे प्रगतिशील समुदायों का संवर्धन करना जहाँ बच्चे खुले संवाद संप्रेषण के इच्छुक तथा सामर्थ्यवान हो। 2. बालको में मानवीय संवेदनाओं के प्रति अर्न्तदृष्टि प्राप्त करने तथा अपनी भावनाओं को आदान-प्रदान करने में सहायक होना। 3. बालकों के साथ विशिष्ट व्यक्तिगत तरीकों/उपायों की खोज करना, जिससे वे समस्याओं के प्रति अनुक्रिया (Respond) कर सकें तथा संघर्षो को रोक अथवा सुलझा सकें।

पाठ्यक्रम संघर्षो की जड़ों में जाकर/जानकर जैसा कि वे किशोर बालकों के मन में थी, आपसी सहयोग की शिक्षा देने का प्रयत्न करेगा। यह अनेक पाठ्यक्रमों से मिलता-जुलता है जिनकी रूपरेखा/डिजाईन शांति शिक्षाविदों द्वारा इस प्रकार बनाई गई है कि वह बच्चों में सहिष्णुता की अभिवृति उत्पन्न करने में सहायक हो। यह उन असामाजिक ताकतों के विषय में गंभीर अध्ययन की उपेक्षा करती है जो हिंसा के कारण बनते हैं।

1980 के दशक में तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई जो उस युग/काल का प्रतिनिधित्व करती है। जो आणविक विनाश के विषय में अत्याधिक जागरूक थे। वे हैं:- एज्यूकेशन फॉर पीस/रचयिता नार्वे

के Brocke Utne (1985)" कॉम्प्री हेन्सिव पीस एजुकेशन रचयिता Rerdon (1988)" तथा पीस एजुकेशन रचयिता Harris (1988)" दोनों ही संयुक्त राज्य के नागरिक/ने सैनिकवाद युद्ध तथा पुरूषों द्वारा स्त्रियों पर कार्यरत हिंसा की ओर संकेत/इंगित किया। तथा यह सुझाया/तर्क दिया कि नाजीवाद/स्त्री स्वतंत्रता का समर्थन एक प्रभावी/निस्त्रीकरण का प्रारंभिक बिन्दु है। उन्होंने बताया कि जो समाज युद्धरत् रत्न नहीं है वे आवश्यक नहीं है कि शान्त भी हों अभी भी उन समाजों में पर्याप्त घरेलू हिंसा पाई जाती है।

Rerdon ने तर्क दिया कि स्कूलों के सारभूत मूल्य/ध्यान संरक्षण रखना चिन्तन करना तथा प्रतिबद्धता होना चाहिये तथा शांति शिक्षा की मूल अवधारणा भू-मंडलीय प्रबन्धन वैश्विक नागरिकता तथा मानवीय संबंध होने चाहिये। उनका कहना था कि शांति शिक्षा का सामान्य उद्वेश्य प्रामाणिक भू-मंडलीय चेतना का विकास उपलब्ध करवाना है। जो हमें वैश्विक नागरिक के रूप में कार्य करने के लिये समर्थ बना सके। इनकी उत्पन्न करने वाले सामाजिक ढाँचे तथा अभिरचना। नमूनों मे परिवर्तन कर मानव की वर्तमान अवस्था को परिवर्तित कर सके। वे अधिकतर मानवाधिकारों तथा संघर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय उपायों के विषय में चिन्तित/सम्बद्ध थी।

दूसरी ओर हेरिस की प्रमुख चिन्ता/सम्बद्धता शिक्षक प्रशिक्षण के स्तरों को लेकर थी जिसका सामना शिक्षकों को अपनी कक्षाओं एवं विस्तृत व्यापक समुदायों में करना पड़ता था। उनके अनुसार शांति शिक्षकों क दस उद्वेश्य होने चाहिये शांति की अवधारणा की सम्बद्धता का मूल्यांकन/गुण विवेचन करना, भय ध्यान देना, सुरक्षा व्यवस्थाओं की सूचना उपलब्ध करवाना, हिंसक व्यवहार को समझना अन्त: सांस्कृतिक समझ विकसित करना, भविष्य के अभिनवन की व्यवस्था करना, शांति शिक्षा एक प्रक्रिया के रूप में सिखाना शांति की अवधारणा की, सामाजिक न्याय सहित अभिवृद्धि करना, जीवन के प्रति सम्मान को उत्साहित करना, तथा हिंसा को समाप्त करना उसने इस बात पर भी बल दिया कि शांति प्रशिक्षण पद्धति, शांति शिक्षा के किसी भी प्रयास से सम्बद्ध होनी चाहिये। ऐसी शिक्षण नीति (Pedalogy) के मुख्य तत्व सहकारिता पूर्ण/सहयोग पूर्ण सीखना प्रजातात्रिक समुदाय, नैतिक संवेदनशीलता तथा आलोचनात्मक विचार विनिमय है।

1980 के दशक में प्रारंभ में वैश्विक विचारधारा वालें लोगों की पकड़ शांति शिक्षा पर ढीली पड गई तथा मानवतावादियों ने उनके इस क्षेत्र पर कब्जा कर लिया। शांति प्रबोधकों नागरिक, घरेलू सांस्कृतिक, एथनिक, नस्तवादी हिंसा के प्रति अधिक ध्यान देने लगे तथा हिंसक संस्कृतियों के बीच पले-बढे शिष्यों में घावों पर मरहम लगाने उन्हें व ठीक करने क प्रयास अधिक होने लगे। (Rogers 1942) के कार्य पर आधारित एक मनौवैज्ञानिक आन्दोलन न्यू एज हीलींग (New Age Healing) ने लोगों को प्रोत्साहित किया वे गहरे-भीतर पढे हुये उन मनौवैशानिक तथ्यों/स्थितियों की जांच करे जो हिंसक व्यवहार करने में सहयोगी बनती है। इस आन्दोलन में उन शांति प्रबंधकों को काफी प्रभावित किया है। जिनका लक्ष्य उन घावों को ठीक करना है। जो मानव में क्रोध, हिंसा का तालाब विनिर्मित कर देते हैं। इस शांति शिक्षा उपागम का एक अन्य स्वरूप हिंसा रोचक शिक्षा है जो नौजवानों में लचीले व हिंसा अवरोधक

कौशल विकसित करने का प्रयास करती है जिससे वे मादक नशीले पदार्थो, सैक्स तथा आपसी हिंसा से विमुख हो सकें।

(Brown, D Eminds Caston & Bernard, 2001) के अन्तर शांति-शिक्षा का अन्य सूत्र जो 20 वीं सदी में विकसित हुआ। वह है पर्यावरण शिक्षा (Bower 1993, Huckle Sterip 1996) पर्यावरण विदों ने पाया कि आधुनिक जीवन को सार्वजनिक खतरा प्राकृतिक आवास के विनाश से है। जोकि Alfred Purforck के अमर शब्दों में " इस प्रकार अन्त होता है संसार एक धमाके से नहीं बल्कि एक रिरियाहट से उस बिन्दु समय तक विश्वभर में अनेक प्रबोधकों को संयुक्त राज्य अमरीका तथा विकसित सोवियत संघ/जो 1989 में विघटित हुआ। के बीच विध्वंसकारी आणविक आदान-प्रदान से सर्वाधिक भय था। पर्यावरण प्रबोधक नौजवानों को पारिस्थितिक के संकट के प्रति सावचेत करने में सहयोग करते हैं। उन्हें वे औजार प्रदान करते हैं जिनसे पर्यावरणीय पोषता बढे तथा उन्हें संसाधनों का पुन: नवीनीकृत तरीको का इस्तेमाल/प्रयोग करना आये। (Verhagen,2002) उनका तर्क है कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व रूपी गहनतम नींव की जड़ें पर्यावरण स्वास्थ्य में पाई जाती है।

नव सहस्त्रब्दि (Millenium) के प्रारंभ में संघर्ष समाधान शिक्षा (Conflict Resolution) पश्चिम के सर्वाधिक तेजी से बढती हुई सुधारवादी स्कूली शिक्षा है। संघर्ष समाधान शिक्षक उत्तर-आधुनिक विश्व में अस्तित्व को बनाये रखने हेतु आवश्यक मूल्य संचार एवं संवाद/संप्रेषण दक्षता/कौशल सिखायें इसकी एवज में उन्होंने शिक्षकों अपने बच्चों को सभ्य आचरण के कुछ और परिष्कृत पहलू बताये/सिखायें (Patte & Lanteris 1996) ने रचनात्मक संघर्ष समाधान प्रोग्राम कार्यक्रम (Resolution Conflict Creativity Programme) (RCCP) के कार्य को आगे बढाया।

(RCCP) व्यापक, विशाल तथा सफलता प्रयासों में से एक है। जो कक्षाओं में भावनात्मक व सामाजिक रीति-नीति कौशल सिखाता है। उन्होंने पक्षपात विरोधी तथा बहु-सांस्कृतिक शिक्षा से संबंधित मिश्रण में निर्णायक अवयवों/घटकों को जोड़ा। शांति प्रबोधकों ऐसे प्रभावशाली कौशल सिखाने को प्रोत्साहित कर रहे हैं जो बच्चों को अधिक सहयोगी बनाये।

नारी स्वतंत्रता वादियों ने शांतिप्रद उपागमों को स्कूलों तक विस्तारित करने में योगदान किया है। जिसमें स्कूलों का अपनी पाठ्यचर्या का फोकस प्रतियोगिता तक/प्रतिस्पर्धात्मक से हटाकर संरक्षणात्मक करने पर जोर दिया जो घरेलू कौशल पर बल देता है। उन्होंने स्त्रियों पर आक्रमण करने तथा प्रचलित लैंगिक हिंसा के आयामों जो कि अधिकांश समाजों पर प्रभुत्व रखते हैं। पर होने वाली अविश्सनीय खर्चों की ओर संकेत किया है। उन्होंने पाया कि पितृसत्तात्मक समाजों में पुरूष सत्ता द्वारा कारित मनौवैज्ञानिक/मानसिक नुकसान/विनाश उनमें शत्रुता भाव उत्पन्न करता है। जोकि सामाजिक क्रम में अनेक विनाशकारी तरीकों में परिणित होकर प्रताड़ित करता है। इस उपागम के अनुसार शांति का रास्ता अधिक लैंगिक समता पूर्ण सहयोगात्मक संबंधो को बनाने से मिल सकता है।

20 वीं सदी के अन्त में संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में स्कूलों में हिंसा के विकल्पों को पढ़ाने हेतु अनेक अपीलें जारी की गई। यूनेस्को को 28 वां सामान्य सम्मेलन जो नवम्बर

1995 में हुआ, 186 राज्यों द्वारा यह वक्तव्य दिया गया कि 20 वीं सदी के अन्त में प्रमुख चुनौती युद्ध व हिंसा की संस्कृति से शांति की संस्कृति की ओर से संकमण करना है। संयुक्त राष्ट्र महासभा (General Assembly) के नवम्बर 1998 में शांति का प्रस्ताव स्वीकृत किया तथा एक अन्य प्रस्ताव में वर्ष 2000 को शांति की संस्कृति, को अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष घोषित किया गया और 2001-2010 के वर्षों को विश्व के बच्चों के लिये शांति एवं अहिंसा की संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय दशक घोषित किया गया।

उस अध्यादेश के आधार पर यूनेस्को ने आठ कार्यक्षेत्रों का विकास किया है जो युद्ध की संस्कृति से शांति की संस्कृति की ओर संक्रमण करने हेतु आवश्यक है। इनमें से प्रथम है "शिक्षा द्वारा शांति-संस्कृति/नोबेल शांति पुरूस्कार विजेताओं द्वारा लिखित एक घोषणा पत्र Le monde में जुलाई के प्रकाशित में कहा गया कि अहिंसा द्वारा हिंसा से लडने का एकमात्र तरीका शिक्षा ही है।

10.3.2 समृद्ध विविधता

शांति प्रबोधक हिंसा की समस्याओं की ओर इंगित करते हैं तथा अपने छात्रों उन रणनीतियों का अनुदेश/प्रशिक्षण देते हैं जिनका प्रयोग उन समस्याओं को संबोधित करने में हो सकता है। और इस प्रकार उन परिस्थितियों का सुचारू/उपचार करने हेतु उन्हें सशक्त बना सकता है। जो हिंसकी संघर्ष उत्पन्न कर सकती है। वे उन्हें शांति प्रक्रियाऐं यथा वार्तालाप आपसी मेल-मिलाप समझाते हैं अहिंसक संघर्ष, अभिसंचियों का उपयोग तथा जहाँ आवश्यक हो हिंसक संघर्ष/विरोध को रोकने के लिये सेना का प्रयोग करना सिखाते हैं जैसा कि 1999 में कोसोवो में हुआ। जैसे-जैसे शांति प्रबोधक विभिन्न प्रकार की हिंसक समस्याओं का सामना विभिन्न सामाजिक संदर्भो में करते हैं, उसी अनुपात में विविधतापूर्ण हो जाती है। जापान में 1950 के दशक में शिक्षकों ने शांति-शिक्षा हेतु एक आन्दोलन चलाया गया। जहाँ उसे अ-बम शिक्षा (A Bom Education) कहा जाता है। क्योंकि वे हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये आणविक बमों के विनाशकारी प्रभावों से चिन्तित थे। दक्षिण के देशों में जहां गरीबी तथा अल्प विकास कारण हिंसा कारित है। इस प्रकार की शिक्षा का अक्सर विकास शिक्षा उल्लेखित किया जाता है जहाँ पर छात्र विभिन्न प्रकार की रणनीतियाँ संरचनात्मक हिंसा को समस्याओं का संबोधित करने हेतु सीखते हैं। आयरलैंड में शांति-शिक्षा को पारस्परिक समझ की शिक्षा आख्यादित किया गया है। वहाँ केथोलिक तथा प्रोटेस्टेन्ट ऐसी शैक्षणिक विधियों का प्रयोग करने का प्रयास करते हें। जिनसे सदियों पुरानी शत्रुता समाप्त हो सके। इसी प्रकार कोरिया में शांति शिक्षा को पुन:एकीकरण (Reunification) शिक्षा कहा जाता है।

10.4 शान्ति शिक्षा के विभिन्न तरीके

प्रशिक्षा के इन प्रयासों में एक समान बात है। यह इच्छा के लोगों को हिंसा की जड़ों को समझने का तथा हिंसा के विकल्पों को अपनाने का प्रशिक्षण दिया जाये। शांति-शिक्षा के सिद्वान्तों में योगदान करने वालों के संक्षिप्त हेतु निम्न चार्ट बनाया गया है जिसमें 21 वीं सदी के प्रारंभ में संचालित शांति-शिक्षण के पांच अलग-अलग तरीके दर्शाये गये हैं।

इस चार्ट की प्रथम पंक्ति में पाँच विविध प्रमुख संगठनों या सिद्धान्तकारों के नाम हैं जिन्होंने शांति शिक्षा उपागम हेतु विषय सामग्री तथा शिक्षण पद्धति को विकसित किया। द्वितीय पंक्ति हिंसा के उस प्रकार को परिभाषित करती है जिसे शांति शिक्षा को उपागम द्वारा प्राप्त होने की आशा है। विविध प्रकार से शांति शिक्षा का उपयोग करने वाले प्रबोधक चार्ट की द्वितीय पंक्ति में दर्शित हिंसा के प्रकारों में से एक विशेष प्रकार की हिंसा को संबोधित करने का प्रयत्न करते है। ये शांति की विभिन्न रणनीतियों के विषय में अनुदेश देते हैं। शिक्षा के इन समस्त उपनामों में एक विशेष मानसिक स्थिति निर्मित करने तथा छात्रों को उन सामाजिक संस्थाओं के अनुदेश/निर्देश देने का प्रयत्न किया जाता है जिनसे शांति को बढावा/प्रोत्साहन मिले।

यद्यपि इस प्रकार के शिक्षा के विभिन्न उद्वेश्य तथा हिंसा की समस्याऐं आती है जिनसे वे संबोधित हैं, फिर भी सभी हिंसा में हिंसा द्वारा विनाश कारित करने तथा इस हिंसा विशेष की नीतियों, रणनीतियों के प्रति संचेतना व ध्यान रूप से है। किसी सीमा तक शांति शिक्षा के विविध नाम शांति शब्द को ईद-गिर्द से घेरे के विवादों के कारण है। चूकिं शांति के प्रत्यय का निहितार्थ संसार से परे/पीछे टूट कर शांति व शांत स्थान में जाना। शांति शिक्षा उन समाज सेवकों के लिये तनिक भी आकर्षण नहीं रखती जो सरंचनात्मक असमानताओं का सामना अहिंसक रणनीतियों से करना चाहते हैं। अन्य व्यक्ति शांति शिक्षा के आलोचक हैं क्योंकि उनके विचारों से मानव समाज लेवियाथन (1651/1962 Thomas Hobbes) द्वारा वर्णित उन स्वार्थी प्राणियों की भांति है जो सभी के विरूद्ध युद्धरत हैं। तथा एक सशक्त तानाशाह राज्य सत्ता की तलाश करते हैं। जो उस मानव व्यवहार पर जबरदस्ती आदेश लादते/थोपते रहें, जो कि अन्यथा लोलुष, लुटेरा व आक्रामक हो जावेगा। वे शक्ति द्वारा शांति की अवधारणा को देखते हैं तथा उस शांति-शिक्षा का समर्थन नहीं करना चाहते जिसको आत्मसमर्पण के समतुल्य माना जाता है तथा इसके विकर्षण कर्ता इसे तुष्टि करण शिक्षा की संज्ञा देते हैं।

एक अन्य स्तर पर शांति शिक्षा की संकल्पना के कुछ समर्थन इसे संघर्ष-समाधान/निराकरण शिक्षा के नाम उल्लेख करना पसंद है। कुछ चुनिन्दा वैकल्पिक विवादों का पुन: समाधान/निराकरण युक्तियों द्वारा शिक्षा को माध्यम से देने का विचार अधिक पसन्द है। जिसमें नागरिक समाज में व्यवसाय को बाधित करने वाले संघर्षो का समाधान करना सिखाया जाता है। लेकिन शांति की युक्तियों/रणनीतियों से उनको गैर निष्पक्ष सामाजिक संस्थाओं द्वारा प्रदत्त सुविधाओं के विषय में बहुत भय होता है। इस प्रकार शांति-शिक्षा की अपेक्षा संघर्ष समाधान शिक्षा अधिक सुरक्षित एवं स्वीकार्य है। कुछ व्यक्तियों को शांति शिक्षा का नाम पसन्द नहीं क्योंकि वे यह पाते हैं कि युद्ध के खतरों को कम करने के तरीकों से संबंधित है। और व्यक्ति के पारस्परिक एवं सांस्कृतिक संघर्षो का उल्लेख नहीं करती।

शांति के धार्मिक शिक्षा के संदर्भो में अनेक विवादास्पद निहितार्थ हैं जिससे यह उन प्रबोधकों के लिये अनाकर्षक संज्ञा दी जाती है। जो शांति शिक्षा में प्रयुक्त विषय सामग्री तथा शिक्षा प्रणाली तकनीकें के प्रति आकर्षित होते हैं। शांति शिक्षा के प्रति ऐसे कूट कथनों ने हिंसा

की विभिन्न समस्याओं का सामना करना हेतु शिक्षा पद्धतियों एवं नीतियों में विविधता प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

10.4.1 मानवाधिकार शिक्षा

शांति शिक्षा के आयाम की शाब्दिक तथा व्यापक व्याख्याऐं हैं। इस परम्परा के अन्तर्गत आने वाले शांति प्रबोधक मानवाधिकरो के सार्वभौमिक घोषणा पत्र निर्देर्शित होते हैं जो उन मूल्यों का कथन करता है। जिन्हें आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक न्याय प्राप्ति हेतु प्राप्त करना है। मानवाधिकार के अनेक वक्तत्वय प्राकृतिक न्याय के उच्च मूल्य जो सार्वभौमिक रूप से प्रयुक्त होते हैं। व सरकारी कानूनों से ऊपर है की संकल्पना से लिये गये हैं। सूक्ष्म रूप में मानवधिकारों का अध्ययन है अभिसंधियो संयुक्त राष्ट्र संस्थाओं आन्तरिक घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयों का अध्ययन घरेलू सहकारों द्वारा अपने राजनैतिक विचारों विश्वासों मान्यताओं का धारण करने वाले पीड़ित व दण्डित व्यक्ति अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के प्रावधानों के तहत अपील करते हैं जिससे कि उनका समर्थन प्राप्त हो सके। अधिकारों का दुष्प्रचार तथा उस दुरूपयोग को समाप्त करने हेतु संघर्ष अनेक हिंसक विरोधों की तह में पाया जाता है। मानवाधिकार संस्थानों ने लिंग विकलांगता तथा सैक्स संबंधी अवस्थितियों की और ध्यान देना प्रारंभ कर दिया है।

स्थानीय परिदृश्य में मानवाधिकार शिक्षा का व्यापक अर्थों में वह शिक्षा है जो समस्त मनुष्यों की अस्मिता का सम्मान करती है। अत: शांति शिक्षा के इस पहलू में विभिन्न समूहों के बीच व्याप्त शत्रुता को कम करने के उद्वेश्य से बहु सांस्कृतिक समय विकसित करने के पहलू को शामिल करना होगा। विभिन्न संस्कृतियों का ज्ञान नहीं होना तथा अज्ञान जनित विरोधी भावनाऐं जो इससे पनपती है व भडकती है। बहु सांस्कृतिक शिक्षा का एक अनिवार्य तत्व मानने का सशक्त तर्क प्रस्तुत करती है। (Reardon 1997/27) इस प्रकार की शिक्षा मध्य पूर्व के शांति शिविरों में इस्त्रालस व फिलीस्तीने के बच्चों के साथ अन्य स्थानों पर जहां लोग एथनिक, धार्मिक, व रंग नस्ल भेद पर आधारित घृणा को रूढिवादी शत्रु को चुनौती देकर दृष्टिकोण को परिवर्तित कर तथा अन्य समूहों से संबंध बनाने के तरीकों द्वारा समाप्त करने की आशा करती है।

शांति शिक्षा के उपागमों में अन्य उपागमों को शत्रुवत संज्ञा स्तर तथा उनका विरोध पर उन्हें बाहर करने की प्रवृति पायी जाती है। यहाँ विरोध विशिष्ट पहचान पर आधारित है। जहाँ लोग अपने भिन्न भिन्न समूह वाले लोगों से नफरत करते हैं तथा शत्रुवत मानते हैं। इन संदर्भों के अन्तर्गत शांति प्रबोधक सुदूर विगत में न जाने कब की गई नृशंसताओं पर आधारित संघर्षो को शांत सुला कर शत्रु छवि के स्थान पर उनकी सम्पन्न विरसत को प्रतिरोपित करने का प्रयत्न करते हैं।

विरोधी समूहों को एक साथ लाकर उनके बीच संवाद व संदेशो के आदान-प्रदान की प्रक्रिया के माध्यम से जातिगत राष्ट्र सामान्य समझ की खोज करते हैं। इसकी चाबी मूल तत्व दूसरे को स्वीकार करने तथा उस अन्तर्हित मानवता का सम्मान करने में जो सभी मनुष्यों में निवास करती है साथ ही जो अपने भिन्न सामाजिक समूहों के सदस्यों के प्रति भी ध्यान रखने वाले व्यवहार को अंगीकार करने में निहित है।

10.4.2 पर्यावरण शिक्षा

पारस्परिक प्रबोधकों ने युद्ध के खतरों पर ध्यान रखा और अक्सर पर्यावरण संकट के प्रति बेपरवाह बने रहे। वैश्विक गर्मी तीव्र गति से प्रजातियों का विलोपन तथा प्रदूषण के विपरीत प्रभाव के कारण वे अब यह महसूस करने लगे है कि केवल सैनिक सुरक्षा जैसे कि विदेशी धमकियों/खतरों से देश के नागरिकों की रक्षा करने की बातें करना ही पर्याप्त नहीं बल्कि पारिस्थितिक की सुरक्षा पर अधारित सुरक्षा की अवधारणा को भी बढावा देना होगा। मानव की सुरक्षा प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा प्रेषित व संरक्षित होती है।

(Bower 1993) ने पश्चिमी को उन्नति/प्रगति की अवधारणा की अत्याधिक प्रभावशाली मीमांशा करते हुए माना कि पर्यावरण एक अनन्त संसाधनों का स्त्रोत है जिसका उपयोग मनुष्य बिना पर्यावरण नष्ट किये भी निरन्तर करता रह सकता है। वैज्ञानिक प्रगति जो समस्या समाधान के तर्क उपायों है। वैज्ञानिक प्रगति जो समस्या समाधान के तर्क परक तरीकों/उपायों ने विनाश का नुकसान अधिक किया है। पृथ्वी अपने अनेक प्रजातियों व प्राणियों को खोती जा रही है। मानव केन्द्रित संस्कृति के बजाय जिसमें मानव को ब्रहमाण्ड का केन्द्र माना जाता है। पर्यावरण मुद्धों से संबंधित अस्तित्व संस्कृति को बढावा देते है जो पारस्परिक मूल संस्कृति के महत्वपूर्ण मूल्यों को स्वीकार करते हैं। जिन्होंने बजाय प्राकृतिक संसार को उजाड़ने के मनुष्य के प्रति श्रद्धा/सम्मान को ही पुष्ट व प्रोत्साहित किया। पर्यावरण शिक्षक सावचेत करते हैं कि अनेक तकनीकी प्रगति उन्नति के दावे प्राकृतिक संसार के लिये घातक हैं। शांति प्रबोधक पाते हैं कि केवल पश्चिम के वैज्ञानिक तार्किक विचार का ही नहीं बल्कि ज्ञान (fold knowledge) का भी मूल्य है। शांति शिक्षा पारिस्थितिक की बजाय असीमित उपभोक्ता संस्कृतियों के जो प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव पूँजी के शोषण पर आधारित है। शांति प्रबोधक जो पर्यावरण विनाश के प्रति जागरूक व चिन्तित हैं। समुचित तकनीकी तथा वहनीय प्रमाणिक विकास के विषय में सिखाते हैं। वे अभिसंधियो की भूमिका पर जैसे समुद्री संधियों का कानून है क्योटो सहमति जोकि पर्यावरण संसाधानों को संरक्षित करने का प्रयास करता है। (Drr 1992) में इंगित किया है कि किस प्रकार स्कूलों को पर्यावरण के प्रति सावचेत करने तथा अधिक ध्यान देने वालों होने की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये। जिससे की शांति साक्षर व्यक्ति भू-मंडल की दुर्दशा सामाजिक तथा पारिस्थितिक जन्य समस्याओं के प्रति सावचेत रहे तथा उसके विषय में कुछ न कुछ करने को प्रतिबद्ध रहे। " पर्यावरण-साक्षरता पर्यावरण के संबंध में केवल पढ़ सकने की योग्यता मात्र से कुछ अधिक भी है। इसमें स्थान और भूमि के प्रति मनोभाव विकसित करना भी सम्मिलित है स्थान के प्रति एहसास भावना प्रत्येक के साइट स्थान को अलग व विशिष्ट तथा स्मरणीय बना देती है। अत: पर्यावरण विद्यार्थियों में प्राकृतिक संसार के कल्याण व स्वास्थ्य के प्रति प्रेम व ध्यान रखने की भावनाऐं विकसित हो जाती है।

पर्यावरण शिक्षा का एक उद्धेश्य वहनीय/टिकाऊ विकास को बढावा देना भी है (AHEARN 1994) ने इस प्रकार परिभाषित किया है। सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया जिसमें नीतियाँ तथा व्यवहार मानव की दोनों भौतिक शारीरिक आवश्यकताएँ तथा अन्य भौतिक आवश्यकताओं/उदाहरणार्थ स्वच्छ पर्यावरण तक पहुँच, राजनैतिक व आध्यत्मिक स्वतंत्रता सार्थक

कार्य तथा अच्छा स्वास्थ्य की पूर्ति की जाये। इस संदर्भ में सामाजिक परिवर्तन उन संसाधनों की जिन पर निर्भर है। कीमत पर नहीं होना चाहिये।

पर्यावरण का अध्ययन एक समग्र चिन्तन की ओर ले जाता है कि किस प्रकार प्राकृतिक तथा मानवीय पारिस्थिति की विश्व दृष्टि बनाने में योगदान करना चाहिये। जिसमें पर्यावरण संबंधी मूल बातें निहित हो तथा जो प्राकृतिक संसाधनों के सरंक्षण संबंधी गतिशील अनुभव प्रदान कर सके। शांति प्रबोधक भी उस आवास को सरंक्षित कराने पर बल देते है जिसमें उनके छात्र अव्यस्थित हों, जहाँ उन्हें जीव-जैव क्षेत्रवादक का महत्व समझाया जाता है, जहाँ क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोग उस क्षेत्र की खूबियों/शक्तियों का संदोहन करना सीखा जावें बजाय प्रगतिशील संगुट व्यवसाय हेतु निर्भर रखने।

10.4.3 अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा

Heater, (198) ने संकेत किया कि अन्तर्राष्ट्रीय अन्तर्राज्यीय व्यवस्था को समझने के लिये जो अक्सर भू-भाग संबंधी युद्धों में परिणित हो जाती है। शांति अध्ययन कि तथा महत्वपूर्ण है। वैश्विक शांति प्रबोधक ऐसी शांति प्रबोधक ऐसी समझ प्रदान करते हैं कि किस प्रकार राष्ट्र अपने राज्यों नागरिकों की सुरक्षा हेतु निर्मित करते है। इस प्रकार की शांति विषय अवस्था का अध्ययन भी कहलाती है।
छात्रों की वैश्विकरण के विधायक एवं निषेधात्मक पहलू को भी जानकारी समझ बढाने में सहायक होती है। जिसके कारण राष्ट्रीय सरकारों की शक्ति नष्ट को गई है। तीन प्रकार का वैशविकरण होता है। आर्थिक/विशेषत: संक्रमणकारी कॉरपोरेशन तथा उपभोक्ता प्रभुत्व वाला। वैश्विक मध्यम वर्ग जन व्यवस्था/जन सामान्य समस्याओं पर मिल जुलकर काम करने वाली सरकारें जैसे:- स्वास्थ्य और पर्यावरण समस्या । और लोकप्रिय/एमनेस्टी इन्टरनेशनल, ग्रीन पीस मेडिसिन सेन्स फ्रन्टीयर्स आदि द्वारा संचालित अभियान वैश्विकरण एक यथार्थ तथ्य बनता जा रहा है। और इसे उलटा नहीं जा सकता। शिक्षा प्रबोधकों को अब यह प्रश्न पूछना चाहिये कि हम समस्त पक्षों को किस प्रकार एक साथ लावें/रखें जिससे यह सुनिश्चत हो कि वैश्विकरण अधिक कारगर/प्रभावी ढंग से जनता के लिये एक कार्य करे।

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण एक विभाग क्षेत्र है। इस क्षेत्र क अनुसंधानकर्ता एक ऐसे विश्वराज्य की और नजरें जमायें हैं जिससे कानून एवं न्यायालय राष्ट्रों के मध्य होने वाले संघर्षों पर अधिनिर्णय दे सके। बाकि अपनी असहमितियों का निबटारा करने के लिये वे युद्धों का सहारा नहीं लें सके। कुछ अन्य शोधकर्ता वैश्विक अर्थव्यवस्था की सरंचना हेतु वैकिल्पक रास्तों की और देखते हैं ताकि संरचनागत हिंसक स्थितियों में संघर्षरत विकासशील राष्ट्रों की स्थिति ऋण चारों के कारण और अधिक गरीबी की और नहीं ले जावे। (Moshirian 1995) विश्व शांति अध्ययन में प्रयासरत शांति प्रबोधकों वैश्विक संस्थाओं की स्थापना की और नजर रखे हुये है। जो सामूहिक सुरक्षा प्रदान कर सके। 1975 का यूनेस्को का विश्वव्यापी उद्वेश्यों हेतु शिक्षा नीति की घोषणा में कहा है कि शिक्षा के प्रत्येक स्तर के लिये एक अन्तर्राष्ट्रीय आयाम समस्त व्यक्तियों, उनकी संस्कृतियों तथा राष्ट्रों की संस्कृतियों के परे संप्रेषण की योग्यता तथा अन्तिम

किन्तु कम नहीं। व्यक्ति द्वारा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की समालोचनात्मक समझाने व जान सकने/समझने का समर्थन प्रदान करना।

इन दिशा निर्देशों की अनुपालना करने वाले शिक्षक छात्रों के मस्तिष्क में एक पहचान तथा भू-मंडल की समस्याओं के प्रति चेतना उत्तेजित/जगाने की कोशिश करते हैं। वे आशा करते है कि उनके छात्र स्वयं का एक सदय विश्व नागरिक के रूप मे पहचाने जो कि सम्पूर्ण विश्व में संघर्षरत व्यक्तियों से ऐक्य भाव रखते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय संघर्षों में सैनिक ताकत बल शामिल है तथा वह बल की राजनीति तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के समाधन में युद्ध को साधन के रूप में प्रयुक्त करने वाली एक व्यापक वचनबद्धता को प्रतिबिम्बित करती है। सेना की देखभाल व अन्य खर्चो का मूल्य एक ऐसी संस्कृति को प्रोन्नत करता है जिसकी कटौती शिक्षा एवं विकास के उपलब्ध संसाधनों व स्त्रोतों तथा सुरक्षा प्रदान करने में वैकल्पिक साधनों से की जाती है। अक्सर अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में राजनैतिक नेता शान्ति सेना की टुकडियों का प्रयोग विभोक्षकारी तत्वों को शांत करने तथा अराजक नागरिकों पर व्यवस्था कायम करने हेतु करते हैं। विश्व के अनेक हिस्सों में ऐसी उथल-पुथल व अराजक स्थितियों का सामना कर रहे नेता क्षेत्रीय समाधान के कक्षा शिक्षकों की खोज में जो शक्ति द्वारा शांति के उपागमों का संघर्ष समाधान/निवारण का मूल्यांकन कर सकें जहां सरकारे पर्याप्त संसाधनों का उपयोग सेनाओं पर राष्ट्रीय हितों की रक्षा करने तथा नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु आश्रित रहता है। अन्तर्राष्ट्रीय शांति उद्बोधक सिखाते हैं कि किस प्रकार कानून एवं संस्थाऐं जैसे संयुक्त राष्ट्र युद्ध की विभिन्नताओं को रोक सकते हैं एवं रोका भी है।

सहस्त्रावदि के अन्त तक युद्ध अन्तर्राज्यों के बीच नहीं होकर अन्त: राज्यमीय/के भीतर हो गये हैं। जहाँ बहु संख्यक मारकाट, हत्याएँ एथनिक समूहों के विवादित क्षेत्रों के नियंत्रण हेतु घटित हो रही है। इस प्रकार के संघर्षों में मानवाधिकार भी सरकारी नीतियों में गुथ जाते है। जो शक्ति द्वारा शांति पर आधारित होती है। क्या अल्पसंख्यकों की रक्षा सैनिक ताकतों का उपयोग करने वाले नेताओं द्वारा आतंकवादियों को कुचल/दबाकर किया जा रहा है। किस प्रकार बहु पक्षीय/बहु पाश्विक समझौते को टाल सके तथा संघर्षरत बहु पक्षीय दावों का समाधान निराकरण कर सकें। उदाहरण कोलम्बिया की स्थिति।

10.4.4 संघर्ष समाधान शिक्षा

यद्यपि नागरिक हिंसा के उत्तरोतर बढ़ते स्तरों के, प्रति उपजी चिन्ता ने विविध शांति शिक्षा अध्ययन को उतेजित किया है। जिसको संघर्ष समाधान/निवारक शिक्षा कहा जाता है जो प्रत्येक नागरिक की संघर्ष की गतिशीलता को जानने व समझने में सहायक बनकर उन्हें ऐसे सम्प्रेषण कौशलों से लैस/सशक्त करती है जिससे वे शांति संबंध बना व कायम कर सके। यहां पर फोकस आपसी में संबंधो तथा व्यवस्थाओं पर होता है। तृतीय पक्ष की सहायता से विवादरित पक्षों को अपने भेदभावों को पुन: समाधान करने में सहायक बनती है। संयुक्त राज्य में अनुमानत: 102 स्कूलों में किसी ना किसी/एक प्रकार का समकक्ष मध्यस्था प्रोग्राम प्रचलित

है। संघर्ष समाधान प्रबोधक बच्चों को मानव संबंध कौशल सिखाते हैं। जैसे प्रबंधन, आवेगों पर नियंत्रण, भावुकता संचेतना, वदनुभूति विकास, स्वाग्रही होना, तथा समस्या-समाधान होना आदि।

संयुक्त राज्य में किये गये शोध अध्ययनों से पता चला है कि समस्या समाधान अध्ययन का स्कूली शिक्षा पर सकारात्मक प्रभाव पडा है। (Jhonsaon & Jhonsaon 1996) अध्ययनों से आक्रामकता हिंसा स्कूल छोडने के प्रभाव मिलते है। (Jones & Kmitta, 2002) संघर्ष समाधान शिक्षा के परिणामों के परिष्कृत अकादमिक प्रदर्शन आपसी सहयोग में वृद्धि तथा स्कूलों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण शामिल है।

संघर्ष समाधान प्रबोधक विवादों के निबटारे की वैकिल्पिक विधियाँ सिखाते हैं जो छात्रों को कुशलतापूर्वक व अहिंसापूर्वक निबटने में समर्थ बनाने हेतु सहयोगी हो। शांति शिक्षा का उपागम को एक अन्य भिन्न स्वरूप जो हाल ही में देखा जा रहा है, हिंसा विरोधी/निवारक शिक्षा हिंसा निरोच्य में रूचि रखने वाले शांति प्रबोधक अपने छात्रों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि क्रोध एक सामान्य भावना है और इसे सकारात्मक रूप से नियंत्रित व काबू में किया जा सकता है। व्यापक संस्कृति में सीखे गये विरोधी व्यवहार का सामना करने के लिये शांति प्रबोधकों क्रोध प्रबंधन तकनीकें/प्रवधियां सिखाते हैं जो बच्चों को स्कूलों में लडाई-झगडा करना टालना, तथा निकट जीवन के उग्र विवादों का निराकरण करने में सहायक हैं। हिंसा की सांस्कृतिक छवियाँ/मास मीडिया में प्रदर्शित परेशान व चक्कर में डालने वाली/हैरान करने वाली होती है उन नौजवानों को जिनमें अधिकांश हिंसक घरों में रहते हैं।

दूरदर्शन पर हिंसा देखने व आक्रमण तथा हिंसा की उच्च दर में अन्तर संबंधो/जुडाव को लेकर सशक्त शोध किये जा रहे हैं। हिंसक व्यवहार के तरीके उन परिवारों में सीखे जाते हैं जिनमें शारीरिक दण्ड दिया जाता है तथा बच्चों पर ध्यान नहीं दिया जाता है। हिंसा निरोधी कार्यक्रम मानते है कि संघर्ष/विरोध मानवीय अन्तर्व्यवहार का एक स्वाभाविक हिस्सा है। इन प्रोग्रामों का प्रयोग करने वाली शांति प्रबोधक छात्रों को क्रोध पर काबू पाने तथा बिना उत्पीड़ित उत्पीड़क हुए स्वग्राही कैसे बने आदि सिखाते हैं। इन प्रोग्रामों के प्रमुख प्रवर्तक उन्हें Porthrow Stith निम्नानुसार वर्णित करते हैं:-

हिंसा निरोधी का प्रमुख बिन्दु इन नौजवानों लोगों को लडाई झगड़े के विकल्प प्रदत्त करता है। दस सत्रीय पाठ्यचर्या के प्रथम तीन पाठ को हिंसा तथा नर-हत्या के विषय में सूचित करते हैं।

छात्रों को शांति निर्माता बनना सीखने में एक सहकारी/सहयोगी संदर्भ निर्मित करना सन्निहित है जो विवाद में शामिल लोगों को परस्पर स्वीकार्य समझौते करने हेतु प्रोत्साहित करे न कि एक दूसरे पर हावी होने के, बालकों को क्रोध प्रबंधन सामाजिक दृष्टिकोण अपनाना, निर्णय लेना, सामाजिक समस्या निवारण समकक्ष संवाद, संघर्ष विरोध प्रबंधन विविधता का सम्मान जैसे सामाजिक प्रतिारोधक, कौशल सक्रिय-श्रवण तथा प्रभावी संवाद संप्रगेषण ही सिखाने हेतु औपचारिक प्रशिक्षणों की आवश्यकता है। संघर्ष समाधान शिक्षा बच्चों को शांति कारक कला कौशल प्रदान करती है जिनका उपयोग वे आपसी वैयक्तिक झगडों, विवादों, को काबू प्रबंधन करने में कर सकें। यह शिक्षा बल सुरक्षित स्कूलों के निर्माण पर बल देती है। इसका ध्यान उन हिंसक पहलुओं पर है जिनके विषय में स्कूल कर्मी यह मानते है कि वे उनके नियंत्रण में है

यानि कि उनके छात्रों का व्यवहार/संघर्ष समाधान प्रबोधक स्कूल से बाहर घटित होने वाली विविध प्रकार की हिंसा को संबोधित नहीं करते। शांति शिक्षा का यह आयाम विकासवादी शीर्षक में फिट हो जाता है।

10.5.5 विकास शिक्षा

शांति शिक्षा प्रबोधक विकास शिक्षा का प्रयोग अपने छात्रों के सरंचनात्मक/बुनियादी ढांचे के विविध पहलुओं को देखने की गहन दृष्टि प्रदान करते हैं। जिसमें सामाजिक संस्थाओं पर प्रभुत्व तथा उत्पीड़न हेतु उनकी क्रमबद्धता/श्रेणीबद्धता रूझान की प्रवृतियों पर फोकस किया जाता है। इस शिक्षा के छात्र गरीबों, असहायों की दुर्दशा के विषय में जानकारी प्राप्त करते हैं तथा विकास की रीति-नीतियों का निर्माण संरचनात्मक हिंसा को संबोधित करने हेतु करते हैं। इनका उद्धेश्य ऐसे शांतिपूर्वक समुदायों का गठन करने को बढ़ावा देना है जो सक्रिय प्रजातांत्रिक नागरिकों के हों जो विश्व के संसाधनों के समान बटवारें में रूचि रखे हैं। इस प्रकार की शांति निर्माण की रणनीति बनाना सिखाती है। जो महिला का प्रयोग मानव समुदायों के सुधार हेतु करें।

शांति प्रबोधक विकास के प्रमुख प्रतिमानों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं जिसने पश्चिमी को पिछली सहस्त्रवादी से जकडा हुआ है। वे उन्नत पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था द्वारा उत्पन्न गरीबी तथा दुखों की आलोचना करते है। जहाँ इस भू मंडल चुनींदा अल्पसंख्यक सलीट लोग बहुसंख्यक गरीब लोगों की पीड़ाओं से लाभान्वित हो। उन्होंनें पाया कि शांति की राह लोगों को आन्दोलन में गतिशील करके प्राप्त की जाती हैं जिससे मानवाधिकारों तथा पर्यावरण की रक्षा हो सके। डॉ. मार्टिन लूथर किंग, जूनियर से प्रेरित होकर, मोहनदास गाँधी हजारों अहिंसक समाजसेवकों ने 20 वीं सदी में बडे प्रमुख संघर्षों का समाधान अहिंसा के माध्यम से किया। वे उन सामाजिक स्थितियों का जो हिंसा कारित करती है दीर्घकालीन समाधान तलाशते हैं।
विकास प्रबोधक या आधुनिकता की ओर से तीव्र दौड़े तथा मनुष्य समाज पर इसके प्रभाव को लेकर चिन्तित है। बजाय कारपोरट सैक्टर के संभ्रान्त/प्रबुद्ध लोगों द्वारा थोपी गयी तथा ऊपर से नीचे की रणनीतियों को बढ़ावा देने को जो जन सामान्य को अजनबी मानती हैं शांति प्रबोधक गरीब निम्न वर्ग को विकास योजनाओं के नियोजन क्रियान्वयन तथा नियंत्रण में शामिल करना चाहते हैं। वे संसाधनों पर वे नियंत्रण देखना चाहेंगे बजाय उन पर संभ्रातों एलीट के एकाधिकार के शांति प्रबोधक विधायक शांति का वह स्वप्न देखते हैं जो लोगों को अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने को उत्पेरित करे। शांति शिक्षा के प्रति यह उपागम इसलिये भी विवादास्पद है क्योंकि यह सामाजिक न्याय की अवधारणा पर आधारित है।

10.5 सारांश

सभ्यता का रास्ता भौतिक माल पर अधिकार प्राप्त करने के अतिरिक्त कुछ और भी चाहता है। उन्नत औद्योगिक राष्ट्र कुछ विशिष्ट लोगों को समृद्ध कर सकता है। किन्तु जीवन का यह प्रतिमान विजय के इतिहास एवं विनाश के अभ्यास पर आधारित है। इस विनाश के प्रभाव सम्पूर्ण विश्व द्वारा किये जा रहे हैं जहाँ समाज बहुत गहराई तक जम चुके। संघर्षों में जकड़े हुए झगड रहे हैं। जैसे श्रीलंका जैसे गरीब देश में जो एथनिक संघर्षो से विदीर्ण हो रहा

है, तथा जर्मनी जैसे धनिक देश रंगभेद की घृणा से मुखातिब है। इन देशों के नागरिक सभवत: इसलिये इतने हिंसक है क्योंकि उन्हें शांति का प्रोत्साहन देना नहीं आता। स्कूलों में शांति बनाये रखने को परिष्कृत ज्ञान तथा शांति निर्माण करने की रणनीतियाँ छात्रों को सुलभ नहीं करवायी जा रही है।

अणुबम नर-संहार, जाति सहार विध्वंस तथा पर्यावरण क्षति द्वारा आधुनिक विश्व को थोक में नष्ट करने की अनुक्रिया में प्रगतिशील प्रबोधकों ने बढी मात्रा में शांति शिक्षा सिद्धान्त का विकास किया है जो बालकों को स्कूल काल के दौरान शांति निर्माण करने की महत्वपूर्ण सूचनाऐं प्रदान करने में सहायक हो सकते हैं किन्तु शांति के सिद्धान्तों एवं शांति अनुशीलन के व्यवहारों की अवहेलना मुख्य धार के शिक्षकों द्वारा की जा रही है जिनकी प्राथमिकताऐं बच्चों को पूँजीवाद प्रतिस्पर्धात्मक अर्थव्यवस्था में ऊँचे दाव लगाने वाली परीक्षाओं की तैयारी करवाना है। शांति प्रबोधकों ने पिछली पूरी शताब्दी के दौरान अकादमिक विषय सामग्री, व्यवहारिक कौशल और शांतिपूर्ण पद्धतियों को विकास करने हेतु परिश्रम किया है जो विश्व के नागरिकों का शांति बनाये रखने व निर्मित करने में सहायक होगी। पाठ्यचर्या पर पर्याप्त विवाद हो चुका है। शांति प्रबोधकों को उन राष्ट्रवादी ताकतों का सामना करना पड़ता है जो पुष्ट सैनिक समाजों की वकालत करते है। यद्यपि शिक्षकों द्वारा अपनी कक्षाओं में ऐसे समाज को चित्रण व दृश्यों का प्रोत्साहित करना जहाँ सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखा जावे तथा गुणवत्तात्मक ताकतों के विरूद्ध संघर्ष करना कठिन हैं शांति शिक्षा को ऐसे में एक छोटा सा कोना स्कूलों में घटित हिंसा की समस्याओं को सुलझाने/निवारण करने की व्यावहारिक सोच के कारण कुछ स्कूलों में मिल चुका है। Harris 1996 & Burston etal ज्यों-ज्यों स्कूलों अधिक हिंसक तथा विश्व में गोलीबारी घटनाओं से स्कूल अधिक हिंसक की समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है त्यों-त्यों शिक्षक इनके प्रतिकार व निवारण हेतु अनेक प्रकार के उपागमों को अंगीकार कर रहे है। इसके अतिरिक्त स्कूलकर्मी जिनकी व्यवहार आक्रामक बच्चों से होता रहता है भी शांति शिक्षा की प्रविधियों का प्रयोग कर रहे है जो बच्चों को उनके जीवन में हिंसा जनित तनाव से मुक्त करने में सहायक हो ताकि वे स्कूलों में अकादमिक शिक्षा सामग्री पर ध्यान लगा सकें।

शिक्षा के विभिन्न उपागम परस्पर ऐकान्तिक विशिष्ट नहीं है। वस्तुत: वे एक दूसरे के पूरक हो सकते हैं। जिससे कोई वहाँ रहने वाले स्वदेशी व्यक्तियों के अधिकारों पर भी ध्यान दे सकता है और बुनियादी ढाँचे की गरीबी की समस्या पर भी जो जीविकोपार्जन के तनाव में कमी कर सके। वे अन्तर्राष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका की ओर भी जो इन समस्याओं के प्रति राजनैतिक नेताओं तथा उसके घटकों में चेतना लाने का प्रयत्न कर रहे हैं, संकेत करते हैं।

शांति प्राप्त करने की विभिन्न रणनीतियों का ज्ञान उपलब्ध करवाने की अतिरिक्त शांति प्रबोधक ऐसी शांति शिक्षण पद्धति को प्रोत्साहित करते हैं जो शांति प्रद जनतांत्रिक कक्षा व्यवहारों का मॉडल आधारित हो। वे इस उम्मीद को बांटते हैं कि शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति कुछ ऐसे विचार व व्यवहार विकसित कर सकता है जो शांतिपूर्ण व्यवहार की और ले जावेंगे। इस व्यवहार के सारभूत पहलुओं में दयालुता, सहिष्णुता तथा ससहयोगी भावना सन्निहित हैं इन गुणों का विकास करना शांति शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है। जो भी हो यह सम्पूर्ण चित्र नहीं है।

उन रूढिवादियों के विपरीत जो यह मानते है कि हिंसक समस्याओं का मूल व्यक्तित्व में ही निहित होता है। शांति प्रबोधक का मानना हैं कि हिंसा की समस्याओं की जड़ वृहतर सामाजिक व्यक्तियों तथा संस्थाओं में निहित है। जिनको शांति प्राप्त करने के लिये संबोधित करना पडेगा।

स्कूलों की हिंसा समाज में व्याप्त हिंसा का दर्पण है तथा बन्दूकों की उपलब्धता शहरी एवं ग्रामीण गरीबी मादक पदार्थों व शराब के दुरूपयोग, शहर की बाहरी बस्तियों में तनाव तथा व्याप्त निराशाजनक स्थिति और मीडिया द्वारा हिंसा का उत्सव मनाने से प्रचण्ड हो जाती है। यदि लोग हिंसा का अन्त करना चाहते है उनमें से प्रत्येक को संबोधित करना होगा।

यद्यपि शांति शिक्षण मुख्यत: एक व्यक्तिगत रणनीति है शांति शिक्षण की कक्षाओं में प्रयुक्त प्रोत्साहित अनेक अहिंसक रणनीतियाँ सामूहिक होती हैं। उदारणार्थ समग्र विश्व के व्यक्तियों को संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाओं का जो कि सशस्त्र संघर्षों के विकल्पों को बढ़ावा देती हैं समर्थन देने हेतु विश्वस्त करना।

कुछ स्कूलों में संघर्ष समाधान/निवारण तथा समकक्ष प्रोग्रामों कार्यक्रमों को जोडने के अलावा इनकी अधिकांश जटिल शिक्षाऐं स्कूली पाठ्यचर्या में सम्मिलित नहीं की जाती हैं जिनका उद्वेश्य बच्चों को तकनीकी समाज में प्रगति करने हेतु तैयार करना है। इन प्रक्रियाओं की अवहेलना विश्व में व्याप्त हिंसा को उग्र रूप में फैलाने में योगदान दे रही है। उम्मीद है कि जो व्यक्ति शांति के इन विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे वे महसूस कर सकेंगे कि शांतिपूर्ण समाज का निर्माण करना कितना जटिल कार्य है और तत्पश्चात स्कूल स्तर पर शांति शिक्षण प्रारंभ कर देंगे जिस प्रकार गणित प्रत्येक स्वर पर पढायी और सिखाई जाती है। सभ्यताओं के आगे प्रगति करने हेतु इन प्रक्रियाओं का ज्ञान वांछनीय है।

10.6 अभ्यास प्रश्न

1. शांति शिक्षा से आप क्या समझते हैं?
2. शांति शिक्षा का मूल जड समझाइये?
3. शांति शिक्षा के विभिन्न तरीकों उपायों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करें।

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

– हरीश, इयान : पीस एजुकेशन, जफरशन एन. सी., मेकफरलैण्ड एण्ड क. 1988
– हीटर, डॉ. पीस थरू एजूकेशन, लन्दन, फाल्मर प्रेस, 1984
– दाधीच, नरेश, टूवर्ड ए मोर पीसफुल वर्ड, जयपुर, आलेख, 2004

इकाई - 11

गाँधी एवं राजस्थान

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 गाँधी से पूर्व की राजनीतिक गतिविधियाँ
11.3 राजस्थान में गाँधी
11.3.1 बिजौलिया आन्दोलन एवं गाँधीजी
11.3.2 असहयोग आन्दोलन एवं राजस्थान
11.3.3 राजस्थान में गाँधीजी की यात्राऐं
11.3.4 राजस्थान में भील आन्दोलन एवं गाँधीजी
11.3.5 निमुचाणा त्रासदी एवं गाँधीजी
11.3.6 नमक सत्याग्रह एवं राजस्थान
11.4 हरिपुरा काँग्रेस अधिवेशन एवं भारतीय राज्य
11.5 प्रजामण्डल आन्दोलन एवं गाँधीजी
11.6 भारत छोड़ो आन्दोलन एवं राजस्थान
11.7 गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रम एवं राजस्थान
11.7.1 राजस्थान में खादी का प्रसार
11.7.2 बिजौलिया परीक्षण
11.7.3 रींगस में खादी कार्य
11.7.4 अछूतों का उत्थान
11.7.5 शिक्षा एवं प्रेस
11.7.6 अन्य रचनात्मक कार्य
11.8 निष्कर्ष
11.9 अभ्यास प्रश्न
11.10 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 उद्देश्य

यह अध्याय गाँधी एवं राजस्थान से सम्बन्धित है, जिसके अध्ययन के पश्चात् आप -

– राजस्थान में गाँधी से पूर्व की राजनीतिक गतिविधियों को जान सकेंगे,
– राजस्थान में गाँधीजी की स्वतन्त्रता आन्दोलन सम्बन्धी गतिविधियों में भूमिका को जान सकेंगे, और
– राजस्थान में गाँधी के रचनात्मक कार्यक्रमों में योगदान को समझ सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

जब ब्रिटिश भारत में राजनीतिक गतिविधियों की लहरें चल रही थी तथा 19वीं सदी के अन्तिम वर्शों में व 21 वीं सदी के शुरुआत में देश के अन्य भागों में भी, जिसमें राजस्थान के राजसी राज्य भी शामिल थे। जिसके देशभक्तों के मनोवेगों ने लोगों के लिए राजनीतिक अधिकारों की माँग की और विदेशियों को भगाने की भी मांग को सुलगाया। उनमें शामिल प्रमुख देशभक्त थे - अर्जुनलाल सेठी, प्रतापसिंह बारेठ, केसरीसिंह बारेठ, जोरावरसिंह बारेठ, श्यामजी कृष्ण वर्मा, रामनारायण चौधरी आदि। स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव ने भी लोगों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अथक प्रयास करने को प्रेरित किया।

इसी दौरान भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के गठन ने भी राजस्थान पर काफी प्रभाव डाला। सन् 1889 में ए. ओ ह्यूम (भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के जनक) ने जयपुर के महाराजा को एक पत्र में लिखा कि काँग्रेस का वास्तविक उद्देश्य, विस्तृत साम्राज्य पर निवास करने वाली सभी नस्लों, जातियों एवं पंथों के सभी लोगों के सदस्यों के बीच राजाओं के समान समृद्धता को बढ़ाना है। हालांकि महाराजा ने इस पत्र को नजर अन्दाज कर दिया। इन राजाओं ने तब यह नहीं सोचा था कि ऐसा समय से परे का विचार भी प्राप्त किया जा सकता था।

11.2 गाँधी से पूर्व की राजनीतिक गतिविधियाँ

सन् 1885,1888 एवं 1889 के काँग्रेस के अधिवेशनों के संदेश जब अजमेर पहुँचे और अजमेर की सरकारी कॉलेज के कुछ छात्रों ने एक काँग्रेस कमेटी बनायी, जिसने सन् 1888 के काँग्रेस अधिवेशन में स्वयं का प्रतिनिधित्व किया। ' ग़ेविन्द गिरि और उसकी ' सम्प सभा ' ने बांसवाड़ा, सिरोही एवं डूंगरपुर के क्षेत्रों में ' स्वदेशी ' की भावना को प्रचारित किया जो देश में हुए 1905 ई. के स्वदेशी आन्दोलन से बहुत पहले थी।

सन् 1913 में राज्यों एवं उसके लोगों के हितों की सुरक्षा के लिए ' राजपुताना-मध्य भारत सभा ' की स्थापना की गई। चम्पारण सत्याग्रह के दौरान जमनालाल बजाज गाँधीजी के सहयोगी बने जो जीवन भर उनके साथ रहे। गाँधीजी ने उसको पाँचवा पुत्र माना और वह बजाज ही था जिसने राजस्थान में गाँधीजी के विचारों को प्रचारित किया। सन् 1919 में वर्धा में स्थापित राजस्थान सेवक संघ को 1920 में अजमेर में हस्तान्तरित किया गया।

11.3 राजस्थान में गाँधीजी

11.3.1 बिजौलिया आन्दोलन एवं गाँधीजी

बिजौलिया आन्दोलन मेवाड़ राज्य के किसानों द्वारा बिजौलिया ठिकाने के जागीरदारों द्वारा उनके ऊपर लगाये गये कुछ करों एवं बेगारों के विरूद्ध शुरू किया गया था। इस आन्दोलन का नेतृत्व विजयसिंह पथिक द्वारा किया गया था जो कि सम्भवत: गाँधीजी के अहिंसक प्रतिरोध की पद्धति को देश में अनुप्रयोग करने वाला प्रथम व्यक्ति था। इस आन्दोलन को तरूण राजस्थान जैसे समाचार-पत्रों ने पर्याप्त रूप से प्रकाशित किया था।

सन् 1918 में पथिक गाँधीजी से बम्बई में मिले। इसके बाद बिजौलिया मामले की जाँच हेतु महादेव देसाई को भेजने का निर्णय लिया गया। जब गाँधीजी ने जाँच के तथ्य को संतोषजनक पाया तब उन्होंने उदयपुर के महाराणा को समझौते के लिए याचना की और पथिक को वचन दिया कि यदि महाराणा द्वारा सभी शिकायतों का पर्याप्त निराकरण नहीं किया जाता तो वह व्यक्तिश: आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करेंगे। गाँधीजी ने पथिक के समर्पण व प्रतिबद्धता से प्रभावित होकर लिखा है - मैं तुम्हें पथिक के बारे में बता दूँ। वह एक कार्यकर्ता है जबकि अन्य बातुनी है। वह एक सैनिक, साहसी व विवेकी है, लेकिन जिद्दी भीकृ और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बिजौलिया की जनता उसमें अन्धा विश्वास रखती है। उन्होंने राजस्थान के कुछ कार्यकर्ताओं को सलाह दी, जो उनसे 1918 में खादी के प्रचार के दौरान मिले थे, कि शराब का निषेध तथा शिक्षा का प्रसार करो।" इस प्रकार गाँधीजी 1918 से पहले, राजाओं के राज्यों में लोगों को उनके नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने के क्रम में रचनात्मक कार्य शुरू करना चाहते थे।

सन् 1920 के नागपुर सत्र के दौरान पथिक गाँधीजी से पुन: मिले। गाँधीजी ने अंग्रेजों के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन शुरू करने की घोषणा कर दी थी। उन्होंने पथिक से कहा-"पथिक जी मैंने असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया है, लेकिन मैंने पूर्व में आपसे बिजौलिया आन्दोलन का नेतृत्व करने का वादा कर चुका हूँ मुझे बताओ, मुझे आपका सहयोग करना चाहिए या असहयोग आन्दोलन का नेतृत्व करूं। पथिक जी ने गाँधी जी को असहयोग आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए कहकर अभिभूत किया। उसने बापू को बताया कि बिजौलिया उसके अनुयायियों द्वारा संचालित किया जा सकता है। जब सन् 1921 के काँग्रेस अधिवेशन में बिजौलिया के किसानों के प्रतिनिधि उपस्थित हुए तब गाँधीजी ने सार्वजनिक रूप से उनकी बहुत तारीफ की।"

राजस्थान सेवा संघ की मध्यस्थता के साथ बिजौलिया के किसानों और सरकार के प्राधिकारियों के बीच एक समझौता सम्पन्न हुआ जो कि अन्तिम नहीं था क्योंकि प्राधिकारियों के रूप में उन्होंने समझौते की शर्तों की अनुपालना नहीं की। इस परिस्थिति में गाँधीवादी नेता हरिभाऊ उपाध्याय ने हस्तक्षेप किया और अक्षय तृतीया के अवसर पर (अप्रेल 1931) खेतों को जोतकर, जो कि पहले प्राधिकारियों को समर्पित किए जा चुके थे, के 'सत्याग्रह' का संचालन किया। सरकार ने पूरी शक्ति के साथ आन्दोलन को दबा दिया। गाँधीजी ने अपना संदेश भेजा कि "यदि किसान अहिंसक बने रहे तो उनकी ही जीत होगी" आगे सत्याग्रह बापू की सलाह पर स्थगित कर दिया गया। जमनालाल बजाज और हरिभाऊ उपाध्याय की मध्यस्थता से एक समझौता सम्पन्न हुआ।

इस आन्दोलन ने बेगू बूँदी और शेखावाटी के किसानों को गाँधीजी की शान्तिपूर्ण एवं अहिंसक सत्याग्रह की पद्धतियों के प्रयोग करने को प्रेरित किया।

10.3.2 असहयोग आन्दोलन एवं राजस्थान

हालांकि असहयोग आन्दोलन ब्रिटिश भारत में अपने चरम पर था, लेकिन राजा-महाराजा निश्चित थे कि यह आन्दोलन प्रत्यक्षत: उनके विरूद्ध नहीं था। महात्मा गाँधी की नीति

यह बनी हुई थी कि "शासक और शासितों की सच्ची प्रसन्नता दोनों के हार्दिक सहयोग में ही छुपी है तथा ऐसा कुछ भी अशुभ नहीं होगा जब भारतीय राज्यों में असहयोग के हमारे कार्यक्रम लागू किए जाएगें।" लेकिन ऐसी जनता की लहर भारतीय राज्यों एवं उसके राजनीतिक कार्यकर्ताओं पर प्रभाव छोड़ने को मजबूर थी। जमनालाल बजाज ने गाँधीजी के कहने पर सन् 1921 में उसकी 'राय बहादुर' की उपाधि को वापिस लौटा दिया।

राजस्थान के राजनीतिक कार्यकर्ता काँग्रेस को अपने पक्ष में करने की मानसिकता के कारण उनकी शिकायतों व सम्बन्धित राज्य में प्रचलित कुशासन को प्रदर्शित करना चाहते थे। इसलिए नागपुर सत्र के दौरान, राजपुताना-मध्य भारत सभा के एक सत्र में एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया जिसमें राज्यों के कुशासन के दमनकारी तथा बर्बरतापूर्ण कृत्यों को प्रदर्शित किया गया।

जब से अजमेर-मेरवाड़ा राजपुताना के देशी राज्यों के बाहर एक अकेला क्षेत्र बना। तब से यह सक्रिय राजनीतिक कार्यक्रमों का केन्द्र बना हुआ था। अर्जुनलाल सेठी जब से अपने आपको क्रान्तिकारी गतिविधियों से अलग रखा, तब से शराब की एवं विदेशी वस्त्रों की दुकानों के आगे धरने का कार्यक्रम तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का कार्यक्रम अजमेर में सफलता पूर्वक चला, इसलिए गाँधीजी ने उसकी प्रशंसा की। पंडित गौरीशंकर भार्गव ने विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार का नेतृत्व किया।

बजाज ने तिलक स्वराज फण्ड में एक लाख रूपये की राशि का योगदान किया।

11.3.3 राजस्थान में गाँधीजी की यात्राऐं

शोभालाल गुप्ता के अनुसार, गाँधीजी अक्टूबर 1921 में काँग्रेस के अहमदाबाद अधिवेशन से ठीक पहले, प्रथम बार अजमेर आये थे। वे श्री शेरसिंह द्वारा आमन्त्रित किए गए थे जो उस समय अजमेर की काँग्रेस गतिविधियों का संचालन करते थे।

अहिंसा गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन की नींव का पत्थर थी। मार्च 1922 के प्रथम सप्ताह में बहुत से राष्ट्रीय नेता जमात-उल-उलेमा एवं जमात-ए-तुलह, क्षेत्रीय राजनीतिक सम्मेलन एवं खिलाफत बैठकों में भाग लेने के लिए अजमेर में इकट्ठा हुए। इस बैठक के दौरान मुल्ला अब्दुल बारी भाषण के दौरान हिंसक हो गए। हालांकि उसको डॉ. अंसारी ने फटकारा भी, लेकिन फिर भी उसका संशोधित वक्तव्य गाँधीजी की अहिंसक भावना से उस समय तक मेल नहीं खा पाया था। गाँधीजी बिना किसी तय कार्यक्रम के 9 मार्च, 1922 को कुमारनन्दा के आमन्त्रण पर अजमेर की यात्रा की, तब उन्होंने उस घटनाचक्र के बारे में सुना। केवल अब्दुल बारी को ही अपने भाषण से नहीं रोका गया बल्कि दुसरे नेता हसरत मोहानी को भी स्वराज-पूर्ण आजादी के रूप में, के प्रस्ताव को पुन: परिभाषित करने की इजाजत नहीं दी गई। गाँधीजी ने अजमेर दरगाह शरीफ की यात्रा भी की। इस यात्रा में कार्यकर्ताओं को अनुशासन और आत्मसंयम तथा अहिंसक भावनाओं का पाठ पढ़ाया गया।

गाँधीजी की तीसरी अजमेर यात्रा 5 जुलाई, 1934 को हरिजन उद्धार के कार्यक्रम को बढ़ावा देने के क्रम में हुई। इस समय वे राजपुताना हरिजन सेवक संघ द्वारा आमन्त्रित किए गए। उन्होंने हरिजन सेवकों और महिलाओं को सम्बोधित किया। बाबा बालनाथ ने उनका घोर

विरोध किया। तब ही उन पर आक्रमण भी हुआ। गाँधीजी ने 7 से 14 अगस्त, 1934 को व्रत के द्वारा तप किया। गाँधीजी अर्जुनलाल सेठी के निवास पर भी गये उन्होंने अपने को सक्रिय राजनीति से अलग कर लिया था। गाँधीजी ने उनसे पुन: सक्रिय राजनीति में आने का आग्रह किया। यह यात्रा गाँधीजी की सक्रिय एवं समर्पित कार्यकर्ताओं के लिए चिन्ता को दर्शाती है तथा उनकी निःस्वार्थ सेवा भावना के मूल्य को भी।

11.3.4 राजस्थान में भील आन्दोलन एवं गाँधीजी

राजस्थान में भील आन्दोलन भीलों के परम्परागत अधिकारों के संरक्षण एवं उनके बीच सामाजिक सुधारों से जुड़ा हुआ था। वे मेवाड़, डूंगरपुर, बांसवाड़ा एवं सिरोही राज्यों की जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा थे। श्री मोतीलाल तेजावत ने सन् 1922 में समान कर व्यवस्था की मांग के क्रम में एक आन्दोलन का नेतृत्व किया। जब गाँधीजी ने इस आन्दोलन के बारे में सुना तब उन्होंने मणिलाल कोठारी को तथ्य-अन्वेशण मिशन पर भेजा उन्होंने तेजावत और मि. हालैण्ड, जो कि समझौते के लिए राजपुताना का गवर्नर जनरल का एजेन्ट था, को सफलता पूर्वक समझाया। लेकिन सरकार ने कोई संवेदनशील प्रयास नहीं किए और भीलों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन पर गोलीबारी करवायी गई। 11 फरवरी, 1922 को श्री तेजावत ने गाँधीजी को उनकी सहायता और निर्देशन हेतु लिखा। गाँधीजी ने तेजावत को 26 फरवरी, 1922 के नवजीवन में जवाब देते हुए सलाह दी कि 'अंग्रेज शासकों' का सहयोग पाने के लिए जरूरी है कि उनके साथ बिलकुल भी सहयोग नहीं किया जाए। जब तेजावत गिरफ्तार कर लिए गए, तब मणिलाल कोठारी की प्रार्थना पर गाँधीजी ने मेवाड़ के महाराणा से अपील की कि तेजावत को भीलों के तथा साथ में राज्य के कल्याण के लिए मुक्त कर दिया जाए। यह अपील 5 सितम्बर, 1929 के नवजीवन में प्रकाशित हुई थी। लेकिन इस अपील का मेवाड़ सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। 23 अप्रेल, 1936 तक तेजावत को रिहा नहीं किया गया था। इस घटना ने स्पष्ट कर दिया कि राज्य की दमनकारी व तानाशाही नीतियाँ जनमत व लोकतन्त्र की भावना के विरूद्ध थी।

11.3.5 नीमुचाणा त्रासदी एवं गाँधीजी

14 मई, 1925 को अलवर के शासक - सवाई जयसिंह ने नीमुचाणा के कृषकों की शान्तिपूर्ण सभा पर गोलीबारी के आदेश दिये। उसके बाद कोर्ट केस व गिरफ्तारियाँ हुई। राष्ट्रीय समाचार पत्रों ने इस घटना को जलियावाला बाग हत्याकाण्ड के साथ तुलना की। राजस्थान सेवा संघ ने तथ्यों को जुटाया और उनको गाँधीजी के पास भेज दिया। 24 फरवरी, 1929 के 'यंग राजस्थान' में गाँधी ने टिप्पणी करते हुए कहा कि "यदि सभी रिपोर्ट्स जो कि प्रकाशित हुई है, सही है, तो ये सभी दोहरे हत्याकाण्ड के प्रमाण है., अभी इसके लिए मेरे पास अभी कोई उपचार नहीं है।" जो समाचार पत्र ऐसे कठोर आरोपों की गहन छानबीन कर रहे हैं वह सराहनीय कदम है। उन्होंने अपने प्रयासों से काँग्रेस के नागपुर अधिवेशन के दौरान प्रजा परिषद् सम्मेलन में एक प्रस्ताव पारित कर नीमुचाणा की अमानवीय घटना पर तथा राज्य सत्ता द्वारा मुक्त तथा उचित जाँच को रोकने में सत्ता दुरूपयोग एवं अत्याचार पर दुःख जताया।

उन्होंने उन प्रभावित लोगों को हिन्दी में एक सन्देश भेजा कि कोई भी अत्याचारी तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक उसे पददलित उत्पीड़ित की सहायता नहीं मिल जाए। यदि लोग इसको समझ जाते हैं तो यह सबसे बड़ी सहायता मानी जाएगी।

हालांकि काँग्रेस ने घटना से प्रभावित लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त की लेकिन वह राज्य के आतंक के विरूद्ध कोई प्रस्ताव पारित नहीं करवा सकी। इसके पीछे विद्यमान कारण राज्य के आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप की नीति को अपनाना था। महात्मा गाँधी ने 30 जुलाई, 1925 के नवजीवन के हिन्दी संस्करण में काँग्रेस के अहस्तक्षेप की नीति का औचित्य बताया कि "पिछले कुछ वर्षों से काँग्रेस की देशी राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने की परम्परा रही है। काँग्रेस के सदस्य सोचते थे कि यह परम्परा उनके लिए शुभ है तथा इसको तोड़ना मुर्खता होगी। बजाज ने अलवर जनसंहार की जाँच हेतु बोर्ड के गठन के प्रस्ताव को वापिस ले लिया। लेकिन मैंने बजाज से मेरे व्यक्तिगत विचारों को प्रकट करने का वादा किया कि क्यों नही काँग्रेस को राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना चाहिए। कुछ लोग इसे समय के अनुकूल, उचित व सहायक नीति मानते थे। लेकिन यह इन दोनों से भी कुछ ज्यादा थी। अब यह खुले रूप से स्वीकार किया जाने लगा था कि काँग्रेस के पास ब्रिटिश भारत में विद्यमान अंग्रेजी सत्ता के समान अपने आदेशों को देशी राज्यों में क्रियान्वयन की सत्ता नहीं है। इसलिए दूरदृष्टि निष्क्रिय बने रहने में ही जो कि प्रभावी और दूरदृष्टिता दोनों ही दृष्टि से पूर्ण है। काँग्रेस का उद्देश्य देशी राज्यों को कमजोर या नष्ट करने का नहीं है बल्कि उसकी इच्छा उनमें सुधार करने की है। यह भी ध्यान रहे कि काँग्रेस का निष्क्रिय एवं असंलग्न रहने का तात्पर्य यह नहीं है कि काँग्रेस चुप बैठी रहेगी। क्षेत्रीय एवं स्थानीय संस्थाऐं तब तक उत्पीड़ित की सहायता व संरक्षण कर सकती है तब तक कि सत्ता के साथ कोई टकराव न हो। लेकिन उनका कार्य अस्त-व्यस्त या काँग्रेस की गतिविधियों से जुड़ा हुआ नहीं होना चाहिए। क्या देशी राज्यों को काँग्रेस जैसे राष्ट्रीय संगठन से सहायता की मांग नहीं करनी चाहिए? वे प्रत्यक्ष रूप से उससे सहायता की आशा नहीं रखते थे, लेकिन हाँ, वे अप्रत्यक्ष सहायता की आशा कर सकते हैं क्योंकि एक शक्तिशाली काँग्रेस देशी राज्यों को बहुत हद तक प्रभावित कर सकती है।" "मुझे विश्वास है कि अलवर के दुःखी लोग यह समझते हैं कि यदि काँग्रेस प्रत्यक्षत: उनकी सहायता नहीं कर सकती है तो वह इच्छा शक्ति की वजह से नहीं बल्कि योग्यता व अवसर की अनुपस्थिति के कारण वह ऐसा नहीं कर सकती।"

गाँधीजी का यह लम्बा वक्तव्य स्पष्ट रूप से एक ऐसी अनिश्चित परिस्थिति को दिखाता है जिसमें काँग्रेस अपने आपको पाती थी। जिसमें देशी राज्यों के कार्यकर्ता श्रद्धापूर्वक उससे सलाह एवं निर्देश लेते थे, लेकिन यह संगठन उनकी आशाओं की हद तक पहुँचने में असफल रहा। इसके पीछे प्रचलित राजनीतिक दशाऐं परमोच्च सत्ता के साथ सम्पन्न समझौतों से शासकों की बढ़ी हुई संवैधानिक स्थिति जिम्मेदार थी। 1939 में जाकर काँग्रेस राज्यों के दमनकारी कार्यों की आलोचना हेतु प्रस्ताव पास करवा सकी थी।

यह वक्तव्य गाँधीजी की उस आशा को भी दिखाता है कि शायद क्षेत्रीय व स्थानीय संगठनों को आवश्यकता से ज्यादा करना चाहिए था। अन्त में, गाँधीजी का वक्तव्य देशी राज्यों के मामलों में काँग्रेस की निम्न स्थिति को दिखाता है। राज्य के लोगों के हितों के संवर्द्धन हेतु

गाँधीजी ने सन् 1929 में रामनारायण चौधरी के समक्ष ' द प्रिंसेज एण्ड पिपल्स सर्विस सोसाइटी ' नामक संगठन की स्थापना का प्रस्ताव रखा। गाँधीजी ने स्वयं इसका संविधान तैयार किया और इस संगठन का पथ-प्रदर्शन करने को सहमत हुए। लेकिन इसकी क्रियान्विति के स्तर पर कुछ मतभेदों के चलते यह योजना मूर्त रूप नहीं ले सकी।

11.3.6 नमक सत्याग्रह एवं राजस्थान

महात्मा गाँधी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन की घोषणा के साथ ही एक बार पुन: राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक जीवन में हलचल शुरू हो गई। ब्रिटिश सरकार ने देशी राज्यों को अपने सम्बन्धित राज्यों में इस आन्दोलन के फैलने की चेतावनी दी। सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरुआत अजमेर से हुई। यहाँ बड़ी-बड़ी बैठकों का आयोजन हुआ एवं धरने दिए गए। अजमेर की सरकारी कॉलेज के विद्यार्थियों ने भी सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। हटूण्डी (अजमेर के पास) में नमक सत्याग्रह के लिए काँग्रेस सेवा दल के कैम्प का आयोजन हुआ और दुर्गाप्रसाद चौधरी को इसका कप्तान बनाया गया। स्थानीय संगठनों ने निरन्तर अपने-अपने राज्यों में उदार-लोकतान्त्रिक एवं उत्तरदायी सरकार बनाने के लिए निरन्तर विरोध-प्रदर्शन जारी रखा।

धीरे-धीरे गाँधीजी ने महसूस किया कि ये देशी राज्यों के शासक सभी जुल्मों से ब्रिटिश सरकार के समर्थन के कारण बिना किसी नुकसान के बच निकलते हैं। एक अंग्रेज संसद सदस्य को गाँधीजी ने जवाब देते हुए टिप्पणी की कि देशी राज्यों में स्थिति ब्रिटिश भूभाग से ज्यादा खराब है। लेकिन इसके लिए आप जिम्मेदार है। यदि आप उनसे अपना समर्थन वापिस ले लेते हो तो, या तो शासक स्वयं अपने आपको सुधार लेंगे या हम इन मामलों की व्यवस्था देखेंगे।"'

गाँधीजी ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में राजशाही हेकड़ी को तब देखा था जब उन्होंने राजाओं से अपील की कि किसी भी योजना में लोगों को स्थान दिया जाए ताकि वे सक्षम बन सके। लेकिन बीकानेर के महाराजा गंगासिंह ने संघीय सभा के लिए प्रतिनिधियों के चुनाव की मांग का घोर विरोध किया और कहा कि शासक ही उनके लोगों के अकेले प्रतिनिधि हो सकते हैं। इसने अपने राज्य में गाँधीजी की पुस्तक ' हिन्द-स्वराज' पर प्रतिबन्ध लगाया। जो कि किसी भी रूप में हानिकारक पुस्तकों में शामिल नहीं थी। गाँधीजी ने अपनी इस पुस्तक में लिखे निम्नलिखित गद्यांश के लिए स्पष्टीकरण दिया - आप अनेकों भारतीय राज्यों में जनता को प्रवेश दिलाऐंगे तो खाई भरेगी, देशी राज्यों के राजाओं ने लोगों को निर्दयता से कुचला है। उनका आतंक ब्रिटिश अत्याचार से ज्यादा व्यापक है और यदि आप भारत में तानाशाही या निरंकुशता चाहते हैं तो हम कभी भी सहमत नहीं होंगे। मेरी देशभक्ति मुझे लोगों को राजाओं की एडियों के नीचे कुचले जाने की इजाजत देने की शिक्षा नहीं देती है। यदि अंग्रेज पीछे हट जाते हैं, और मुझे अंग्रेजों जितनी शक्ति प्राप्त हो जाती है तो मुझे भारतीय राजाओं के अत्याचार का प्रतिरोध करना चाहिए।

सन् 1931 में जोधपुर युवा लीग ने स्वदेशी के लिए अभियान चलाया तथा शराब की दुकानों व विदेशी वस्त्रों की दुकानों के सामने धरने दिए।

1935 की संघीय योजना में देशी राज्यों के शामिल नहीं होने की घटना ने उनके प्रति काँग्रेस की निष्क्रिय एवं अहस्तक्षेप की नीति को बदलने का मुख्य काम किया। काँग्रेस को

विश्वास हो गया कि यदि राज्यों के जागरूक लोगों का उसने समर्थन नहीं किया तो देशी राज्यों की शक्ति स्वतन्त्र भारत से अलग हो सकती है। गाँधी ने इसको इस रूप में देखा कि राज्यों के लोगों के बीच राजनीतिक जागरूकता या राजनीतिक चेतना घर करती जा रही है जो प्रतिबन्धों को पूर्णत: समाप्त या आंशिक कमी की ओर ले जा सकती है। परिणामत: राज्यों के लोगों में काँग्रेस की पहचान बढ़ेगी।

11.4 हरिपुरा काँग्रेस अधिवेशन एवं भारतीय राज्य

अब धीरे-धीरे काँग्रेस को यह महसूस होने लग गया था कि देशी राज्यों के लोकप्रिय आन्दोलन के संदर्भ में उसकी नीति को पुनर्परिभाषित करने की तुरन्त आवश्यकता है। काँग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन (फरवरी 1938) में एक नया प्रस्ताव आया जिसमें कहा गया कि काँग्रेस राज्यों में भी शेष भारत की तरह ही समान राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रताओं का समर्थन करती है और देशी राज्य भारत के अभिन्न अंग हैं जो अलग नहीं किए जा सकते। इसलिए काँग्रेस राज्यों में पूर्ण उत्तरदायी सरकार एवं नागरिक स्वतन्त्रता की गारन्टी का समर्थन करती है और वर्तमान में कई राज्यों में पिछड़ी दशाओं के लिए, व्यापक स्वतन्त्रता का अभाव एवं नागरिक स्वतन्त्रताओं का दमन के लिए खेद प्रकट करती है। अब काँग्रेस ने माना है कि राज्यों में इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कर्म करना उसका अधिकार और विशेषाधिकार दोनों है। लेकिन विद्‌यमान परिस्थितियों में राज्यों में इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु काँग्रेस प्रभावी रूप से कार्य करने की स्थिति में नहीं है क्योंकि शासकों ने कई अधिक सीमाऐं व प्रतिबन्ध लगा रखे हैं और ब्रिटिश सरकार उनको समर्थन प्रदान कर रही है। काँग्रेस की इच्छा है कि राज्यों के लोगों को उनकी एकजुटता का विश्वास दिलाया जाए और सक्रिय एवं सतर्क हितों में तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति सद्भावना प्रदर्शित की जाए। यह विश्वास है कि मुक्ति के दिन दूर नहीं हैं।

सितम्बर 1938 में अखिल भारतीय काँग्रेस समिति द्‌वारा पारित प्रस्ताव में कहा गया कि "काँग्रेस की सहयोग की नीति एक निरन्तर प्रयास की होनी चाहिए जो राजाओं के विचारों को इस रूप में रूपान्तरित करें कि उनका सच्चा कल्याण स्वैच्छिक रूप में, जो ब्रिटिश भारत के नाम से जाना जाता है, जिसमें सम्बन्धित राज्यों में संवैधानिक प्रधान होता है, को सत्ता सौंपने में ही निहित है।"

इस प्रस्ताव में काँग्रेस ने अपना उद्देषय स्पष्ट रूप से राज्यों के लोगों के साथ एकीकृत किया जो कि अब तक लोगों के कन्धों पर निर्भर था। गाँधीजी ने 26 फरवरी, 1938 को अपने समाचार पत्र 'हरिजन' में शासकों को सलाह दी कि इस संगठन के साथ गठजोड़ एवं मित्रता की जाए जो कि भविष्य में परमोच्च सत्ता को हटायेगी। काँग्रेस का सहयोग एवं सद्भावना का विश्वास तथा स्थानीय संगठनों के निर्माण का आव्हान ने राजस्थान के राज्यों में प्रजामण्डल आन्दोलन के जन्म एवं विकास का नेतृत्व किया। सन्‌ 1931 में पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने अखिल भारतीय राज्यों के लोगों के सम्मेलन (All India States peoples' Conference) की अध्यक्षता ग्रहण की। इस नीतिगत बदलावों के सन्दर्भ में गाँधीजी ने 3 मार्च, 1938 के हरिजन में लिखा कि

"काँग्रेस की अहस्तक्षेप की नीति, मेरे विचार में उस समय राजनीति का उत्कृष्ट नमूना था, क्योंकि तब राज्यों के लोग राजनीतिक रूप से जागरूक नहीं थे। यह नीति उस समय कायरता होती जब राज्यों के लोगों के बीच राजनीतिक जागरूकता का व्यापक प्रसार हो तथा उनके उचित अधिकारों की आजादी के लिए लम्बे संघर्ष से गुजरने का एक दृढ़ निश्चय है।"

अब शासक भी उनके राज्यों में बढ़ती अचानक राष्ट्रवादी गतिविधियों की लहर एवं वृद्धि के कारण सचेत हो गए। अब आन्दोलन को दबाना कठिन हो गया।

11.5 प्रजामण्डल आन्दोलन एवं गाँधीजी

प्रजामण्डल आन्दोलन का लक्ष्य उनके शासकों की छत्रछाया के तहत उत्तरदायी सरकारों की स्थापना करना था। उनकी माँगों में शामिल था - एक अच्छा एवं उदार प्रशासन, नागरिकों के लिए नागरिक स्वतन्त्रताऐं, प्रेस की आजादी, स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व एवं बेगार सहित अन्यायपूर्ण करों में सुधार। यह कहना अनावश्यक होगा कि इन उदारवादी माँगों की निन्दा की गई और शासकों द्वारा नकार दी गई। बहुत से राज्यों में प्रजामण्डलों को प्रतिबन्धित किया तथा अवैध घोषित किया गया।

मेवाड़ (1938), कोटा (1936), अलवर (1938), जयपुर (1938), एवं जैसलमेर (1940) में प्रजामण्डलों की स्थापना हुई। भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् (1939) एवं मारवाड़ लोक परिषद् (1938) ने भी इसी प्रकार की सेवा की। इन संगठनों ने गाँधीजी का पर्याप्त ध्यान खींचा तथा मार्ग निर्देशन भी प्राप्त किया।

मेवाड़ में सत्याग्रह की शुरुआत 4 अक्टूबर, 1938 को तब हुई जब प्रजामण्डल पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया। नाथद्वारा में कार्यकर्ताओं पर लाठी चार्ज करने पर 18 फरवरी, 1939 को गाँधीजी ने टिप्पणी की कि -"राज्य के सिविल प्रतिरोधकों को याद होना चाहिए कि वास्तविक युद्ध अभी बाकी है। छोटे-बड़े राज्य एकीकृत होकर कार्यवाही करते प्रतीत होते हैं। वे ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों द्वारा अपनायी गई पद्धति की नकल कर रहे हैं। वे सनकी हैं, उन्हें जनमत का कोई भय नहीं है, जबकि देशी राज्यों में तो ऐसा कोई भी नहीं है। कुछ दुर्लभ मामलों को छोड़कर के।"

इसके बाद 3 मार्च, 1939 को मेवाड़ प्रजामण्डल ने अपने आन्दोलन को गाँधीजी की सलाह पर स्थगित कर दिया, इस आशा के साथ कि संगठन पर से प्रतिबन्ध उठा लिए जायेंगे और लोगों को बोलने की, प्रेस की तथा संगठन बनाने की आजादी मिल जाएगी।

जब जमनालाल बजाज ने अकाल राहत कार्यों के संचालन हेतु जयपुर यात्रा करने का निर्णय किया तो जयपुर सरकार ने उनके प्रवेश को निषेध कर दिया और जयपुर प्रजामण्डल को 1939 में अवैध घोषित कर दिया। गाँधीजी ने बजाज को सरकार के आदेशों का उल्लंघन नहीं करने की सलाह दी। कोई भी अन्तिम निर्णय लेने से पहले उससे सलाह करने को कहा। बजाज गाँधीजी से सलाह लेने बारदोली गए जहाँ गाँधीजी उनकी उग्र एवं बड़ी मांगों को अलग रख दिया और स्वयं ने नई मांगों का एक प्रारूप तैयार किया जिसमें भाषण की स्वतन्त्रता, संगठन बनाने की स्वतन्त्रता जैसी नागरिक स्वतन्त्रताऐं शामिल थी। स्पष्ट रूप से महात्मा गाँधी एक

दृष्टि रखते थे और देशी राज्यों में राजनीतिक आन्दोलन की सीमाओं को समझते थे। 16 जनवरी, 1939 के 'हरिजन' में गाँधीजी ने प्रजामण्डल के प्रतिबन्ध पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि - "यह पूर्णतया खतरनाक है और श्री जमनालाल बजाज एवं जयपुर के लोग उनके निर्देश पर सभी ताकतों के साथ प्रतिरोध के लिए प्रतिबद्ध है, काँग्रेस को अहिंसा और सत्य के धर्म के साथ स्वतन्त्रता में कोई संदेह नहीं है। यह भी पता होना चाहिए कि महाराजा अपने मंत्रियों के हाथों का यंत्र मात्र है, जिनमें से ज्यादातर बाहरी लोग हैं तथा उनमें भी कुछ अंग्रेज हैं।"

यह गाँधीजी का देशी राज्यों के आन्तरिक प्रशासन एवं उसके राज्य में शासक की स्थिति के सम्बन्ध में एक कठोर टिप्पणी थी। गाँधी के '5वें पुत्र' को उसकी अपनी भूमि पर प्रवेश से मना करने पर गाँधीजी इतने विचलित हुए कि उन्होंने सरकार को एक व्यापक भारतीय संकट की चेतावनी दी, यदि प्रतिबन्ध नहीं हटाया गया तो । उन्होंने पुन: 22 जनवरी, 1939 के द ट्रिब्यून में टिप्पणी करते हुए लिखा कि जयपुर के बारे में अनोखी बात यह है कि वहाँ का वास्तविक शासक एक उच्च पदस्थ अंग्रेजदां (सर डब्ल्यू. बेउचाम्प सेंट जॉन, जयपुर राज्य के प्रधानमंत्री) है, महाराजा नहीं है।"

वे आगे जोड़ते हैं - "यह समय राजाओं और केन्द्रीय सरकार के सिए कार्यवाही की समान नीति धीरे-धीरे विकसित करने का है।"

स्पष्टत: गाँधीजी देख सकते थे कि देशी राज्यों के सभी राजे-महाराजे दमन की पद्धति का समान रूप से अनुसरण कर रहे थे और वे इसकी गुप्त अनुशंसा केन्द्र सरकार द्वारा प्राप्त करते थे, इसलिए वे विश्वास करते थे।

बजाज पर दोबारा प्रतिबन्ध लगाया, गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया परिणामत: सविनय अवज्ञा आन्दोलन जयपुर में अपने चरम पर था। गाँधीजी ने 12 फरवरी, 1939 के हरिजन में लिखा है कि -

"काँग्रेस प्रतिक्षा और निगाह नहीं कर सकती जबकि जयपुर के लोग मानसिक और नैतिक भूख से मरे जा रहे हैं। विशेषकर जब ब्रिटिश ताकत द्वारा समर्थित सरकार राष्ट्रीय अधिकारों की मांग को नकारती हो। यदि प्रधानमंत्री को इसे रोकने की सत्ता नहीं है तो उसे बुलाना चाहिए।

उन्होंने गिरफ्तारी के सम्बन्ध में वायसराय लिनलिथगो को भी लिखा। गाँधी की सलाह पर 24 मार्च 1939 को सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया ताकि राज्य सरकार प्रजामण्डलों की माँग के सम्बन्ध में कोई नीति बनाने का एक अवसर दिया जा सके। जब राज्यों ने कैदियों को रिहा करने से मना किया तब 22 मई, 1939 को टाइम्स ऑफ इण्डिया में गाँधीजी ने एक लेख लिखकर उनको चेतावनी दी। आखिरकार जयपुर के प्रधानमंत्री सर बेउचाम्प सेंट जॉन को केन्द्रीय सरकार ने बुला लिया और राजा ज्ञाननाथ को प्रधानमंत्री बनाया गया, जिसके साथ बजाज सफलतापूर्वक देशी शासकों के तहत उत्तरदायी सरकार की स्थापना के लिए समझौता किया जो कि प्रजामण्डल का तात्त्विक लक्ष्य था। इस उपलब्धि पर गाँधीजी ने बजाज को बधाई दी।

मारवाड़ लोक परिषद् ने दमनकारी कानूनों के विरूद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चलाया। सन् 1939 में वर्धा में पथिक गाँधीजी से मिले और उनको आन्दोलन की सूचना दी। गाँधीजी ने कार्यकर्ताओं से केन्द्रीय सलाहकारी बोर्ड की सदस्यता से तथा साथ ही राज्य सरकारों द्वारा गठित विभिन्न समितियों से भी त्याग-पत्र देने की सलाह दी। जोधपुर राज्य ने परिषद् को अवैध घोषित कर दिया। गाँधीजी ने 18 अप्रेल, 1940 को महाराजा द्वारा परिषद् पर प्रतिबन्ध की वैधता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि लोक परिषद् के विरूद्ध दमनकारी कार्यों को उसके समर्थन में महाराजा अनावश्यक रूप से उनकी संधियों एवं दोस्ती को अंग्रेजों के साथ और यूरोप में युद्ध में खींच रहे हैं। उसे ऐसा करने में कोई हिचकिचाहट नहीं हो रही है। यह लोगों के हित में है कि कम से कम परिषद् के विरूद्ध लगाये गए आरोप तो सिद्ध हो। इस समय में परिषद् के सदस्य न्याय पा रहे हैं या नहीं मुझे नहीं मालूम लेकिन मुझे आशा है वे निरन्तर इन सभी बुराइयों के विरूद्ध निरन्तर संघर्षरत रहेंगे।

अजमेर काँग्रेस द्वारा 1940 में 8 से 16 अप्रेल तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया जिसमें जलियावाला बाग हत्याकाण्ड की वर्षगांठ भी मनायी गई। इसकी मुख्य विशेषताऐ थी - खादी और घरेलू सामान की प्रदर्शनी तथा काँग्रेस के झण्डे फहराना। पुलिस ने प्रदर्शनी सचिव को झण्डों को हटाने के आदेश दिए लेकिन उसने आदेश को मानने से मना कर दिया। फिर पुलिस ने इन्हें हटाया और कार्यकर्ताओं ने उस वक्त गाँधी की प्रशंसा में नारे लगाये। गाँधीजी ने कार्यकर्ताओं से कहा कि आदेशों को प्रस्तुत करें और कमिश्नर के आदेशों की आलोचना करें (हरिजन 20 अप्रेल, 1940)। अजमेर कमिश्नर के लिए अजमेर के बिगड़ते हालात से निपटना बहुत कठिन है, वह ब्रिटिश सम्मान को नहीं बढ़ा पाए हैं। यह तर्क दिया जा सकता है कि कमिश्नर कोई बहुत खराब नहीं है बजाय बहुत से ऐसे सरकारी अधिकारियों के जो दण्ड, के डर से मुक्ति के साथ कई ज्यादा खराब कार्य करते हैं। बाद में उनको सौंपे गए तथ्यों से संतुष्ट हो उन्होंने 16 अप्रेल, 1940 को हरिजन में लिखा था कि मेरे विचार से, इस मसले की केन्द्र सरकार द्वारा जाँच की जानी चाहिए। सामान्यत: मुझे ऐसे आदेशों को नकारने में कोई संकोच नहीं होता है। लेकिन यहाँ अब एकता नहीं है। मुस्लिम लीग ने खुले रूप से झण्डे को नकारना शुरू कर दिया। यह ज्यादा बेहतर होगा कि इस तरह के अपमान का बदला लेने की भावना को दबाया जाए। राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने कमिश्नर की आपत्तियों के जवाब में तथ्य भेजे।

उपर्युक्त वक्तव्य में गाँधीजी का हिन्दु-मुस्लिम एकता की भावना का भ्रम स्पष्ट रूप से सामने आ गया।

1941 में अजमेर के मुकुट बिहारी भार्गव की युद्ध विरोधी अभियान और गाँधीजी द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित व्यक्तिगत सत्याग्रह को देखने के लिए काँग्रेस कमेटी का प्रथम डिक्टेटर के रूप में नियुक्ति की गई।

11.6 भारत छोडो आन्दोलन एवं राजस्थान

गाँधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अन्तिम आगाज करने का पुन: निर्णय लिया और शायद प्रथम बार देशी-राज्यों के लोगों को भी आगामी संघर्ष में उनकी भूमिका के बारे में निर्देश दिए। गाँधीजी ने गवालिया टैंक ग्राउण्ड (बम्बई) से लगभग भारतीय राज्यों से आये 100

प्रतिनिधि मण्डलों को आगामी जन आन्दोलन में उनकी भूमिका के बारे में सम्बोधित किया। उन्होंने आगामी आन्दोलन में देशी राज्यों से शिरकत करने के लिए एक रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने सलाह दी कि प्रत्येक प्रजामण्डल को अपने राज्य के शासक को एक पत्र भेजना चाहिए जिसमें उससे अंग्रेजी सत्ता से सम्बन्ध तोड़ लेने की प्रार्थना करनी चाहिए।

जयपुर प्रजामण्डल निरन्तर रूप से उत्तरदायी सरकार का आश्वासन पाने के चक्कर में संघर्षरत रहा। 20 अगस्त, 1942 को उदयपुर प्रजामण्डल ने एक प्रस्ताव पारित करते हुए राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांग रखी और ब्रिटिश सरकार से सभी सम्बन्धों को तोड़ने की भी मांग की। इसके उलट सरकार ने दमन के कठोर हथकण्डों का सहारा लेना शुरू कर दिया। बीकानेर में रघुवीर दयाल गोयल को गिरफ्तार कर राज्य से बाहर भेज दिया क्योंकि उसने जुलाई, 1942 में उत्तरदायी सरकार की मांग रखी थी। उसका निर्वासन व्यापक रूप से चर्चा का और आलोचना का विषय रहा, 8 अगस्त, 1942 की अखिल भारतीय राज्य जन सम्मेलन की स्थायी समिति की बैठक में, जो कि गाँधी द्वारा जेल में सम्बोधित की गई थी। भरतपुर प्रजा परिषद् ने 6 से 13 अप्रेल, 1942 में 'भरतपुर में राष्ट्रीय सप्ताह ' मनाया। राज्य ने इस आन्दोलन को कुचलने की कोशिश की। कोटा में सत्याग्रह आन्दोलन ने तब अलग स्वरूप ग्रहण किया जब सत्याग्रहियों ने कोटा शहर के प्रशासन को तीन दिन तक ठप्प कर दिया और इसे अपने नियंत्रण में ले लिया।

जोधपुर के सत्याग्रह ने गाँधी का ध्यान खींचा। मारवाड़ लोक परिषद् ने उत्तरदायी सरकार की स्थापना और जागीरों में लाग-बागों को कम करने के लिए प्रतिरोध शुरू किया। दमन दोहरा था एक तरफ राज्यों द्वारा तथा दूसरी ओर जागीरदारों द्वारा। गाँधीजी ने 10 मई 1942 के ' हरिजन' में लिखा है -

"...और अब जोधपुर से चिंताजनक समाचार आया है। वहाँ भी, अन्य राज्यों के समान ही, स्थानीय परिषद् के लोग सत्ता के साथ सहयोग कर कार्य करने की कोशिश की है। उन्होंने कोई भी राजनीतिक जागरूकता का प्रश्न नहीं उठाया। लेकिन राजपुताना के राज्य दूसरों के समान बहुत से जागीरदार रखते हैं जो राजा-महाराजाओं के साथ सहभागी है और उनके सत्ता का संचालन भी करते हैं। उन्हें भी राज्यों के बीच राज्य की संज्ञा दी जा सकती है। उनको संचालित करने वाले कोई कानून नहीं हैं। राजा-महाराजा उनसे हमेशा ही भयभीत रहे हैं। उनमें जागीरदार के क्षेत्र में जनता के मामलों में हस्तक्षेप करने का कोई साहस नहीं है। परिणामत: भारतीय पदसोपान में जागीरदारी प्रथा में लोगों की स्थिति बद से बदतर हो गई है। ब्रिटिश भारत में सरकार द्वारा समर्थित कोई संगठन, ऐसा कहा जाता है कि, लोकप्रिय परिषदों के विरूद्ध स्थापित होते हैं।"

13 जून, 1942 को ब्यावर में आयोजित राजपुताना के राजनीतिक कार्यकर्ताओं की बैठक में जोधपुर आन्दोलन पर चर्चा हुई और बाद में व्यासजी की भूख हड़ताल और सत्याग्रह पर चिन्ता व्यक्त करते हुए राजपुताना के नेताओं ने एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया जिसमें शामिल राजनेता थे - हीरालाल शास्त्री (जयपुर प्रजामण्डल के नेता), लादूराम जोशी (सचिव, जयपुर राज्य प्रजामण्डल), मास्टर भोलानाथ (अलवर राज्य प्रजामण्डल), गोकुल भाई भट्ट

(सचिव, राजस्थान संघ), हरिभाऊ उपाध्याय (अजमेर-मेरवाड़ा), पुखराज सिंघवी (सिरोही), आनन्द राज सुराणा (दिल्ली से), दुर्गाप्रसाद चौधरी (सम्पादक, नवज्योति, अजमेर), मुकुट बिहारी भार्गव (अजमेर काँग्रेस कमेटी), मुकुट बिहारी वर्मा (सम्पादक. हिन्दुस्तान, दिल्ली), सत्यदेव विद्यालंकार (सम्पादक, विश्वमित्र), सेठ घीसूलाल आदि।

दूसरी बैठक 23 जून, 1942 को वकील द्वारकादास पुरोहित के कार्यालय में आयोजित हुई। जिसमें शामिल राजनीतिक नेता थे - श्री प्रकाश (एम.एल.ए., बनारस एवं ड्येपुटी ऑफ महात्मा गाँधी), द्वारकानाथ कोचर (सचिव, पं. नेहरू), कन्हैयालाल विद्या (ए.आई.एस.पी.सी. की कार्यकारी समिति के सदस्य). लादूराम जोशी (सचिव, जयपुर राज्य प्रजामण्डल), ठाकुरदास (बनारस के बडे राजनीतिक कार्यकर्ता), हरेन्द्र कुमार (मारवाड़ लोक परिषद् के प्रचारक सचिव), भोलानाथ (अध्यक्ष, अलवर राज्य प्रजामण्डल) एवं अन्य। लादूराम जोशी ने श्री प्रकाश को कहा कि महात्मा गाँधी को यह कहना, यदि जोधपुर आन्दोलन को सम्पूर्ण राजपुताना का आन्दोलन बना दिया जाए तो जिसमें जयपुर से हीरालाल शास्त्री ने अपने को 100 अन्य स्वयंसेवकों के साथ आन्दोलन में सहायता का प्रस्ताव रखा। इसी तरह अलवर से भोलानाथ 100 स्वयंसेवकों के साथ सहयोग करने का प्रस्ताव रखा। श्री प्रकाश इन विभिन्न सुझावों को सुनने के बाद कार्यकर्ताओं से कहा कि वह इन सब बातों को गाँधीजी के समक्ष रखेंगे और वर्धा को प्रस्थान कर गये।

गाँधीजी उस समय जोधपुर सत्याग्रह, पर निरन्तर अपने लेखों में (हरिजन) टिप्पणी करते रहे, जिसने काफी गम्भीर रूप ग्रहण कर लिया था। गाँधीजी ने जयनारायण व्यास की गिरफ्तारी पर टिप्पणी करते हुए 30 मई, 1942 को लिखा, "मुझे आशा है कि वह (व्यास) अच्छी तरह समझते हैं कि उसे स्वयं ही सम्पूर्ण भार अपने कंधों पर आगे ले जाना है, उन्होंने हिन्दुस्तान के कोने-कोने से बहुत सारी सद्भावनाऐं प्राप्त की लेकिन इनका उनके लिए कोई अर्थ नहीं था।" 7 जून, 1942 के हरिजन में उन्होंने लिखा है - जोधपुर से यह समाचार आया है कि श्री जयनारायण व्यास को महाराजा से मुलाकात करने की इच्छा के कारण और जोधपुर में उत्तरदायी सरकार के लिए आन्दोलन जारी रखने के प्रस्ताव के लिए गिरफ्तार कर लिया है। प्रत्यक्षत: श्री जयनारायण व्यास के पास कोई अन्य विकल्प नहीं था। मैं जोधपुर के कार्यकर्ताओं की सफलताओं की कामना करता हूँ । लेकिन मुझे विश्वास है कि वे महसूस करते हैं कि उन्हें अकेले ही हल में जोत दिया गया है। उनको सम्पूर्ण भारत से सद्भावनाऐं प्राप्त हुई होगी लेकिन ये सूखी सद्भावनाऐं उनकी सहायता नहीं कर पायेगी। सहायता उनके स्वयं के दृढ़ संकल्प की इच्छा और अटल साहस से आनी चाहिए।"

गाँधीजी ने 2 अगस्त, 1942 को हरिजन में लिखा है "मुझे ऐसी आशा है कि जोधपुर के लोग उनके उद्देश्य की प्राप्ति के प्रति दृढ़ संकल्पित हैं जब तक वे अपने तात्विक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेंगे तब तक दुःख सहते हुए डटे रहेंगे। आन्दोलन के प्रमुख नेता गिरफ्तार हो चुके थे। 16 जून, 1942 को जेल सुविधाओं में सुधार की मांग के लिए उपवास रखते हुए बालमुकुन्द बिस्सा ने अपना जीवन त्याग दिया। गाँधीजी ने श्री प्रकाश को तथ्य अन्वेशण

मिशन के तहत भेजा और 15 जुलाई, 1942 को बिस्सा की मृत्यु पर सहानुभूति प्रकट की। बाद में उन्होंने पाया कि तथ्य सही थे।”'

गाँधी द्वारा प्रेरित तथा निर्देशित इन आन्दोलनों व विरोध प्रदर्शनों के परिणामत: शासकों ने धीरे-धीरे अपने राज्यों में प्रतिनिधिक एवं उत्तरदायी सरकारों की संरचना को विकसित किया।

एक से अधिक बार के लिए गाँधीजी ने राजस्थान की काँग्रेस समिति के आन्तरिक संघर्षों में हस्तक्षेप किया। गाँधीजी चिन्तित और दुःखी हुए। जब उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा के यह समाचार सुने कि अलवर और उसके आसपास का क्षेत्र इसकी गिरफ्त में आ चुका है। उन्होंने अलवर के बाह्य अंचल के गांव घसेरा की यात्रा की और मेव समुदाय को अपने गांवों को लौट जाने को कहा। उन्होंने श्री जे.एन. व्यास, श्री चारी एवं श्री वर्षभान को अलवर में साम्प्रदायिक तनावों के सम्बन्ध में उनको जानकारी देने हेतु भेजा। 28 जनवरी, 1948 को श्री जयनारायण व्यास, श्री हरिभाऊ उपाध्याय एवं श्री देशपाण्डे गाँधीजी से बिड़ला हाउस में मिले जहाँ उन्होंने अलवर और भरतपुर के दंगों पर काफी गहरा दुःख व्यक्त किया।

यह सम्भवत: राजस्थान के नेताओं से उनकी अन्तिम मुलाकात थी। गाँधीजी की दूरदृष्टिता उनके कार्यों में निहित है और उनके दिशा-निर्देश कार्यकर्ताओं में। वे अच्छी तरह महसूस करते थे कि राज्यों का वातावरण उदार-राजनीतिक गतिविधियों के लिए उपयुक्त नहीं है और देशी राज्य संवैधानिक एवं कानूनी स्थिति के विशेषाधिकार का उपभोग करते थे। उन्होंने शासकों की छत्रछाया में उत्तरदायी सरकार की प्रजामण्डलों की मांग सम्बन्धी गतिविधियों को सीमित किया। उन्होंने कई बार कार्यकर्ताओं को चेतावनी दी कि सत्याग्रही के लिए विनम्र भाषा ही उपयुक्त होती है। राजस्थान में किसी भी प्रकार की घटना की सूचना प्राप्ति पर उन्होंने तत्काल तथ्य अन्वेषण मिशन भेजा और कार्यकर्ताओं से आन्दोलन का नैतिक और आध्यात्मिक चरित्र बनाए रखने के लिए आग्रह किया। गाँधीजी का जन्म भी प्रिसिलि स्टेट में ही हुआ था इसलिए राज्यों के लोगों की आवाज अच्छी तरह पहचानते थे और उनके प्रतिनिधित्व और उनकी भावनाओं को राष्ट्रीय स्तर पर उचित रूप में रखते थे। राजस्थान के प्रमुख कार्यकर्ताओं में शामिल है - रामनारायण चौधरी, हरिभाऊ उपाध्याय, माणिकलाल वर्मा, अर्जुनलाल सेठी, पं. हीरालाल शास्त्री, शोभालाल गुप्ता, जयनारायण व्यास, पं. अभिन्न हरि आदि। ये सभी नेता गाँधी से व्यक्तिगत रूप से बातचीत करते थे, वर्धा, बारदोली आदि स्थानों पर। यह वास्तव में दुर्भाग्य था कि गाँधीजी की हत्या में अलवर की जटिलता को भी दलील रूप में पेश किया जाता है। हालांकि अलवर के महाराजा व उनके प्रधानमंत्री डॉ. एन.बी. खरे को दोषमुक्त करने सम्बन्धी मामले की भी जाँच करवायी।

11.7 गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम एवं राजस्थान

गाँधी दर्शन की सफलता राष्ट्रीय जीवन से निकटता से जुड़े विभिन्न सामाजिक-आर्थिक प्रश्नों पर व्यावहारिक अनुप्रयोग में निहित है। उनकी स्वराज की अवधारणा में राजनीतिक. सामाजिक एवं आर्थिक स्व-निर्भरता और स्वायत्त ग्रामीण इकाईयाँ सम्मिलित हैं। गाँधीजी न केवल राजनीतिक आन्दोलन के दौरान रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देते थे बल्कि रचनात्मक

कार्यक्रम तो राष्ट्र-निर्माण की स्थायी विशेषता होनी चाहिए ताकि जब राजनीतिक स्वराज प्राप्त कर लिया जाए तब इसे सामाजिक-आर्थिक अर्थों में साकार भी किया जा सके।

गाँधीजी के आर्थिक दर्शन का प्रमुख आधार स्वदेशी की अवधारणा है। उन्होंने लिखा, " यह (स्वदेशी) अपने तात्त्विक एवं आध्यात्मिक अर्थो में, आत्मा का भौतिक बन्धनों से आखिरी मुक्ति का समर्थन करती है। स्वदेशी एक सेवाधर्म है जो प्रत्येक को अपने तत्काल बाद के परिवेश या वातावरण के लिए लागू होती है। समाज के स्वदेशी धर्म को निभाने की ओर पहला अपरिहार्य कदम खादी है। इसलिए वे कहते थे कि खादी स्वदेशी का मुख्य तत्व होना चाहिए।"

11.7.1 राजस्थान में खादी का प्रसार

गाँधीजी ने घोषणा की कि खादी सम्पूर्ण देश की आर्थिक स्वतन्त्रता एवं समानता की शुरुआती बिन्दु का संकेत करती है और इसके सभी प्रभावों का लाभ लेना चाहिए। उनके लिए स्वदेशी का व्यापक अर्थ था - यह मानव जीवन के संचालन हेतु आवश्यक चीजों की खोज ग्रामीणों द्वारा अपने श्रम व बुद्धिमता से करने के संकल्प का नाम है।

गाँधीजी जोर देते थे कि प्रत्येक काँग्रेस कार्यकर्ता को सूत कातना चाहिए और इसलिए हमें राजस्थान के कई बड़े काँग्रेसी कार्यकर्ताओं के सूत कातने के उदाहरण देखने को मिलते हैं। चाहे वे अपने कार्यस्थल पर काते या गाँधी आश्रम में। रामनारायण चौधरी, जमनालाल बजाज, हरिभाऊ उपाध्याय, छोटेलाल, हीरालाल, माणिक्यलाल वर्मा आदि गाँधी की उपस्थिति में वर्धा में खादी कातने के अनुभवों को काफी याद करते थे। उनके खादी कातने पर बल देने को एक घटना द्वारा समझा जा सकता है। जब श्री जयनारायण व्यास गाँधीजी के सेवाग्राम की यात्रा की। सेवाग्राम से लौटते हुए व्यास ने उनको एक कविता भेंट की। बापू ने कविता को पढ़ा और टिप्पणी की कि, "कविता अच्छी है, लेकिन यह गरीब की गरीबी को शान्त नहीं करती है। जयनारायण कतली से सूत काते तो उसे ज्यादा पसन्द करूंगा।

राजस्थान खादी कार्यों के लिए उपयुक्त वातावरण देता है। गाँधीजी ने टिप्पणी की, जब अन्य प्रान्तों से चरखा समाप्त कर दिया गया, जो राजस्थान में आज भी चल रहा है।

सन् 1922 को एक राजनीतिक सम्मेलन की अध्यक्षता के रूप में कस्तुरबा जी ने अजमेर की यात्रा की। उन्होंने महिलाओं के एक समूह को सम्बोधित किया और उनसे अपील की कि वे अपने को खादी पहनने के लिए तैयार कर ले। उन्होंने टिप्पणी की थी कि, " विदेशी कपड़े पहनना उतना ही खतरनाक है जितना की स्वराज के साथ विश्वासघात करना। खादी हिन्दुओं के लिए गाय की रक्षा के समान है और मुसलमानों के लिए खिलाफत प्रश्न की रक्षा के समान है।" उन्होंने गुलाबदेवी, अजमेर की प्रमुख खादी कार्यकर्ता, द्वारा आयोजित सभा की भी यात्रा की।

खादी को बढ़ावा देने हेतु 1926 में अखिल भारतीय चरखा संघ की स्थापना हुई। इसकी एक शाखा राजस्थान में स्थापित हुई। श्री बलवन्त सानवाला राम देषपाण्डे को उसका प्रभारी बनाया गया।

11.7.2 बिजौलिया परीक्षण

बिजौलिया ने राजस्थान में राजनीतिक आन्दोलन का नेतृत्व किया था। एक बार पुन: इसने खादी के क्षेत्र में राजस्थान का नेतृत्व किया। इस क्षेत्र में किसान आन्दोलन के कारण राजनीतिक चेतना स्तर बहुत ऊँचा था। यहाँ पंचायतों और कार्यकर्ताओं को सहायता हेतु मूलभूत आधार संरचनाऐं प्राप्त थी। श्री जेथालाल गोविन्द ने महात्मा जी के निर्देशन और प्रेरणा से 1921 में खादी कार्य शुरू किया। जेथाभाई नियमित रूप से खादी कार्य में प्रगति की रिपोर्ट गाँधीजी को भेजते थे और उनसे सहायता भी लेते थे। ये रिपोर्ट नवजीवन में गाँधीजी की टिप्पणियों के साथ प्रकाशित हुई थी। किसान सूत कातने में कुशल नहीं थे लेकिन वे बुनाई और रंगने में कुशल थे। गाँधीजी ने 27 सितम्बर, 1928 के नवजीवन में प्रकाशित जेथाभाई की विशाल रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि हम खादी के पीछे कुछ ही लोगों को पागल कर पाये उनमें जेथाभाई एक है।

7 मार्च, 1929 को जेथाभाई ने नवजीवन में खादी कार्यकर्ताओं के बीच एक बहुत ही व्यावहारिक समस्या पर विचार-विमर्श किया था। यह रंगों से सम्बन्धित थी जिसके लिए वे विदेशी रंगों (लाल, पीला एवं गुलाबी रंगों के लिए) पर निर्भर रहते थे। उन्होंने व्यापारियों के अशोभनीय व्यवहार की भी शिकायत की और कहा कि उन्हें कैसे सुधारा जाए। गाँधी ने आत्म-निर्भरता के अर्थ को परिभाषित किया और व्याख्या की कि कोई भी आदमी एक तरफ से और निरपेक्ष रूप में आत्मनिर्भर नहीं हो सकता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्यों पर निर्भर रहेगा ही। इसलिए उग्र आत्म-निर्भरता के लिए कभी भी इच्छुक नहीं होना चाहिए और सलाह दी कि खादी-आन्दोलन का उद्देश्य-आत्म-शुद्धिकरण था और इसलिए इसका तात्कालिक प्रभाव व्यापारियों पर भी आना चाहिए। "यह बेहतर होगा यदि हम हमारे स्तर पर ही रंगों का प्रबन्ध कर लेते। उन्होंने सलाह दी कि उग्र या नितान्त को त्याग दें और मध्यम मार्ग का ही अनुसरण करें क्योंकि वही श्रेष्ठ मार्ग है।"

बिजौलिया को पुन: एक बार बड़े संकट का सामना करना पड़ा जब कुछ खादी कार्यकर्ताओं को उनके राजनीतिक गतिविधियों में संलग्न होने की आशंका के आधार पर मेवाड़ सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। उनकी मांग थी कि खादी आश्रम के प्रबन्धक उन्हें लिखित में आश्वासन दे कि वे किसी भी राजनीतिक कार्यकर्ता की मेहमान नवाजी नहीं करेंगे ना ही उनसे कोई सम्बन्ध रखेंगे। खादी श्रमिक प्रतिबद्ध थे कि वे किसी भी राजनीतिक गतिविधि में प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: भाग नहीं लेंगे। श्री जमनालाल बजाज बिजौलिया पहुँचे, तथ्यों की जाँच की। उन्होंने सरकार से वादा किया कि खादी कार्यकर्ता केवल खादी के उत्पाद और बेचान हेतु लोगों को निरन्तर संगठित करते रहेंगे। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए 21 जुलाई, 1927 को नवजीवन में गाँधीजी ने लिखा कि - "जमनालाल बजाज द्वारा दिए गए वचन से कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि यह तो चरखा संघ की मौलिक और अपरिवर्तनीय नीति है जो देशी राज्यों में केवल खादी के कार्य को स्वयं ही सीमित करनी चाहिए।"

11.7.3 रींगस में खादी कार्य

जयपुर तुलनात्मक रूप से खादी की प्रगति की दृष्टि से रूचिकर परिवेश उपलब्ध कराता है। इस राज्य ने रूई पर से आयात शुल्क हटा दिया था और खादी पर से निर्यात शुल्क भी। रींगस ने खादी बिजौलिया परीक्षण का अनुसरण किया। जून, 1929 में भाई मूलचन्द ने गाँधीजी को सूचित किया कि आज की तारीख तक 900 श्रमिक धुनने और चीरने में प्रशिक्षित है। क्या उन्हें बुनाई भी सीखनी चाहिए थी? गाँधीजी ने 6 जून, 1929 के नवजीवन में लिखा कि -"वे लोग जो बुनना सीखने की इच्छा रखते हैं, उनको खादी सेवक अपने कर्तव्य पालन के बतौर सिखाऐं। ओटाई भी बुनाई का अपरिहार्य भाग है।" इसलिए वे खादी को एक सम्पूर्ण मनोवृत्ति कहते थे।

सन् 1927 श्री हरिभाऊ उपाध्याय द्वारा हटुण्डी में गाँधी आश्रम की स्थापना की गई जो धीरे-धीरे रचनात्मक गतिविधियों का केन्द्र बन गया और गाँधी दर्शन का भी केन्द्र बन गया।

कस्तुरबा जी 1931 में जब पुन: अजमेर यात्रा पर आयी तब हटुण्डी आश्रम में ही ठहरी थी। वे पुष्कर में एक खादी प्रदर्शनी में भी गई थी और श्रमिकों से खादी पहनने का आव्हान किया। धीरे-धीरे खादी का संदेश प्रचारित हुआ। यह राष्ट्रीय पहचान और गर्व का प्रतीक बन गई। श्री चन्द्रभान शर्मा ने 1925 के पूर्व ही जयपुर के पास चौमू में खादी कार्यालय खोला। 26,27 और 28 फरवरी, 1938 को ब्यावर में एक देशी ग्राम प्रदर्शनी का आयोजन हुआ। प्रदर्शनी में हस्तनिर्मित उत्पाद के अतिरिक्त जोधपुर, जयपुर, बीकानेर और भरतपुर के राज्यों द्वारा जारी प्रतिबन्धात्मक आदेश और अधिनियमों को कांच और लकडी में प्रदर्शित किया गया। इसलिए इस प्रदर्शनी ने काफी लोकप्रियता हासिल की। अलवर में कुंजबिहारी मोदी ने खादी के संदेश को प्रचारित करने का कार्य शुरू किया। एक कला और दस्तकारी प्रदर्शनी 8 और 9 मई, 1938 को जयपुर में आयोजित हुई जिसका उद्घाटन कस्तुरबा गाँधी ने किया।

जमनालाल बजाज और उसके परिवार ने अपने आपको खादी कार्य और इसके प्रचार-प्रसार में समर्पित कर दिया। सन् 1939 में राधाकृष्ण बजाज और जानकी देवी बजाज डुण्डलोद और मुकन्दगढ़ से अपने कुछ कार्यकर्ताओं के साथ नवलगढ़ की यात्रा की थी। उन्होंने झुन्झुनू धर्मशाला में एक व्याख्यान भी दिया था। इस भाषण में राधाकृष्ण बजाज ने कहा कि "आप जानते हैं कि हम यहाँ क्यों आए हैं। हमारा प्रथम उद्देश्य खादी को लोकप्रिय बनाना और दूसरा तुम यह जानों कि काँग्रेस वर्तमान में क्या कर रही है और वह क्या करना चाहती है।" तब उन्होंने खादी के अर्थशास्त्र पर विस्तार से प्रकाश डाला और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की वकालत की। जानकी देवी बजाज ने राधाकृष्ण के भाषण का समर्थन किया और अन्त में "महात्मा गाँधी की जय" के साथ सम्बोधित किया।

सन् 1939 में एफ.एस. यंग (जयपुर राज्य के पुलिस महानिरीक्षक) जयपुर के खादी कार्यकर्ताओं से यह आश्वासन चाहते थे कि वे कभी भी राजनीतिक विरोध प्रदर्शन में भाग न लें। 1940 में अलवर के नाथुराम मोदी ने खादी भण्डार की शुरुआत की जिसका महादेव देसाई ने उद्घाटन किया। प्रदेश के प्रमुख नेताओं जैसे जमनालाल बजाज एवं हरिभाऊ उपाध्याय ने 1940 के शुरू में उदयपुर की यात्रा की और गाँधीवादी आदर्शों के उपदेश दिए तथा खादी के

प्रयोग की वकालत की। सन् 1941 में खादी के क्षेत्र में कई नई गतिविधियाँ शुरू हुई। खैरथल में खादी प्रदर्शनी लगी और श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित ने उदयपुर में खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। श्री जे.एन. व्यास ने गाँधी जयन्ती पर 1941 में खादी एवं चरखा प्रदर्शनी का आयोजन किया। करौली के खादी कुटीर के सदस्यों ने भी गाँधी जयन्ती मनाई। सितम्बर, 1941 में श्री जे.एन. व्यास और छगन राज चौपासनीवाला ने नागपुर में एक खुली खादी प्रदर्शनी की यात्रा की। अक्टूबर, 1941 में श्री महादेव देसाई ने पुन: एक खादी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया जो कि अखिल भारतीय चरखा संघ की राजस्थान शाखा के साथ सहयोग से आयोजित की गई थी। साधु सीताराम दास और पण्डित अभिन्न हरि ने भी कोटा में खादी को लोकप्रिय बनाया और मांगरोल और सकतपुरा में दो खादी उत्पाद केन्द्र खोल दिए।

गाँधीजी की निरन्तर प्रेरणा और मार्ग निर्देशन की भावना ने राजस्थान में खादी को लोकप्रिय बना दिया। बापू के लिए खादी मनोवृत्ति थी जो उत्पादन का विकेन्द्रीकरण करने का और जीवन की आवश्यक वस्तुओं का आपूर्ति का साधन थी।

11.7.4 अछूतों का उत्थान

सामन्ती सामाजिक संरचना के कारण राजस्थान एक विशाल एवं जटिल पदसोपान व्यवस्था रखता था जिसमें अछूतों का स्थान खराब से भी खराब स्थिति में था। जब राजस्थान में उनकी स्थिति के प्रति गाँधीजी का ध्यान गया, उन्होंने स्वीकार किया कि अस्पृश्यता एक प्लेग थी और इससे लड़ने का प्रत्येक हिन्दू का भारी कर्तव्य था। उन्होंने अपील की कि "कोई भी अछूत पैदा नहीं होता है जैसे एक ही आग से निकलने वाली सभी ज्वालाऐं। जब एक अस्पृश्यता के निराकरण को आध्यात्मिक दृष्टि से देखता है तो उसके भौतिक और राजनीतिक परिणाम महत्वहीन में डूब जाते हैं।"

जब 1922 में कस्तुरबा जी ने अजमेर की यात्रा की तब उन्होंने दलित वर्गों के उत्थान और अस्पृश्यता के निवारण की अपील की थी। 1923 के शुरू में अलवर के हरिनारायण शर्मा ने अपने घर का मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया था। उसने "अस्पृश्य निवारण संघ", "वाल्मिकी संघ" और "आदिवासी संघ" की स्थापना की थी। सन् 1926 में अमरसर (जयपुर) के खादी केन्द्र पर एक हरिजन स्कूल खुला। धीरे-धीरे उच्च वर्गो के बच्चों ने भी इसमें प्रवेश लिया। इससे प्रेरित होकर खादी कार्यकर्ताओं ने यहाँ हरिजन सहायक मण्डल की स्थापना की जिसने तीन स्कूलों का प्रबन्धन किया, जाति पंचायत को संगठित किया और सामाजिक सुधारों को लागू करवाया।

बाद में हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई, इसकी प्रान्तीय शाखा राजस्थान में 1932 में अमृतलाल ठक्कार (ठक्कर बापा) द्वारा स्थापित की गई। श्री हरविलास शारदा इसके अध्यक्ष थे और रामनारायण चौधरी सचिव बने। इस संगठन ने कठोर मेहनत की दलित वर्गो के उत्थान में, विशेषकर के अछूतों के लिए। एक साल के अन्तर्गत इसने 125 दिवारात्र विद्यालय खोले जिसमें 3000 छात्र (लड़के-लड़कियाँ) पढ़ते थे और संगठन की 50 उप-शाखाएँ खोली। सन् 1933 में ब्यावर हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। सन् 1934 में गाँधीजी ने ब्यावर और

अजमेर की यात्रा की। अपनी हरिजन यात्रा के दौरान, जो कि सविनय अवज्ञा के स्थगन के बाद शुरू की गई थी, वे हरिजन नेताओं से मिले जिन्होंने उन पर थोपे जाने वाले 'बेगार' की शिकायत की। उन्होंने हरिजन सेवकों को सम्बोधित किया और उनसे निवेदन किया कि हरिजन उत्थान के साथ राजनीति को नहीं मिलाया जाए । उन्होंने अजमेर में हरिजन बस्तियों- दिल्ली दरवाजा, तारागढ़ आदि का दौरा भी किया। बाद में राजपुताना हरिजन सेवक संघ ने उनको एक रिपोर्ट राजस्थान में उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के बारे में प्रस्तुत की। बाबा बालनाथ द्वारा गाँधीजी के अछूतों उद्धार के कार्यक्रम का विरोध करने की घटना भी काफी चर्चित रही। गाँधीजी ने उसको न केवल अस्पृश्यता के पक्ष में भाषण देने की ही इजाजत दी बल्कि उसको धैर्यपूर्वक सुना और बाबा द्वारा उन पर हमले को भी देखते रहे। उन्होंने बाद में ब्यावर की यात्रा की और जैन साधुओं को प्रभावित किया। हरिजन उत्थान के लिए चन्दा एकत्र करने हेतु उन्होंने ब्यावर की हरिजन बस्तियों में और हरिजन मन्दिर की यात्रा भी की। अजमेर यात्रा के दौरान उन्होंने अजमेर स्टेशन के गुशलखानों को भी देखा, जहाँ सफाई करने वाले मैले को ले जाते थे और कार्य की दशाऐं बहुत खराब थी। उन्होंने इस दृश्य को हरिजन सेवक में वर्णित किया और इसे 'अजमेर का नरक' कहा। उन्होंने सभी हरिजन सेवकों से आग्रह किया कि अजमेर के 'मेला स्टेशन' की दशाओं में सुधार किया जाए।

सन् 1934 में रामनारायण चौधरी द्वारा अजमेर के पास ठोली गाँव में हरिजन सेवक आश्रम की स्थापना की गई। अजमेर के पास कल्याणपुरा गाँव में उन्होंने मेर, मेहरात, गुजर, चमार व बलाई जातियों में चेतना का प्रसार किया और उनकी पंचायतों को संगठित किया।

राजपुताना हरिजन सेवक संघ ने 1934 में नारेली (अजमेर) में एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला। शायद यह अपने प्रकार का पहला केन्द्र था जहाँ 100 से अधिक हरिजन सेवकों को छह माह का प्रशिक्षण दिया जाता था और फिर उनको अस्पृश्यों के उत्थान के लिए नियुक्त किया जाता था। जब यहाँ जनवरी 16 से 27 जून, 1936 को हरिजन सेवक सम्मेलन का आयोजन हुआ तब गाँधीजी ने उनके लिए संदेश भेजा कि "वास्तविक सेवा उनके द्वारा ही उपलब्ध करायी जा सकती है जो धर्म में विश्वास रखते हैं, हरिजनों से प्यार करते हैं और अपने आपको हरिजनों की सेवा के लिए समर्पित करने को तैयार रहते हैं।"

दिसम्बर, 1934 में रींगस में आयोजित खादी प्रदर्शनी का आयोजन हुआ जिसमें एक हरिजन लड़का खादी बेचने हेतु बरामदे में बैठा हुआ था। उच्च जाति के लोगों ने इस प्रदर्शनी का बहिष्कार किया, लोगों से कहा कि उनकी लड़कियों को स्कूल नहीं भेजे और हरिजन पाठशालाओं के शिक्षकों को अपने घरों में प्रवेश ना दें। जिन्होंने इसकी अनुपालना नहीं की उन पर जुर्माना लगाया गया। जब गाँधीजी को यह सब पता लगा तो उन्होंने 'हरिजन' में लिखा कि "यदि असमानता समाप्त नहीं की गई तो धर्म समाप्त हो जायेगा। किसी को भी बहिष्कार से भयभीत नही होना चाहिए और अन्य दलों से बातचीत का रास्ता खुला रखना चाहिए। यह शुभ संकेत है कि लोगों पर बहिष्कार का कोई असर नहीं हुआ।"

मार्च, 1939 में अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की उपाध्यक्षता राजेश्वरी नेहरू और ठक्कर बापा ने मध्य भारत और दक्षिण राजपुताना का दौरा किया और कहा कि "दौरे का

उद्देश्य हरिजन सेवक संघ के कार्य को संगठित करना था जहाँ वे विद्यमान थे। जहाँ यह कार्य नहीं हो रहा था वहाँ नये केन्द्र खोले जाए और अस्पृश्यता निवारण के लिए प्रचार-प्रसार किया जाए।" उनके दौरे की रिपोर्ट 'हरिजन' के पाक्षिक अंक में प्रकाशित हुई।

गाँधीजी के हरिजन और दलित वर्गों के उत्थान के प्रयासों को कुछ देशी राज्यों ने भी कुछ सहायता प्रदान की जैसे मेवाड़ राज्य ने। इस राज्य ने उदयपुर के सफाई कर्मियों को मन्दिर बनाने के लिए जमीन और आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी। दलित वर्गों के लिए नई पाठशालाऐं खोलने की स्वीकृति प्रदान की और इन स्कूलों के विद्यार्थियों को मुफ्त में भोजन देने की व्यवस्था की। सरकार द्वारा एक लाख 50 हजार रूपये का एक कोष बनाया गया जिससे सालाना 10,000 रूपये की अतिरिक्त सहायता की घोषणा की और इन वर्गों की दशा को सुधारने का भी आव्हान किया गया।

प्रजामण्डलों ने एक राजनीतिक चेतना को संगठित किया और ये पददलित लोगों की दशाओं को सुधारने में संलग्न हो गए। मेवाड़ प्रजामण्डल ने 1942 में हरिजनों और भीलों के उत्थान के कार्य किये। 1944 में मेवाड़ हरिजन सेवक संघ की स्थापना हुई। बागड नवयुवक मण्डल की स्थापना आदिवासियों एवं हरिजनों को शिक्षित करने के लिए तथा सामाजिक सुधारों की शुरुआत करने के लिए की। इसने उनके लिए पाठशालाओं की स्थापना भी की। इसी क्रम में अलवर प्रजामण्डल ने भी प्रसिद्ध राम-लक्ष्मण मन्दिर में हरिजनों और उच्च जातियों के लिए साथ में अन्नकूट प्रसादी का वितरण किया गया।

कुछ कार्यकर्ताओं ने भी व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत किए। जैसे पं. नैनुराम शर्मा (कोटा) ने हरिजनों के लिए पाठशालाओं की स्थापना की और उनके साथ भोजन लिया। अजमेर में पं. गौरीशंकर भार्गव ने हरिजन बस्तियों में सफाई कार्य का नेतृत्व किया। डूंगरपुर के राजगुरू ने हरिजन सेवक समिति के अध्यक्ष के पद को स्वीकार किया और उन्होंने हरिजनों के लिए अपने घरेलू मन्दिर को खोल दिया जबकि वे कट्टर वैष्णवी थे। करौली में चिरंजीलाल शर्मा ने हरिजनों के उत्थान के कार्य किए।

11.7.5 शिक्षा एवं प्रेस

गाँधीजी का विश्वास था कि यदि लोगों को स्वराज प्राप्ति और रख-रखाव के लिए प्रशिक्षित किया जाना है तो घरेलू शिक्षा व्यवस्था को भी धीरे-धीरे विकसित और प्रचारित किया जाना चाहिए। इसलिए उन्होंने मौलिक शिक्षा या नई तालीम की अवधारणा को विकसित किया। उनके अनुसार "मौलिक शिक्षा बच्चों से जुड़ी हुई है चाहे वे शहर के हों या गाँवों के। भारत में सभी के लिए यही श्रेष्ठ और अन्तिम है। यह व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक दोनों पक्षों का विकास करती है और बच्चों को सम्मान व वैभव के साथ जमीन से जोड़े रखने की भावी दृष्टि भी है।" इसके लिए हिन्दुस्तान तालिमि संघ ने काँग्रेस के हरिपुरा अधिवेशन से ही कार्य करना शुरू कर दिया था।

अक्टूबर, 1935 में हीरालाल शास्त्री ने एक बालिका शिक्षा केन्द्र-बनस्थली (टोंक जिले मे) में खोला जो वनस्थली विद्यापीठ के नाम से जाना जाता है। उनको महात्मा जी का आशीर्वाद प्राप्त था। गाँधीजी ने एक बार लिखा "बनस्थली हमेशा मेरे हृदय से सम्बद्ध रहती

है।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस संस्थान ने गाँधी के सिद्धान्तों को कार्यों के माध्यम से क्रियान्वित किया। यहाँ सभी के लिए खादी पहनना अनिवार्य था।

1936 में स्वामी केशवानन्द और अन्य लोगों ने चुरू शेखावाटी सभा, पुस्तकालयों, अध्ययन कक्षों, पुत्री पाठशाला, कबीर पाठशाला, रात्रिकालीन महाविद्यालयों आदि की स्थापना की। शोभाराम ने घड़साना में मौलिक शिक्षा योजना के सिद्धान्तों पर आधारित गाँधी विद्यालय की स्थापना की। गुलाबदेवी ने अजमेर में बालिका पाठशाला खोली। सेठ आनन्दीलाल पोद्दार ने शेखावाटी क्षेत्र में शिक्षा को बढ़ाया। गाँधीजी जी.डी. बिडला की पिलानी स्थित स्कूल से बहुत प्रभावित हुए थे।

बजाज और बिड़ला ने लोगों का पुस्तकों के प्रति प्रेम को बढ़ाने के लिए सस्ती दर पर किताबें उपलब्ध कराने हेतु सस्ता साहित्य मण्डल की स्थापना की।

गाँधीजी, जो स्वयं कई समाचार पत्रों के प्रकाशन में व्यस्त थे, ने विचार किया कि प्रेस राजनीतिक चेतना के फैलाव का प्रभावी माध्यम है। कई समाचार-पत्र राजस्थान के राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रकाशित किए गए जिन्होंने गाँधीजी से सलाह और मार्ग निर्देशन प्राप्त किया था। महात्मा पत्रकारिता के पक्के समर्थक थे, जिसका सभी के द्वारा अनुसरण करने के लिए उन्होंने बल दिया। राजस्थान सेवक संघ द्वारा नवीन राजस्थान, तरूण राजस्थान, राजस्थान केसरी आदि का प्रकाशन किया गया। रामनारायण चौधरी उस जमाने के प्रख्यात पत्रकार थे जिन्होंने नवज्योति, ऊपर माल या डांको और यंग राजस्थान का प्रकाशन किया। राजस्थान सेवा संघ के संस्थापक सदस्य के बतौर वे संघ द्वारा संचालित समाचारपत्रों से निकटता से जुड़े हुए थे। गाँधी जोर देते थे कि विरोधी को भी अपनी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए एक सप्ताह का समय दिया जाना चाहिए। चौधरी स्मरणीय हैं क्योंकि एक बार उन्होंने तरूण राजस्थान में एक महान् क्रान्तिकारी राजा महेन्द्र प्रताप सिंह का पत्र प्रकाशित किया जिसमें लोगों से अंग्रेजों को खदेड़ने की अपील की गई थी। गाँधीजी ने इस कृत्य को यह कहकर सही ठहराया कि सरकार के दृष्टिकोण को ध्यान में रखना सम्भव नहीं था। एक बार चौधरी ने सर्वसम्मति से यंग राजस्थान में एक गद्यांश छापा जो कि गैर-कानूनी था। गाँधीजी ने स्वयं चौधरी की ओर से इसके लिए माफी मांगी। उन्होंने इसके लिए चौधरी के नाम का एक पत्र अजमेर-मेरवाड़ा के जिला मजिस्ट्रेट को भेजा। पुलिस की सिफारिशों के बावजूद भी मिस्टर गिब्सन ने चौधरी के विरूद्ध कोई कार्यवाही नहीं की। यंग-राजस्थान का अन्तिम सम्पादकीय, 26 दिसम्बर, 1929 का, गाँधीजी ने स्वयं चौधरी के नाम से लिखा। नवज्योति निरन्तर राष्ट्रीय भावनाओं को प्रचारित करता रहा, भारत छोड़ो आन्दोलन से पहले और बाद में भी। राजस्थान केसरी अपने दो पृष्ठ विशेष रूप से असहयोग आन्दोलन और किसानों तथा श्रमिकों के लिए आरक्षित रखता था। पं. अभिन्न हरि ने रणभेरी का सम्पादन किया और युगल किशोर चतुर्वेदी ने नवयुग सन्देश प्रकाशित किया।

11.7.6 अन्य रचनात्मक कार्य

राजस्थान सेवक संघ और प्रजामण्डल ने गाँधीजी के आशीर्वाद से बेगार प्रथा, अनावश्यक लोग-बागों तथा अवैध करों के विरूद्ध आन्दोलन शुरू किया। श्री हीरालाल शास्त्री

स्वावलम्बी गाँवों की योजना से प्रेरित होकर 1929 में एक स्वावलम्बी इकाई के रूप में जीवन कुटीर की स्थापना की। पं. अभिन्न हरि ने परिवारों के सामुहिक सहयोग पर आधारित आदर्श गाँव की अवधारणा का भी प्रतिपादन किया। उन्होंने 'अटरू ' को आदर्श गाँव नाम दिया। 1942 में काफी जाँच और हिचकिचाहट के उपरान्त राज्य सरकार द्वारा इसे अनुमति प्रदान की गई।

11.8 निष्कर्ष

संक्षेप में गाँधी दर्शन के प्रभाव में कार्यकर्ताओं द्वारा निर्मित एक व्यापक कार्य योजना जो अधिक स्वीकार्य और सामाजिक समानता के परिवेश में कार्य हेतु तैयार की, जिसने स्वराज को सही अर्थपूर्ण रूप से मूर्त रूप दिया जा सकेगा ऐसा उनका विश्वास था। राजनीतिक एजेण्डे के साथ-साथ रचनात्मक कार्यक्रम भी समानान्तर रूप से चलते रहे। स्वदेशी मिशन गोविन्द गिरि द्वारा 20वीं सदी के आरम्भ से पहले शुरू कर दिया गया था लेकिन इसने बाद में नया अर्थ ग्रहण किया और गाँधीयन तकनीकों के अनुप्रयोग के साथ जोड़ा गया। स्वदेषी और सामाजिक कार्य अब राष्ट्रीय सम्मान के साथ जुड़ गए थे।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1 राजस्थान में प्रजामण्डल आन्दोलन में गाँधीजी की भूमिका की चर्चा कीजिए।
2 राजस्थान के बारे में गाँधीजी की चिन्ताओं की समीक्षा कीजिए।
3 राजस्थान के संदर्भ में गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों की समीक्षा कीजिए।

11.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. चौधरी, रामनारायण, “वर्तमान राजस्थान : सार्वजनिक जीवन के संस्मरण”, पत्रिका चिकित्सा ग्रन्थमाला कार्यालय, नीम का थाना, 1949.
2. गुप्ता, शोभालाल, “गाँधीजी और राजस्थान”, राजस्थान राज्य स्मारक निधि, भीलवाड़ा, 1969.
3. जर्नल ऑफ श्री जे.एस. गेहलोत रिसर्च इन्स्टीट्यूट, जोधपुर, राजस्थान फ्रीडम मुवमेंट, स्पेशल नं. 5-6, वॉल्यूम-1 (सम्पा.) सुखवीर सिंह गेहलोत, 1966.
4. केला, भगवानदास, “देसी राज्यों में जागीरदारी”, इलाहाबाद, 1948.
5. कोचर, के.एल., “रियासती राजपुताना से जनतान्त्रिक राजस्थान”, राजस्थान स्वर्ण जयन्ती समारोह समिति, जयपुर, 2002.
6. लक्ष्मण सिंह, “पॉलिटिकल एण्ड कॉन्स्टीट्यूशनल डेवलपमेंट इन दी प्रिसली स्टेट्स ऑफ राजस्थान (1920-1949)” , जैन ब्रादर्स, नई दिल्ली, 1970.

ISBN No. 13/978-81-8496-109-6